बालरामायणम्
तथा
प्रसन्नराघवम्

का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

लेखिका
अरुणा दयाल

शुभाशंसा
प्रो. प्रीति सिनहा

बालरामायणम्

तथा

प्रसन्नराघवम्

का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

लेखिका

अरुणा दयाल

शुभाशंसा

प्रो. प्रीति सिनहा

बालरामायणम्

तथा

प्रसन्नराघवम्

नाटकों का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
550

बालरामायणम्
तथा
प्रसन्नराघवम्
नाटकों का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

लेखिका
डा० अरुणा दयाल

शुभाशंसा
प्रो० प्रीति सिनहा
संस्कृत एवं भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© **सर्वाधिकार सुरक्षित**। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे-इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक एवं लेखक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम् नाटकों का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

ISBN : 978-93-82443-19-3

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263
email : csp_naveen@yahoo.co.in

© **सर्वाधिकार लेखकाधीन**
प्रथम संस्करण 2012
मूल्य : ₹ 700.00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : 23286537
email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

•

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

❊ श्रद्धाञ्जलि ❊

कदम कदम पर काँटे थे बिखरे
बचपन से आखिर तक उन्हें नानाजी ने सवाँरा था
अकेली थी खुद उनके शरीर ने उन्हें मारा था
अन्धेरी दुनियाँ में एक संस्कृत का सहारा था
उनके जाने पर उनकी पूँजी को नानाजी ने सवाँरा था
पर ना दिया उनकी किस्मत ने भी उनका साथ
ये पूँजी मासी की अब है मेरे पास
मैं आयुष कर रहा हूँ समर्पित
उनकी पूँजी उनको इस किताब के हाथ

—आयुष

समर्पण

परम पूज्य स्वर्गीय श्रद्धेय पिताजी एवं श्रद्धेया माताजी के
चरण-कमलों में सादर समर्पित

शुभाशंसा

रामाश्रित संस्कृत काव्य परम्परा के अन्तर्गत रामाश्रित नाट्यों की अविच्छिल परम्परा रही है । इनमें भी यदि केवल 'नाटक' विधाविशेष की दृष्टि से इस परम्परा का अवलोकन किया जाय तो संस्कृत साहित्य में इसके अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं । इस रामाश्रित विधाविशेष में जहाँ एक ओर भास के 'प्रतिमा' तथा 'अभिषेक', दिङ्नाग की 'कुन्दमाला', भवभूमि के 'महवीरचरित' तथा 'उत्तररामचरित', मुरारि का 'अनर्घराघव', शक्तिभद्र का 'आश्चर्यचूड़ामणि', वामनभट्टबाण का 'रघुनाथचरित' आदि उपलब्ध होते हैं वहीं दूसरी ओर भीमट विरचित 'स्वप्नदशाननम्', मायुराजविरचित 'उदात्तराघवम्' आदि नाटकों का केवल उल्लेख या उद्धरण प्राप्त होता है । राजशेखर तथा धनञ्जय आदि आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में इनको उद्धृत किया है । उपर्युक्त दोनों रचनाकारों के सम्बन्ध में आचार्य राजशेखर का कथन प्रमाणरूप है—

कालञ्जरपतिश्चक्रे भीमटः पञ्चनाटकीम्।
प्राप प्रबन्धराजत्वं तेषु स्वप्नदशाननम्।।
मायुराजसमो जज्ञे नान्यः कलचुरिः कविः।
उदन्वतः समुत्तस्थुः कति वा तुहिनांशवः।।

रामाश्रित नाटकों की इसी अविच्छिन्न शृङ्खला में राजशेखरविरचित 'बालरामायणम्' तथा जयदेवविरचित 'प्रसन्नराघवम्' नामक नाटकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि दोनों रचनाओं का उपजीव्य 'वाल्मीकिरामायणम्' है तथापि रचनाकारों की कालगत, स्थानगत तथा व्यक्तिगत भिन्नता के कारण दोनों नाटकों की अभिव्यक्ति में पर्याप्त मौलिकता है।

'बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम् नाटकों का काव्यशास्त्रीय अध्ययन' नामक प्रस्तुत ग्रन्थ दिवङ्गता डॉ. अरुणा दयाल के पी-एच.डी. शोधप्रबन्ध का प्रकाशित रूप है। वेदवर्ग से स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने पर भी साहित्य के प्रति अरुणा की रुचि निरन्तर बलवती होती गयी। प्रस्तुत ग्रन्थ उसकी इसी सतत साहित्यसाधना का प्रतिफलन है। इसमें परिश्रमी छात्रा ने राजशेखर के दसअङ्कपर्यवसायी तथा वीररसप्रधान 'बालरामायणम्' और जयदेव के सातअङ्कपर्यवसायी तथा शृङ्गाररीति, वृत्ति, गुण अलङ्कार, छन्द आदि काव्यशास्त्रीय विषयों का प्रतिपादन तो किया ही है, इसके अतिरिक्त इन नाटकों की टीका-परम्परा का भी उल्लेख किया है। कथावस्तुविधान तथा पात्रयोजना में छात्रा द्वारा उपर्युक्त दोनों नाटकों की आदान-प्रदानपूर्वक मौलिकता का भी समीक्षात्मक विवेचन किया गया है। अपने छोटे से जीवन-काल में इस शोधकार्य के माध्यम से मेरी प्रिय छात्रा डॉ. अरुणा दयाल ने ''मदायत्तं तु पौरुषम्'' का उदाहरण

प्रस्तुत किया है। रुग्णावस्था को मात देकर इस अल्पायु में ही उसने अपनी कर्मठता से कर्मकाण्ड में दक्षता प्राप्त की, प्रशासनिक पद के दायित्वों को गम्भीरतापूर्वक सम्पादित किया तथा अध्यापन-कार्य भी किया। इस शोध प्रबन्ध के प्रकाशन से उसका अभिलषित स्वप्न साकार अवश्य हुआ है किन्तु यदि आज वह होती तो इस प्रबन्ध में ब्राह्मण-वाक्य ''चरैवेति चरैवेति'' का अनुसरण करती हुयी कुछ और भी योगदान देती।

मैं अपनी प्रिय छात्रा दिवङ्गता डॉ. अरुणा दयाल को इस प्रकाशन के लिए साधुवाद देते हुए हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती हूँ तथा ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि उसकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

डा० प्रीति सिन्हा

प्रोफेसर प्रीति सिनहा

13.10.2012
प्रदोष तिथि
लखनऊ

पुरोवाक्

संस्कृत साहित्य में दृश्य काव्य की विकसित परम्परा उसके दस प्रकार के भेदों के माध्यम से अभिव्यक्त हुयी है जिसका वर्णन नाट्यशास्त्रकारों ने प्रकरण-नाटक-भाण-प्रहसन-डिम-व्यायोग-समवकार-वीथी-अङ्क और ईहामृग के रूप में किया गया है। इन सभी भेदों में दशरूपककार आचार्य धनञ्जय ने नाटकों को रूपक का मूल बताते हुये उसकी महत्ता को स्वीकार किया है।

संस्कृत साहित्य के रूप में मुझे अनेक काव्यों को पढ़ने का अवसर मिला। जिनमें आर्षकाव्य रामायण की संवेदनशीलता से सदैव प्रभावित रही हूँ। इस सन्दर्भ में भास के प्रतिमानाटकम् तथा भवभूति के महावीरचरितम् और उत्तररामचरितम् का भी अध्ययन किया तथापि मुझे रामायण पर आश्रित तथा नाटकगत काव्यात्मक मौलिकता के कारण राजशेखर के बालरामायणम् तथा जयदेव के प्रसन्नराघवम् नाटकों ने विशेष प्रभावित किया जिससे प्रेरित होकर जिज्ञासावश मैनें उपर्युक्त दोनों नाटकों का समालोचनात्मक अध्ययन करने का सङ्कल्प किया।

प्रस्तुत ग्रन्थ का विषय है—बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम् नाटकों का काव्यदृष्टि से अनुशीलन। इसकी विषयवस्तु को दश अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय है—रामाश्रित काव्य परम्परा। इसके अन्तर्गत श्रव्य और दृश्य काव्य में भेद बताते हुये उनमें नाटकों की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त रामायण परक नाटकों की अविच्छिन्न परम्परा को सूची के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय है—बालरामायणम् के रचयिता राजशेखर तथा प्रसन्नराघवम् के रचयिता जयदेव-जीवनवृत्त, रचनाकाल तथा कर्तृत्व। इस विषय के अन्तर्गत राजशेखर और जयदेव का जीवनवृत्त, रचनाकाल और कर्तृत्व वर्णित करने के पश्चात् दोनों नाटकों में टीका परम्परा को बताया गया है।

तृतीय अध्याय है—बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—कथावस्तुविधान। इस अध्याय के अन्तर्गत विवेच्य नाटकों की कथावस्तु, उनका वस्तु विन्यास तथा उनकी कथावस्तु में साम्य और वैषम्य बताया गया है।

चतुर्थ अध्याय है—बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—रस परिपाक। इस विषय के अन्तर्गत दोनों नाटकों में प्रयुक्त अङ्गीरस का तथा अङ्ग रूप में प्रयुक्त सभी रसों का वर्णन किया गया है।

पञ्चम अध्याय है—बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—वृत्ति तथा रीति योजना। इस विषय को दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में विवेच्य नाटकों में प्रयुक्त वृत्तियोजना का निरूपण किया गया है और द्वितीय भाग में विवेच्य नाटकों में प्रयुक्त रीतियोजना को वर्णित किया गया है।

षष्ठ अध्याय है—बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—गुण तथा दोष योजना। इस अध्याय के अन्तर्गत विवेच्य नाटकों में प्रयुक्त प्रमुख गुणों का प्रतिपादन किया गया है। इसी सन्दर्भ में नाटक की समालोचनात्मक दृष्टि के रूप में विवेच्य नाटकों में उपलब्ध दोषगत स्थलों का भी सङ्केत किया गया है।

सप्तम अध्याय है—बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—अलङ्कार योजना। इसके अन्तर्गत विवेच्य नाटकों में शब्दालङ्कारों के प्रयोग को बताते हुये अर्थालङ्कारों का वर्णन किया गया है।

अष्टम अध्याय है—बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—छन्दो योजना। इस विषय के अन्तर्गत सर्वप्रथम उन छन्दों का वर्णन किया गया है जो विवेच्य नाटकों में प्रमुख रूप से तथा एक साथ प्रयुक्त हुये हैं तत्पश्चात् वे छन्द हैं जिनका प्रयोग बालरामायण में हुआ है, किन्तु प्रसन्नराघव में नहीं। उसके पश्चात् वे छन्द हैं जिनका प्रयोग प्रसन्नराघव में हुआ है, किन्तु बालरामायण में नहीं।

नवम अध्याय है—बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—पात्र योजना। इस अध्याय के अन्तर्गत विवेच्य नाटकों में प्रयुक्त प्रमुख पात्रों के चरित्र का वर्णन किया गया है। सभी पात्रों को तीन भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में विवेच्य नाटकों में पुरूष पात्रों को बताया गया है। द्वितीय भाग में स्त्री पात्रों के चरित का वर्णन किया गया है और तृतीय भाग में सहायक तथा सहायिकाओं को वर्णित किया गया है।

दशम अध्याय है—संस्कृत नाट्य परम्परा और बालरामायणम् तथा प्रसन्न-राघवम्—मूल्याङ्कन। इस विषय के अन्तर्गत संस्कृत नाट्य परम्परा में बालरामायण तथा प्रसन्नराघव का स्थान बताते हुये दोनों नाटकों में आदान और प्रदान वर्णित किया गया है तत्पश्चात् दोनों नाटकों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

संस्कृत के विभागाध्यक्ष डॉ. अशोक कालिया जी की मैं ऋणी हूँ जो विभागीय प्रशासक होने के साथ ही समय-समय पर हम लोगों को अपना निर्देशन देते रहे हैं।

संस्कृत विभाग की साहित्यशास्त्र की मर्मज्ञा विदुषी श्रद्धेया डॉ. प्रीति सिन्हा जी के सशक्त और सूक्ष्म निर्देशन, अनुशासनपरक उपदेश तथा वात्सल्य के परिणामस्वरूप ही यह कार्य परिणति को प्राप्त कर सका है।

अपने पिताजी श्री बिशेश्वरदयाल जी की हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने हमेशा मुझे सम्बल दिया। जब-जब मैं हताश और निराश हुयी हूँ उन्होंने ही मुझे सहारा दिया

और आगे बढ़ने के लिये प्रेरित किया। उनके सहयोग और आशीर्वाद के बिना यह कार्य असम्भव था।

श्री जयनारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. के. एस. त्रिपाठी जी की मैं आभारी हूँ जिन्होंने इस के लिये उपयुक्त समय प्रदान कर अनुगृहीत किया क्योंकि मैं वहाँ सरल संस्कृत सम्भाषण केन्द्र की शिक्षिका के रूप में कार्यरत हूँ और वे इस केन्द्र के समन्वयक हैं।

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ और अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, लखनऊ के पुस्तकालय के सभी कर्मचारियों का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ क्योंकि उनके ही सहयोग से मुझे इस कार्य के लिये सम्यक् सामग्री उपलब्ध हो सकी है।

यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्तर्गत आये सभी विषयों का समीक्षात्मक अध्ययन करने का यथाशक्ति प्रयास किया गया है तथापि इसमें हुयी त्रुटियों के लिये मैं क्षमाप्रार्थिनी हूँ।

डा० अरुणादयाल

विषयानुक्रमणिका

शुभाशंसा		ix
पुरोवाक्		xi
सङ्केताक्षर सूची		xvi
प्रथम अध्याय :	**रामाश्रित काव्य परम्परा**	1
द्वितीय अध्याय :	**बालरामायणम् के रचयिता राजशेखर तथा प्रसन्नराघवम् के रचयिता जयदेव : जीवनवृत्त, रचनाकाल, कर्तृत्व**	8-18
	(क) बालरामायणम् के रचयिता राजशेखर— जीवनवृत्त, रचनाकाल, कर्तृत्व	8
	(ख) प्रसन्नराघवम् के रचयिता जयदेव—जीवनवृत्त, रचनाकाल, कर्तृत्व	15
	(ग) बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—टीका परम्परा	18
तृतीय अध्याय :	**बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्-कथावस्तु विधान**	23-85
	(क) विवेच्य नाटकों की कथावस्तु	23
	(ख) विवेच्य नाटकों की कथावस्तु-वस्तु विन्यास	28
	(ग) विवेच्य नाटकों की कथावस्तु-साम्य तथा वैषम्य	85
चतुर्थ अध्याय :	**बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्-रस परिपाक**	111-116
	(क) बालरामायणम् तथा अङ्गीरस	111
	(ख) प्रसन्नराघवम् तथा अङ्गीरस	114
	(ग) विवेच्य नाटकों में अङ्गभूतरस	116
पञ्चम अध्याय :	**बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्-वृत्ति तथा रीतियोजना**	133-142
	(क) विवेच्य नाटकों में वृत्ति योजना	133
	(ख) विवेच्य नाटकों में रीति योजना	142
षष्ठ अध्याय :	**बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्-गुण तथा दोष योजना**	148-154
	(क) विवेच्य नाटकों में प्रमुख गुण योजना	148
	(ख) विवेच्य नाटकों में गुण तथा दोष योजना	154
सप्तम अध्याय :	**बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्-अलङ्कार योजना**	158-163
	(क) विवेच्य नाटकों में शब्दालङ्कार	158
	(ख) विवेच्य नाटकों में अर्थालङ्कार	163
अष्टम अध्याय :	**बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्- छन्दो योजना**	197-229
	(क) विवेच्य नाटकों में समान रूप से प्रयुक्त छन्द	197
	(ख) केवल बालरामायणम् में प्रयुक्त छन्द	225
	(ग) केवल प्रसन्नराघवम् में प्रयुक्त छन्द	229

नवम अध्याय : **बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्-पात्र योजना** **233-246**
(क) विवेच्य नाटकों में पुरूषपात्र 233
(ख) विवेच्य नाटकों में स्त्रीपात्र 244
(ग) विवेच्य नाटकों में सहायक तथा सहायिकायें 246

दशम अध्याय : **संस्कृत नाट्यपरम्परा और बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्- मूल्याङ्कन** 257-260
(क) संस्कृत नाट्यपरम्परा और बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम् 257
(ख) बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्-आदान 257
(ग) बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्-प्रदान 260
(घ) बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्-समीक्षात्मक अध्ययन 260

सहायक सन्दर्भग्रन्थ सूची 267

❋

(क) सङ्केताक्षर सूची

अठा. शती के सं. रूप	-	अठारहवीं शती के संस्कृत रूपक
अभि. चि. को.	-	अभिधान-चिंतामणि-कोश
अभि. भा.	-	अभिनवभारती
क. म.	-	कर्पूरमञ्जरी
का. प्र.	-	काव्यप्रकाश
का. मी.	-	काव्यमीमांसा
काव्याद.	-	काव्यादर्श
काव्यानु.	-	काव्यानुशासनम्
का. ल. (भा.)	-	काव्यालङ्कार
का. सू. वृ.	-	काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति
च. लो.	-	चन्द्रालोक
ध्वन्या.	-	ध्वन्यालोक
ना. शा.	-	नाट्यशास्त्र
निघ. तथा. निरु.	-	निघण्टु तथा निरुक्त
पा. शि.	-	पाणिनीय शिक्षा
प्रसन्नरा.	-	प्रसन्नराघवम्
प्रा. पैङ्.	-	प्राकृत पैङ्गलम्
बा. भा.	-	बालभारतम्
बालरा.	-	बालरामायणम्
महा. च.	-	महावीर चरितम्
रघु.	-	रघुवंशम्
रसा. सु.	-	रसार्णव सुधाकर
वि. भ.	-	विद्धशालभञ्जिका
वृ. र.	-	वृत्तरत्नाकर
शाङ्र्ग. प.	-	शाङ्र्गधरपद्धति
श्रु. बो.	-	श्रुतबोध
स. क.	-	सरस्वती कण्ठाभरणम्
सु.ति.	-	सुवृत्ततिलकम्
सं. नाट्. को.	-	संस्कृत-नाट्य-कोश
सं. वाङ्. को.	-	संस्कृत-वाङ्मय-कोश
सं. सा. इति.	-	संस्कृत साहित्य का इतिहास
सं. सा. समा. इति.	-	संस्कृत साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास
सं. हि. को. (आप्टे)	-	संस्कृत हिन्दी कोश

❊

प्रथम अध्याय

रामाश्रितकाव्यपरम्परा

'कवेः कर्म काव्यम्' अथवा **'कवयति इति काव्यम्'** अर्थात् कवि का कर्म काव्य कहलाता है। काव्य ही अलौकिक आनन्दानुभूति का अभिव्यञ्जक है।

काव्यशास्त्रियों ने अपने–अपने मतानुसार भाषा[1], प्रस्तुति प्रकार[2] तथा व्यङ्ग्यार्थ[3] की दृष्टि से काव्य के भेदों का विवेचन किया है।

आचार्य भामह का कथन है कि शब्द और अर्थ दोनों मिलकर काव्य कहलाते हैं। इसके दो भेद हैं—गद्य और पद्य।[4]

आचार्य दण्डी ने अपने ग्रन्थ काव्यादर्श में रचनाशिल्प की दृष्टि से काव्य के तीन भेदों का उल्लेख किया है—गद्य, पद्य और मिश्र[5], जवकि उनके मतानुसार दृश्यत्व और श्रव्यत्व के आधार पर काव्य के दो भेद हैं।[6]

आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में भी दृश्य और श्रव्य भेद से काव्य के दो भेद माने हैं—

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।[7]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार श्रव्य काव्य को पढ़कर और सुनकर ही काव्य का आनन्द लिया जा सकता है। यह दो प्रकार के होते हैं—गद्य और पद्य।

छन्दों में लिखे हुये काव्य पद्य के अन्तर्गत आते हैं, जिसके प्रकार हैं—महाकाव्य, खण्डकाव्य इत्यादि।[8]

---

१. तदेतद् वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अपभ्रंशश्च मिश्रं चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम्।। — काव्याद. १/३२

२. लास्यच्छलितशल्यादिप्रेक्षार्थमितरत्पुनः।
श्रव्यमेवेति सैषापि द्वयी गतिरुदाहृता।। — वही, १/३९

३. वाच्यव्यतिरेकिणो व्यङ्गस्य सद्भावं प्रतिपाद्य प्राधान्यं। — ध्वन्या. १/पृ. ६६

४. शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्द्विधा। — का. लं. (भा.) १/१६

५. गद्यं पद्यं च मिश्रं च तत्त्रिधैव व्यवस्थिम्। — काव्याद. १/११

६. लास्यच्छलित शल्यादि प्रेक्षार्थमितरत्पुनः।
श्रव्यमेवेति सैषापि द्वयीगतिरुदाहृता।। — वही, १/३९

७. सा. द. ६/१

८. (क) छन्दोबद्धपदं पद्यं। — सा. द. ६/३१४
(ख) सर्गबन्धो महाकाव्यं। — वही, ६/३१५
(ग) खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च। — वही, ६/३२९

गद्य काव्य पुनः चार प्रकार का होता है–

१. मुक्तक

२. वृत्तगन्धि

३. उत्कलिकाप्राय और

४. चूर्णक[1]

दृश्य काव्य को पढ़कर, सुनकर तथा साक्षात् पात्र को अभिनय के द्वारा देखकर अत्यधिक आनन्द उठाया जा सकता है। दृश्यकाव्य का आनन्द निरक्षर व्यक्ति भी अच्छी तरह से प्राप्त कर सकता है और चाक्षुष् होने के कारण उसका प्रभाव दर्शक के अन्तस्तल पर बहुत अधिक समय तक रहता है। दृश्य काव्य के अन्तर्गत रूपक, उपरूपक इत्यादि आते हैं। रूपक के दश भेद बताये गये हैं–

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति।।[2]

रूपक के द्वारा सहृदय सामाजिक ऐतिहासिक मूल पात्रों के जीवनगत घटनाओं की अनुभूति करता है। नाट्यसाहित्य की दृश्यमानता की महत्ता को स्वीकार करते हुए भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में कहा है–

दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद्भविष्यति।।[3]

इसीलिए भरतमुनि ने इसे पञ्चम वेद नाम से विभूषित किया है–

तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्।[4]

दशरूपक के अनुसार प्रकृति नाटक का लक्षण इस प्रकार है–

प्रकृतित्त्वादथान्येषां भूयोरसपरिग्रहात्।
सम्पूर्णलक्षणत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते।।[5]

अर्थात् नाटक ही अन्य रूपकभेदों की प्रकृति अथवा मूल है, उसी में वस्तु, नेता या रस के परिवर्तन करने से प्रकरणादि रूपकों की सृष्टि हो जाती है।

आचार्य विश्वनाथ नाटक का लक्षण बताते हुये कहते हैं कि नाटक का वृत्त (कथा) ख्यात होना चाहिये। नाटक में विलास, समृद्धि आदि गुण तथा अनेक प्रकार

१. वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च।।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम्। सा. दा. ६/३३०-३३१

२. द. रू. १/८

३. ना. शा. १/११५

४. वही, १/१२

५. द. रू. ३/१

के ऐश्वर्यों का वर्णन हो। सुख और दुःख की उत्पत्ति दिखायी जाय और नाना प्रकार के रसों से पूर्ण होना चाहिये। नाटक में पाँच से लेकर दस अङ्क होते हैं। धीरोदात्त, प्रतापी, गुणवान कोई राजर्षि अथवा दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष ही नाटक का नायक होता है। शृङ्गार या वीर में से कोई एक रस यहाँ प्रधान रहता है—अन्य सब रस अङ्गभूत रहते हैं। इसे निर्वहण सन्धि में अत्यन्त अद्भुत बनाना चाहिये। इसमें चार या पाँच पुरुष प्रधान कार्य के साधन में लगे रहने चाहिये और गौ की पूँछ के अग्रभाग के समान इसकी रचना होनी चाहिये।[1]

रूपक साहित्य की परम्परा अति प्राचीन प्रतीत होती है, क्योंकि इसमें कुछ पारिभाषिक शब्द जैसे—नट, गीत, वाद्य इत्यादि का प्रयोग वैदिक वाङ्मय में भी प्राप्त होता है।

लौकिक साहित्य की परम्परा में भास के रूपकों को ही प्राचीनतम माना जा सकता है। अद्यावधि इक्कीसवीं शताब्दी में भी नाटकों की रचना हो रही है।

उपजीव्य काव्य के रूप में प्रस्तुत रामायण तथा महाभारत नामक आर्षकाव्यों को लेकर चम्पूकाव्य[2] और महाकाव्य[3] इत्यादि अनेक विधाओं में रचनायें होती रही हैं। अब संस्कृत साहित्य में उपलब्ध रामायणपरक नाटकों की संक्षिप्त सूची यहाँ पर प्रस्तुत की जा रही है—

नाटक	नाटककार	रचनाकाल
प्रतिमानाटक	भास	५०० ई.
अभिषेकनाटक	भास	५०० ई.

१. नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः।।
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम्।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः।।
प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्त प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वागुणवान्नायकोमतः।।
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः।।
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपुरुषाः।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्।। सा. द. ६/७-११

२. चम्पूराघवम्, रघुनाथविजयचम्पू, कुशलवचम्पू, सीताविजयचम्पू, उत्तरकाण्डचम्पू, सीताचम्पू, मारुतिविजयचम्पू इत्यादि। सं. वाङ्. को./पृ.८०

३. जानकीचरितामृतम्, रामकीर्तिमहाकाव्यम्, उर्मिलीयम्, सीताचरितम्, सीतारामाञ्जनेयम्, जानकीजीवनम् इत्यादि। सं. सा. समा. इति./पृ. ६७,६८,६९,७०

महावीरचरित	भवभूति	७०० ई.
उत्तररामचरित	भवभूति	७०० ई.
हनुमन्नाटक	दामोदर मिश्र	७०० ई.
अनर्घराघव	मुरारि	८०० ई.
उदात्तराघव	मायुराज	८०० ई.
रामाभ्युदय	यशोवर्मा	८०० ई.
आश्चर्य चूड़ामणि	शक्तिभद्र	९०० ई.
कुन्दमाला	दिङ्नाग	१००० ई.
बालरामायण	राजशेखर	१००० ई.
हनुमन्नाटक	मधुसूदन	
अभिनवराघव	क्षीरस्वामी	
प्रसन्नराघव	जयदेव	१२०० ई.
मैथिलीकल्याण	हस्तिमल्ल	
दूतांगद	सुभट	
उन्मत्तराघव	भास्करभट्ट	
रामाभ्युदय	व्यासमिश्रदेव	
अद्भुतदर्पण	महादेव (दक्षिण निवासी)	१६०० ई.
कुशलवविजयम्	व्यङ्कट कृष्ण दीक्षित	१६०० ई.
सीताराघवम्	रामपाणिवाद	
आनन्दरघुनन्दनम्	विश्वनाथ सिंह	
रामराज्याभिषेकम्	विराारराघव	
उदारराघवम्	राधामंगलम् नारायण शास्त्री	
जानकीविक्रमम्	हरिदास सिद्धांत वागीश	
अभिनवराघवम्	सुंदरवीर राघव	
जानकीपरिणय	रामभद्रदीक्षित	१७०० ई.
पौलस्त्यवधम्	लक्ष्मण सूरि	
कनकजानकी	क्षेमेन्द्र	
रामाभ्युदय	यशोवर्मन	
अभिनवराघव	राजचूड़ामणि	
उल्लासराघव	सोमेश्वर चालुक्य	
अञ्जनापवनञ्जय	जैनकवि हस्तिमल्लसेन	
रघुवीरचरित	भट्टसुकुमार (अथवा भूषण)	
रामावदान	नृत्यगोपाल कविरत्न	

दर्पशातन	नृत्यगोपाल कविरत्न	
अभिरामनाटक	सुन्दरमिश्र	
उन्मत्तराघव	महादेव शास्त्री	
जानकीपरिणय	मधुसूदन (दरभंगा निवासी)	
जानकीपरिणय	भट्टनारायण	
जानकीपरिणय	सीताराम	
मैथिलीपरिणय	हस्तिमल्लसेन	
सीताविवाह	सुब्रह्मण्य (कृष्णसूरिपुत्र)	
राघवाभ्युदय	भगवन्तराय	
राघवाभ्युदय	गङ्गाधरसूनु	
राघवाभ्युदय	रामचन्द्र	
रघुविलास	रामचन्द्र	
रघुनाथविलास	यज्ञनारायण	
मुदितराघव	बालकृष्ण	
राघवानन्द अथवा राघवाभ्युदय	वेंकटेश्वर	
अभिनव राघवानन्द	मणिक (नेपाली कवि)	
राघवानन्द	राजचूड़ामणि दीक्षित (रत्नखेट)	
सीतादित्यचरित	श्रीनिवास (वरदगुरु पुत्र)	
सीतानंद	तातार्य (वैष्णवगुरु)	
सीताराघव	रामवारियर	
मैथिलीय	श्री नारायण शास्त्री (कुम्भकोणनिवासी)	
रामाभिषेक	नैपाली कवि धर्मगुप्त	१४वीं शती
रामाभ्युदय	व्यास श्रीरामदेव[1]	१५वीं शती
कुशकुमुद्वतीय	अतिरात्रयज्वा (अप्पयदीक्षित के पौत्र)	१७वीं शती
कुशलवोदय	छबिलाल	
श्रीरामसंगीतिका	श्रीधर भास्करवर्णेकर[2]	
वीरराघव	प्रधान वेङ्कप्प[3]	१७वीं शती
सीताकल्याणवीथी	प्रधान वेङ्कप्प	१७वीं शती
अभिरामराघव	अनपोत नायक	

१. सं. नाट्. को. पृ. ३७१

२. सं. वाङ्. को. १/पृ. २२६

३. अट्ठा. शती के सं. रूप. पृ. ६४

अमोघराघव	भाष्यकार
आञ्जनेयविजय	भाष्यकार
उत्तरचरित	रामकृष्ण भवभूति
जनकजानन्दन	नृसिंह
जानकीराघव	भास
निर्दोष दशरथ	भास
प्रपन्नविभीषण	लक्ष्मण सूरि
प्रौढाभिराम	वेङ्कटनाथ
मारीचवञ्चितक	सलकृष्ण
मुदितराघव	सलकृष्ण
रघुवीरचरित	चक्रवर्ती वेदान्त सूरि
रामाभिनन्द	सोमेश्वर देव
रामायण नाटक	सोमेश्वर देव
बालिवध	ताताचार्य
सीतानन्द	ताताचार्य
हनुमन्नाटक	हनुमान
हर्षावसान	कन्हैयालाल पञ्चतीर्थ
सीताकल्याण	वेङ्कटभूपति
सीताकल्याण	वेङ्कटरामशास्त्री
सीताकल्याण	सुब्रह्मण्यम सूरि
सीताहरण	नारायण शास्त्री[1]

उपर्युक्त सूची से यह विदित होता है कि राम के चरित से सम्बद्ध अनेक नाटक संस्कृत साहित्य में रचे गये हैं जिनमें से कतिपय नाटक तो उपलब्ध हैं, किन्तु कुछ नाटक समय के साथ सम्भवतः विलुप्त हो गये। अतः वे अनुपलब्ध हैं।

संस्कृत नाटक साहित्य में रामायण को उपजीव्य बनाकर नाटक लिखने की एक लम्बी परम्परा प्राप्त होती है। रामायण के प्रमुख पात्र नायक राम को ही आदर्श मानकर नाटक लिखने की परम्परा वाले नाटककारों की इच्छा के पीछे दो प्रयोजन प्रतीत होते हैं। पहला तो यह कि वे इस रचना के माध्यम से अपने इष्टदेव राम के आदर्श जीवन चरित को समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहते हैं और दूसरा यह कि वे गौण रूप में अपनी रचना की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मङ्गलाचरण के रूप में अपने आराध्य का स्मरण कर लें।

---

१. सं. नाट्. को. पृ. ३७१, ४६५, ६६, ६७

रामाश्रित नाटकों की इस सूची में प्रधान कथा का मूल स्रोत वाल्मीकी रामायण ही है, अन्तर केवल यह है कि सभी नाटकों में नायक राम नहीं है, अपितु दशरथ[१] (निर्दोष दशरथ), बालि[२] (बालिवध), विभीषण[३] (प्रपन्न विभीषण), हनुमान[४] (आञ्जनेय विजय, अञ्जनापवनञ्जय, हनुमन्नाटक), लवकुश[५] (कुशकुमद्वतीय, कुशलवोदय, कुशलवत्रिजयम्) आदि हैं। ऐसा रचनाओं के शीर्षक से प्रतीत होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि नाटककारों ने अपनी सूक्ष्म प्रतिभा का परिचय देते हुए रामायण की कथा को आधार बनाकर नवीन उद्भावनाओं और कल्पनाओं द्वारा उसे नया रूप प्रदान करके सहृदय सामाजिक के लिए अलौकिक आनन्दप्रदायी बना दिया है।

※

१. सं. नाट्. को. पृ. ३७१
२. वही, पृ. ४६५
३. वही, पृ. ४६६
४. वही, पृ. ४६७ और सं. सां. इति. पृ. १६०
५. सं. वाङ्. को. प्र. ख. पृ. २२६

द्वितीय अध्याय

बालरामायणम् के रचयिता राजशेखर तथा प्रसन्नराघवम् के रचयिता जयदेव—जीवनवृत्त, रचनाकाल, कर्तृत्व

बालरामायणम् के रचयिता राजशेखर—जीवनवृत्त, रचनाकाल, कर्तृत्व

संस्कृत साहित्य के इतिहास में यायावर वंश में उत्पन्न महाकवि राजशेखर की बहुमुखी प्रतिभा समस्त साहित्य जगत् को आलोकित करती है। उनकी यशोविभूति से साहित्य के विविध क्षेत्र अछूते नहीं रहे हैं, क्योंकि उनमें साहित्यशास्त्र के प्रणेता, नाट्यविद्या के आचार्य, काव्य-छन्द, ज्योतिष, भूगोल इत्यादि विषयों के पारदृश्वा विद्वान् के रूप में अभूतपूर्व प्रतिभा थी। इसके अतिरिक्त उनमें राजनीतिक और प्रशासनिक क्षमता भी थी जिसके मार्ग-निर्देशन द्वारा भारत में एक विशाल भूखण्ड ने सुख-समृद्धि को प्राप्त किया।

जीवनवृत्त

महाकवि राजशेखर का जन्म यायावर कुल में हुआ था, जिसका उल्लेख स्वयं उन्होंने अपनी कृतियों में किया है—

यायावरीयः संक्षिप्य मुनीनां मतविस्तरः।
व्याकरोत् काव्यमीमांसां कविभ्यो राजशेखरः।।[१]
पञ्चमी साहित्यविद्येति यायावरीयः।[२]
फुल्ला कीर्तिर्भ्रमति सुकवेर्दिक्षु यायावरस्य।[३]
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावर कुले।[४]
अहो मसृणोद्धता सरस्वती यायावरस्य।[५]

परवर्ती कवियों ने भी महाकवि राजशेखर को यायावरवंशीय ही बताया है। धनपाल ने तिलकमञ्जरी में राजशेखर को इस प्रकार उल्लिखित किया है—

समाधिगुण शालिन्यः प्रसन्नपरिपक्त्रिमाः।
यायावर कवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तयः।।[६]

---

१. का.मी. १/पृ. ३
२. वही, २/पृ. ८
३. बालरा. १/६
४. वही, १/१३
५. बा. भा. १/५
६. ति. म. ३३/पृ. ४

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि राजशेखर यायावर कुलोत्पन्न थे। राजशेखर ने बालरामायण में अकालजलद को अपना प्रपितामह बताया है जिनको महाराष्ट्र चूड़ामणि कहा गया है—

तदामुष्यायणस्य महाराष्ट्रचूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थो दौर्दुकिः शीलवती सूनुरूपाध्याय श्री राजशेखरः।[१]

इनके पिता का नाम दुर्दुक या दुहिक तथा माता का नाम शीलवती था। राजशेखर ने अपने ग्रन्थ बालभारतम् और बालरामायणम् में स्वयं को महामन्त्रिसुत बताया है—

उक्तं हि तेनैव महासुमन्त्रिपुत्रेण।[२]
सूक्तमिदं तेनैव महामन्त्रिपुत्रेण।[३]

राजशेखर की पत्नी का नाम अवन्तिसुन्दरी था, जो चाहमान वंश की रत्न थी। वह परम विदुषी थी। अवन्तिसुन्दरी के विदुषत्व का उल्लेख करते हुए राजशेखर ने कहा है कि कर्पूरमञ्जरी सट्टक का अभिनय अवन्तिसुन्दरी के आदेश पर ही हुआ था—

चाहुवान कुलमौलिमालिका राजशेखर कवीन्द्रगेहिनी।
भर्तुः कृतिमवन्तिसुन्दरी सा प्रयोजयितुमेतदिच्छति।।[४]

अवन्तिसुन्दरी का काव्यशास्त्र के अतिरिक्त प्राकृत भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था। काव्यशास्त्र में उनके आचार्यत्व का उल्लेख राजशेखर ने अपने ग्रन्थ काव्यमीमांसा में तीन स्थानों पर किया है—

इयमशक्तिर्न पुनः पाकः इत्यवन्तिसुन्दरी।[५]
विदग्धभणिति भङ्गिनिवेद्यं वस्तुनो रूपं न नियतस्वभावम् इति अवन्तिसुन्दरी।[६]
इत्येवमादिभिः कारणैः शब्दहरणेऽर्थहरणे चाभिरमेत इति अवन्तिसुन्दरी।।[७]

राजशेखर महाराष्ट्र के थे। उन्होंने अपनी कृतियों में विदर्भ, कुन्तल और वत्सगुल्म को अनेक स्थानों पर वर्णित किया है। उनके पूर्ववर्ती कवि, महाकवि भवभूति विदर्भ देश के निवासी थे, जिनके लिए राजशेखर के समकालिक शङ्करवर्मा ने कहा था कि राजशेखर, वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ और भवभूति के अवतार हैं। स्वयं राजशेखर ने इसे स्वीकार करते हुए बालरामायण में इस प्रकार उद्धृत किया है—

१. बालरा. १/पृ. ६
२. बा. भा. १/६
३. बालरा. १/८
४. क. म. १/११
५. का. मी. ५/पृ. ४४
६. वही, ६/पृ. १०४
७. वही, ११/पृ. १२४

बभूव वाल्मीकभवः पुरा कविस्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः।।[१]

उपर्युक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर की जन्मभूमि विदर्भ या महाराष्ट्र ही थी, क्योंकि यायावर ब्राह्मण भी महाराष्ट्र के ही थे और यह भूमि उत्तर में नर्मदा से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक है।

इसकी पुष्टि इस कथन द्वारा भी होती है कि राजशेखर ने अपने ग्रन्थ बालरामायण में महाराष्ट्र और विदर्भ देशों का वर्णन किया है–

यत्क्षेमं त्रिदिवाय वर्त्म निगमस्याङ्गं च यत् सप्तमं
स्वादिष्टं च यदैक्षवादपि रसाच्चक्षुश्च यद् वाङ्मयम्।
तद्यस्मिन् मधुरं प्रसादि रसवत् कान्तं च काव्यामृतं
सोऽयं सुभ्रु पुरो विदर्भविषयः सारस्वती जन्मभूः।।[२]

अपि च

रत्नविद्याविदग्धानां विभ्रमोल्लेखलम्पटः।
नित्यं कुन्तलकान्तानां किङ्करो मकरध्वजः।।[३]

राजशेखर के जीवन का एक अंश कान्यकुब्ज में व्यतीत हुआ था, जिसे उन्होंने बालरामायण में सर्वमहापवित्र की संज्ञा से विभूषित किया है–

इदं द्वयं सर्वमहापवित्रं परस्परालङ्करणैकहेतुः।
पुरं च हे जानकि कान्यकुब्जं सरिच्च गौरीपतिमौलिमाला।।[४]

इस पद्य से पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर विविध देशों की भाषाओं, वहाँ के रीति-रिवाजों और विशेषताओं से पूर्णरूपेण परिचित थे। इससे उनकी व्यापक भ्रमण करने की प्रवृत्ति का भी हमें ज्ञान होता है।

राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी की प्रस्तावना में स्वयं को महेन्द्रपाल का उपाध्याय बतलाया है–

बालकई कइराओ णित्भअराअस्स तह उवज्झाओ।[५]

इसके अतिरिक्त उन्होंने बालरामायण में भी कन्नौज के प्रतिहारवंशी राजा महेन्द्रपाल और महीपाल को अपना शिष्य बताया है–

---

१. बालरा. १/१६ पृ. ७
२. वही, १०/७४
३. वही, १०/७५
४. वही, १०/८६
५. क. म. १/६

आपन्नार्तिहरः पराक्रमधनः सौजन्यवारां निधि—
स्त्यागी सत्यसुधाप्रवाहशशभृत्कान्तः कवीनां गुरुः।
वर्ण्य वा गुणरत्नरोहणगिरेः किं तस्य साक्षादसौ
देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः।।[1]

राजशेखर की प्राचीन शास्त्रों और विद्याओं में पूर्ण आस्था थी, क्योंकि उन्होंने अपनी कृतियों के मङ्गलाचरण में भगवान शिव की विशेष रूप से स्तुति की है। बालभारतम् के दो पद्यों में उन्होंने शिव की आराधना की है, वे पद्य इस प्रकार हैं—

नमः शिवाय संसार सरोजस्य रजस्विनः।
विकासनैकसूर्याय सङ्कोचसकलेन्दवे।।[2]

अपि च

ये सीमन्तितभस्मगात्ररजसो ये कुम्भकद्वेषिणो
ये लीढाः श्रवणाश्रयेण फणिना ये चन्द्रशैत्यद्रुहः।
ते रुष्यद्गिरिजाविभक्त वपुषश्चित्तव्यथासाक्षिणः
स्थाणोर्दक्षिणनासिकापुटभुवः श्वासानिलाः पान्तु वः।।[3]

राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी में शिवस्तुति इस प्रकार की है—

शशिखण्डमण्डनयोः समोहनाशयोः सुरगणप्रिययोः।
गिरिश—गिरीन्द्रसुतयोः सङ्घटना वः सुखं ददातु।।[4]

अपि च

ईर्ष्यारोषप्रसादप्रणतिषु बहुशः स्वर्गगङ्गाजलै—
रामूलं पूरितया तुहि न करकलारूप्यशुक्त्या रुद्रः।
ज्योत्स्नामुक्ताफलाढयं नतमौलिनिहिताग्रहस्ताभ्यां द्वाभ्या—
महर्यं शीघ्रमिव ददज्जयति गिरिसुतापादप पङ्केरूह्योः।।[5]

बालरामायण में राजशेखर ने वाणीगुम्फ की प्रशंसा की है—

धीरोदात्तं जयति चरितं रामनाम्नश्च विष्णोः।[6]

उपर्युक्त श्लोकों का अध्ययन करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि महाकवि राजशेखर शिव के उपासक होने के साथ ही विष्णु और शक्ति के भी उपासक थे, परन्तु उनकी चित्तवृत्ति रामचरित में भी रमी थी, यही कारण है कि बालरामायण जैसे

१. बालरा. १/१८
२. बा. भा. १/१
३. वही, १/२
४. क. म. १/३
५. वही, १/४
६. बालरा. १/६

महानाटक का निर्माण उन्होंने किया जिसका संस्कृत के विशाल साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

रचनाकाल

राजशेखर के काल के विषय में विद्वानों में परस्पर मतभेद पाया जाता है। उन्होंने उनका समय ईसा की सातवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के मध्य बताते हुए एक—दूसरे के मतों का खण्डन-मण्डन किया है, परन्तु अनेक विद्वान् इन्हें नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का मानते हैं।

राजशेखर ने अपने चार नाटकों की प्रस्तावना में स्वयं को कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल और महीपाल का गुरु, मन्त्री तथा उपदेष्टा बताया है—

देवो यस्य महेन्द्रपाल नृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः।[१]
रघुकुलतिलको महेन्द्रपालः सकलकलानिलयः स यस्य शिष्यः।[२]

अपि च

बालकविः कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्यायः।[३]

राजा महेन्द्रपाल की राजधानी कान्यकुब्ज थी, ये गुर्जरप्रतिहार वंश के प्रतापी सम्राट थे। इनके शिलालेख बंगाल से काठियावाड़ तथा झाँसी से करनाल तक प्राप्त होते हैं। शिलालेखों के आधार पर महेन्द्रपाल का समय नवीं सदी के अन्त तथा दसवीं सदी के प्रारम्भ में निश्चित रूप से बताया जा सकता है।

महेन्द्रपाल के पश्चात् उनके पुत्र महीपाल या क्षितिपाल का उल्लेख राजशेखर ने अपने ग्रन्थ बालभारत में इस प्रकार किया है—

नमितमुरलमौलिः पाकलो मेकलानाम्
रणकलितकलिङ्गः केलिकृत्केरलेन्द्रैः।
अजनिजितकुलूतः कुन्तलानां कठोरो
हठहृतरमठश्रीः श्रीमहीपाल देवः।।[४]

अपि च

तेन च रघुवंशमुक्तामणिनार्यावर्तमहाराजाधिराजेन श्री निर्भयनरेन्द्रनन्दनेनाराधिताः सभासदः।[५]

उपर्युक्त दोनों उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि राजशेखर ने अपने ग्रन्थों की

१. बालरा. १/१८
२. वि. भ. १/६
३. क. म. १/६
४. बा. भा. १/७
५. वही पृ. ६

रचना महेन्द्रपाल और महीपाल के समय में की थी। राजा महेन्द्रपाल का दूसरा नाम निर्भयराज भी था, क्योंकि कर्पूरमञ्जरी सट्टक में राजशेखर ने उन्हें निर्भयराज इस नाम से स्मरण किया है—

बालकविः कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्यायः।
इत्यस्य परम्परया आत्मा माहात्म्यमारूढः।।[1]

यदि राजशेखर महेन्द्रपाल के गुरु थे तो सम्भवतः अवस्था में भी वे महेन्द्रपाल से बड़े रहे हों। महेन्द्रपाल का शासनकाल ८६० ई. से ६०८ ई. ज्ञात होता है इसलिए हम राजशेखर के जन्मकाल को ८५० से ८६० ई. के आसपास मान सकते हैं।

महीपाल का मृत्युकाल ६१०—६४० ई. ज्ञात होता है। इस प्रकार हम राजशेखर का समय ६वीं सदी के उत्तरार्ध से दसवीं सदी के पूर्वार्ध या मध्य में मान सकते हैं।

कर्तृत्व

राजशेखर ने छः ग्रन्थों की रचना की है। अपनी रचनाओं की सङ्ख्या का उल्लेख उन्होंने अपने नाटक बालरामायण में किया है—

ब्रूते यः कोऽपि दोषं महदिति सुमतिर्बालरामायणेऽस्मिन्
प्रष्टव्योऽसौ पटीयानिह भणितिगुणो विद्यते नान वेति।
यद्यस्ति स्वस्ति तुभ्यं भव पठनरुचिर्विद्धि नः षट्प्रबन्धान्
नैवं चेद्दीर्घमास्तां नटवटुवदने जर्जरा काव्यकन्था।।[2]

सम्प्रति राजशेखर विरचित पाँच ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं जिनको विषयानुरूप तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है। वे श्रेणियाँ हैं—

१. साहित्यशास्त्र
२. रूपक
३. उपरूपक

१. **साहित्यशास्त्र**—काव्यमीमांसा साहित्यशास्त्र के अन्तर्गत आता है।

काव्यमीमांसा

काव्यमीमांसा एक काव्यशास्त्रीय लक्षण ग्रन्थ है। इसकी रचना अठारह अधिकरणों में हुयी है। वर्तमान में इसका कविरहस्य नामक प्रथम अधिकरण ही उपलब्ध होता है। यह अधिकरण अठारह अध्यायों में विभक्त है जिसमें काव्यशास्त्र से सम्बद्ध सभी विषय समाहित हैं। यह काव्यशास्त्र के क्षेत्र में मौलिक रचना है, जिसमें काव्यचौर्य से सम्बद्ध विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

---

१. क. म. १/६
२. बालरा. १/१२

२. **रूपक**—बालरामायण, बालभारत और विद्धशालभञ्जिका रूपक के अन्तर्गत आते हैं।

(क) बालरामायणम्

यह राजशेखर विरचित दस अङ्कों का महानाटक हैं। इसमें कुल ७६४ पद्य हैं। इस नाटक की कथा का आधार वाल्मीकी रामायण है। इस नाटक में राजशेखर ने वीर रस को प्राथमिकता दी है उन्होंने प्रमुख रूप से शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है।

(ख) बालभारत

इस रूपक के दो अङ्क ही उपलब्ध होते हैं। कुछ विद्वान् इस नाटक का दूसरा नाम प्रचण्डपाण्डव भी बतलाते हैं। इस नाटक द्वारा राजशेखर के अपूर्व पाण्डित्य, देशकाल का ज्ञान, भाषा वैदग्ध्य और वर्णन चातुर्य का पता चलता है।

(ग) विद्धशालभञ्जिका

राजशेखर प्रणीत यह नाटिका चार अङ्कों में विभक्त है। इसमें शृङ्गार रस और शिखरिणी छन्द का प्रयोग प्रमुख रूप से हुआ है साथ ही वैदर्भी रीति का भी समावेश है।

३. उपरूपक—कर्पूरमञ्जरी उपरूपक के अन्तर्गत आता है।

(क) कर्पूरमञ्जरी

यह सट्टक प्राकृत भाषा में लिखा गया है। इसकी कथा चार जवनिकाओं में विभक्त है। इसमें वैदर्भी, मागधी तथा पाञ्चाली तीनों रीतियों का समन्वय है। कर्पूरमञ्जरी में शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका और स्रग्धरा छन्दों का प्रयोग किया गया है। इस सट्टक में शृङ्गार रस को प्रधानता दी गयी है।

कुछ विद्वान् हरविलास को राजशेखर के छठे ग्रन्थ के रूप में स्वीकार करते हैं जिसको हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ काव्यानुशासन में उल्लेख किया है।[1]

उपर्युक्त ग्रन्थों का अध्ययन करने पर यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि कवि और नाटककार के रूप में राजशेखर की सर्वोत्कृष्टता संस्कृत वाङ्मय में विख्यात है। राजशेखर का साहित्यमीमांसक के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि उन्होंने

---

१. आशीर्यथा हरविलासे—

(क) ओमित्येतत्परं ब्रह्म श्रुतीनां मुखमक्षरम्।
प्रसीदतु सतां स्वान्तेष्वेकं त्रिपुरुषीमयम्।। काव्यानु. ८/ पृ. ४५६

(ख) इतस्ततो भषन्भूरि न पतेत् पिशुनः शुनः।
अवदाततया किं च न भेदो हंसतः सतः।। वही, ८/ पृ. ४५७

प्राचीन समय से चली आ रही अविच्छिन्न साहित्य की धारा को अपनी विद्वत्ता से पुनः आगे बढ़ाया जिसके कारण परवर्ती साहित्यशास्त्र भी प्रभावित हुआ।

(ख) प्रसन्नराघवम् के रचयिता जयदेव
जीवनवृत्त, रचनाकाल, कर्तृत्व

संस्कृत साहित्य के इतिहास में जयदेव का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जयदेव ने अपनी कला और काव्यप्रतिभा से नाटकीय संवादों में एक अनूठी सजीवता उत्पन्न कर दी है। यह कविताकामिनी को सजाने संवारने वाले हैं। जयदेव के मूलतः कवि होने के कारण इनके ग्रन्थ काव्य के वैभव से परिपूर्ण हैं। इनके नाटकीय पद्यों में उदात्तभाव, सौन्दर्य, कवि की प्रौढ़ कल्पना, सहज और गम्भीर अनुभूति के गुण विद्यमान हैं।

जीवनवृत्त

महाकवि जयदेव ने अपने सत्ताकाल तथा आश्रयदाता आदि के विषय में निर्देश नहीं किया है। अपने माता–पिता का उल्लेख इन्होंने अपने ग्रन्थ चन्द्रालोक और प्रसन्नराघव में किया है। इसके अनुसार महाकवि जयदेव का जन्म कौण्डिल्य गोत्र में हुआ था, इनके पिता का नाम महादेव और माता का नाम सुमित्रा था। इनके पिता महादेव सत्रप्रमुख मखविद्याप्रवीण थे। चन्द्रालोक में इनके माता–पिता का उल्लेख इस प्रकार है–

महादेवः सत्रप्रमुखमखविद्यैकचतुरः
सुमित्रा तद्भक्तिप्रणिहितमतिर्यस्य पितरौ।
अनेनासावाद्यः सुकविजयदेवेन रुचिते
चिरं चन्द्रालोके सुखयतु मयूखः सुमनसः।।[1]

प्रसन्नराघव में उन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है–

विलासो यद्वाचामसमरसनिष्यन्दमधुरः
कुरङ्गाक्षी बिम्बाधरमधुरभावं गमयति।
कवीन्द्रः कौण्डिन्यः स तव जयदेवः श्रवणयो–
रयासीदातिथ्यं न किमिह महादेवतनयः।।

अपि च

लक्ष्मणस्येव यस्यास्य सुमित्राकुक्षिजन्मनः।
रामचन्द्रपदाम्भोजे भ्रमद्भृङ्गायते मनः।।[2]

---

१. च. लो. १/१६
२. प्रसन्नरा. १/१४-१५

महाकवि जयदेव ने अपने ग्रन्थ चन्द्रालोक के प्रारम्भ में स्वयं का उल्लेख पीयूषवर्ष नाम से किया है—

चन्द्रालोकममुं स्वयं वितनुते पीयूषवर्षः कृती।[1]

प्रसन्नराघव और चन्द्रालोक द्वारा हमें महाकवि जयदेव का यही परिचय प्राप्त होता है।

जयदेव ने प्रसन्नराघव की प्रस्तावना में स्वयं को प्रमाण-प्रवीण (तर्कशास्त्र में निष्णात) बतलाया है—

नन्वयं प्रमाणप्रवीणोऽपि श्रूयते।[2]

अद्भुत नैयायिक होने के कारण जयदेव को पक्षधर-मिश्र की उपाधि से विभूषित किया गया था।

उपर्युक्त विवरण से हमें यह ज्ञात होता है कि महाकवि जयदेव का संस्कृत—साहित्य में अभूतपूर्व योगदान है। उनके पाण्डित्य का प्रभाव संस्कृत-साहित्य के साथ ही हिन्दी के उत्तरवर्ती साहित्य पर भी दृष्टिगत होता है।

रचनाकाल

महाकवि जयदेव के रचनाकाल का स्पष्ट उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है लेकिन उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती ग्रन्थों में उनके उल्लेख के आधार पर कुछ तथ्य निकाले जा सकते हैं।

अलङ्कार सम्प्रदाय के समर्थक जयदेव ने अपने अलङ्कार ग्रन्थ चन्द्रालोक में अलङ्कार की महत्ता को प्रतिपादित किया है—

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती।।[3]

शब्द के प्रयोग के आधार पर यह ज्ञात होता है कि इन्होंने मम्मट के काव्यलक्षण पर आक्षेप किया है।

दूसरी ओर जयदेव ने चन्द्रालोक में विकल्प और विचित्र अलंकारों का उल्लेख किया है। जिनके प्रथम उद्भावक आचार्य रूय्यक हैं।

इसी प्रकार जयदेव ने अपने ग्रन्थ प्रसन्नराघव की प्रस्तावना में नैषधीयचरित के रचनाकार श्रीहर्ष का स्मरण किया है—

---

१. च. लो. १/२
२. प्रसन्नरा. १/पृ. २६
३. च. लो. १/८

हर्षो—हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः।[1]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि जयदेव पर पूर्ववर्ती रचनाकारों मम्मट, रूय्यक और श्रीहर्ष का स्पष्ट प्रभाव था, जिनका समय सम्भवतः ग्यारहवीं तथा द्वादश शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इस प्रकार जयदेव इनके परवर्ती सिद्ध होते हैं।

आचार्य शार्ङ्गधर ने अपने ग्रन्थ शार्ङ्गधरपद्धति में जिनका रचनाकाल १३६३ ई. है उसमें प्रसन्नराघव के एक पद्य को उद्धृत किया है—

उत्तरय कुरङ्गलोचने लोचने कमलगर्वमोचने।
अस्तु सुन्दरि! कलिन्दनन्दिनीवीचिडम्बरगभीरमम्बरम्।।[2]

इसके अतिरिक्त शिङ्गभूपाल ने रसार्णवसुधाकर के तृतीय विलास में प्रसन्नराघव का उल्लेख किया है—

प्रत्यङ्कमङ्कुरितसर्वरसावतारं, नव्योल्लसत्कुसुमराजिविराजिबन्धम्।
धर्मेतरांशुरिववक्रतयातिरम्यं नाट्यप्रबन्धमतिमञ्जुलसंविधानम्।।[3]

शिङ्गभूपाल का समय १३३० ई. है। अतः जयदेव का समय १२०० ई. से १३३० ई. के मध्य माना जा सकता है।

यदि हम प्रसिद्धि और आयु के लिए कम से कम ८० वर्ष का भी अनुमान करें तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनका रचनाकाल १२५० ई. के आसपास रहा होगा।

कर्तृत्व

संस्कृत साहित्य में महाकवि जयदेव विरचित दो ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है—

१. चन्द्रालोक

२. प्रसन्नराघव

इनके ग्रन्थों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। चन्द्रालोक अलङ्कार ग्रन्थ होने के कारण साहित्यशास्त्र की श्रेणी में आता है जबकि प्रसन्नराघव नाटक होने के कारण रूपक की श्रेणी में आता है।

चन्द्रालोक

यह एक अलङ्कार ग्रन्थ है। इसमें महाकवि जयदेव ने १०० अलङ्कारों को वर्णित किया है। इस ग्रन्थ की रचना दश मयूखों और २६४ श्लोकों के अन्तर्गत की

---

१. प्रसन्नरा. १/२२

२. शार्ङ्ग. प. पृ. ५२५

३. रसा. सु. ३/पृ. ४०६

गयी है। इस ग्रन्थ में महाकवि जयदेव ने काव्य के गुण, दोष, रस, रीति तथा अलङ्कारादि आवश्यक विषयों को पूर्ण रूप से सन्निहित किया है।

प्रसन्नराघवम्

महाकवि जयदेव ने रामकथा के परिवेश में सात अङ्कीय प्रसन्नराघवम् नाटक की रचना की है। इसमें सीता—स्वयंवर से लेकर रावण वधोपरान्त राम के अयोध्या प्रत्यागमन तक की कथा वर्णित है। पाञ्चाली रीति प्रधान और प्रसाद, माधुर्य गुणों से गुम्फित प्रसन्नराघव कोमल कान्त पदावली का भव्य निदर्शन है। इसमें अङ्गी रस वीर है साथ ही विप्रलम्भ शृङ्गार का भी वर्णन प्राप्त होता है। इस नाटक में श्लोक का विशाल संग्रह है। सबसे अधिक श्लोक सप्तम अङ्क में और सबसे कम श्लोक प्रथम अङ्क में दिखाई पड़ते हैं। इसमें इन्होंने रामायण की कथा को अनेक रोचक परिवर्तनों के साथ सरस शैली में प्रस्तुत किया है। इसीलिए इसके प्रत्येक अङ्क का माधुर्य और काव्यविलास अत्यन्त रुचिकर प्रतीत होता है। भाषा अत्यन्त ही सरस, रुचिर तथा ललित है।

उपर्युक्त विवेचन से यह विदित होता है कि संस्कृत साहित्य में महाकवि जयदेव का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे एक आलङ्कारिक होने के साथ ही एक सफल नाटककार भी हैं।

(ग) बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—टीका परम्परा

टीका शब्द टीकृ (गतौ) धातु से निष्पन्न है। 'टीक्यते गम्यते ग्रन्थार्थोऽनया' अर्थात् जिसके द्वारा ग्रन्थ का मूल अर्थ स्पष्ट हो उसे टीका कहा जाता है।[1] राजशेखर ने भी टीका शब्द की व्याख्या इसी अर्थ में की है—यथासम्भवम अर्थस्य टीकनटीका।[2] अभिधान—चिन्तामणि कोश में आचार्य हेमचन्द्र ने टीका का अर्थ किया है—निरन्तर-व्याख्या अर्थात् किसी ग्रन्थ के साधारण तथा असाधारण प्रत्येक शब्दों की व्याख्या का नाम है—टीका।[3]

इस प्रकार टीका उसे कहा जाता है, जिसके द्वारा मूल ग्रन्थ के भाव तथा प्रतिपाद्य को भली-भाँति स्पष्ट किया जा सके तथा उसकी समुचित व्याख्या की जा सके। काव्यरूपी समुद्र के अलौकिक ज्ञान का मन्थन टीकाओं से ही सहज हो पाता है।

किसी भी शास्त्र को समझने और काव्य के रसात्मबोध के लिये टीकाओं का

१. सं. हि. को. (आप्टे), पृ. ४१३

२. का. मी. २/पृ. २०

३. अभि. चि. को. २/पृ. १७०

विशेष योगदान होता है। टीका सेतु के समान होती है, क्योंकि इसी के माध्यम से काव्य की विशेषताओं, उसके स्वरूप आदि की व्याख्या होती है।

संस्कृत साहित्य में टीका की परम्परा का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि समय-समय पर एक ही काव्य की अनेक टीकायें लिखी जाती रहीं। इससे जहाँ एक ओर टीकाकारों का सहृदय सामाजिक होना स्पष्ट होता है, वहीं दूसरी ओर काव्य का भावगत तथा शिल्पगत वैशिष्ट्य भी उद्घाटित होता है। कोई टीकाकार अपनी टीका को साहित्यिक सौन्दर्य से संवलित करता है, तो कोई व्याकरणिक व्याख्या से, कोई दार्शनिक दृष्टि से रचना की व्याख्या करता है, तो कोई काव्यशास्त्रीय दृष्टि से। वह काव्य के अन्तस्सौन्दर्य को अपनी भावयित्री प्रतिभा, कल्पना तथा सूक्ष्म चिन्तन शैली के अनुशीलन से सहृदय संवेद्य कर देता है। काव्य की उत्कृष्टता की परख टीकाओं के माध्यम से उसी प्रकार होती है, जैसे स्वर्ण की उत्कृष्टता की परख अग्नि में तपाये जाने से होती है।[१]

टीका-परम्परा अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होती है, इसका प्रारम्भ वैदिक युग से माना जा सकता है। वेद के मन्त्रों की व्याख्या करने वाले ब्राह्मण ग्रन्थ टीका परम्परा के आदि प्रवर्तक स्वीकार किये जा सकते हैं जिसके मन्त्रों की सार्थकता को स्पष्ट करने के लिये कभी आख्यान तो कभी निर्वचन आदि का आश्रय लिया गया है। इसी प्रकार निरुक्त नामक वेदाङ्ग भी निघण्टु का व्याख्यापरक ग्रन्थ ही है। इस प्रसङ्ग में निघण्टु एक प्राचीनतम वैदिक कोश है, जिसके टीका ग्रन्थ के प्रतिनिधि रूप में यास्क विरचित निरुक्त को स्वीकार किया जा सकता है। इसमें निर्वचन के माध्यम से वैदिक शब्दों के मूल अर्थ तक पहुँचने का प्रयास किया गया है। प्रसङ्गतः व्याख्या की पुष्टि के लिये ब्राह्मण वाक्य, उपनिषद् आदि को भी यत्र-तत्र उद्धृत किया गया है।

टीका में भाव विशेष को किसी विशेष शब्द के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। टीका की महत्ता प्रतिपादित करते हुये निघण्टु के व्याख्याकार देवराज यज्वा का कथन है—

एवं व्याकीर्णेषु कोशेषु नियमैक भूतस्य प्रतिपदनिर्वचननिगमप्रदर्शनपरस्य कस्यचिद् व्याख्यानस्याभावात् नैघण्टुककाण्डमुत्सन्ना प्रायमासीत्।[२]

यद्यपि कवि के व्यक्तित्व उसकी आधार भूमि तथा भाषा की दृष्टि से टीका के अनेक प्रकार हो सकते हैं, तथापि स्थूल दृष्टि से शैलीगत रूप में टीका के दो भेद किये जा सकते हैं—

१. दण्डान्वय टीका तथा २. खण्डान्वय टीका।

दण्डान्वय टीका के अन्तर्गत सर्वप्रथम श्लोक का अन्वय किया जाता है,

१. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा। रघु. १/१०

२. निघ. तथा निरु. भूमि. पृ. ५

तत्पश्चात् उसी के शब्दों द्वारा क्रमानुसार अर्थ किया जाता है। इस प्रकार श्लोक में आये हुये शब्दों की क्रमशः व्याख्या करते हुए परम्परया सम्पूर्ण श्लोक की व्याख्या की जाती है। इसके अतिरिक्त शब्दों में विभक्ति निर्देश, समास तथा उनकी व्याकरणात्मक व्युत्पत्तियों का भी विशेष ध्यान रखा जाता है। कभी—कभी टीकाकार टीका के अन्त में श्लोक के भाव रस, छन्द तथा अलङ्कार का भी निर्देश करता है।

खण्डान्वय टीका में श्लोक का अन्वय किये बिना ही अर्थ किया जाता है। श्लोक की मूल विषयवस्तु को ग्रहण करके प्रश्नोत्तर पद्धति से श्लोक को छोटे—छोटे खण्डों में विभक्त करके वर्णन किया जाता है। इस प्रकार इस टीका में अन्वय की क्रमबद्धता के बिना ही मूल विषय को नैयायिकों की भाषाशैली में स्पष्ट किया जाता है, क्योंकि इसमें व्याकरण तथा पद के स्वरूप की प्रधानता होती है।

बालरामायण तथा प्रसन्नराघव नाटकों पर भी टीकाओं का विवरण प्राप्त होता है। जिनका संक्षिप्त उल्लेख यहाँ पर किया जा रहा है।

बालरामायणम्—टीका परम्परा

बालरामायण नाटक पर अनेक संस्करण लिखे गये हैं, किन्तु वर्तमान समय में कतिपय संस्करण ही प्राप्त होते हैं।

पण्डित संस्करण

सर्वप्रथम जून १८६८ से अप्रैल १८६६ ई. की बनारस (काशीविद्या सुधानिधि) से निकलने वाली मासिक पण्डित-पत्रिका में इस नाटक का मुद्रण हुआ है। सन् १८६६ में गोविन्ददेव शास्त्री द्वारा इसका पुनर्मुद्रण करके पुस्तक का रूप दिया गया है।[1] वर्तमान समय में यह उपलब्ध नहीं है।

जीवानन्द संस्करण

सन् १८८४ ई. में कलकत्ता से जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य का व्याख्या सहित संस्करण प्रकाशित हुआ है, इसकी संस्कृतव्याख्या टीकाशैली की है, जो अनुपलब्ध है।[2]

लक्ष्मणसूरि संस्करण

सन् १८६६ ई. में बालरामायण के पाँच अङ्कों पर तत्त्वालोक नाम से व्याख्या श्री एन.वी. लक्ष्मणशास्त्री द्वारा लिखी गयी है। यह मत्तंजानगर से प्रकाशित हुयी है।[3]

चौखम्बा संस्करण

यह डॉ. गङ्गासागर राय के हिन्दी अनुवाद सहित १६८४ में प्रकाशित है।[4]

१. बालरा. तु. हि. समी. में उद्धृत ११/पृ. २८६

२. वही, ११/पृ. २६०

३. वही, ११/पृ. २६०

४. बालरा. तु. हि. समी. ११/पृ. २६०

आङ्ग्ल भाषान्तर

पंजाब संस्कृत पुस्तकालय (सौदामिट्ठा बाजार, लाहोर) की एक प्राचीन पुस्तक सूची में बालरामायण के पाँच अङ्कों के आङ्ग्ल भाषान्तर का उल्लेख है (सं. २६३७) परन्तु यह संस्करण प्रायः पुस्तकालयों में और सम्भवतः प्रकाशक के पास भी अप्राप्य है।[1]

हस्तलिखित

बालरामायण की अनेक पाण्डुलिपियाँ विभिन्न स्थलों पर मिलती हैं। सरस्वती-भवन पुस्तकालय वाराणसी में कागज पर लिखी हुई एक प्रति है, जिसका लिपिकाल अन्त में संवत् १८५८ दिया गया है।

तञ्जोर के महाराज सैरफोजी के सारस्वत महल पुस्तकालय में छः प्रतियाँ हैं, जिनमें पाँच में मूलपाठ तथा एक में टीका भी है।

गवर्मेण्ट ओरिएण्टल मैन्यूस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास में दो प्रतियाँ मूलपाठ और व्याख्या से युक्त हैं। मूलपाठ की पुस्तक श्रीताल पर है, एक ग्रन्थलिपि वाली मूल पाठ की प्रति अपूर्ण और त्रुटियुक्त है। जम्मू कश्मीर के महाराज के रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय में एक प्रति है।[2]

बादलिन लाइब्रेरी ऑक्सफोर्ड तथा इण्डिया लाइब्रेरी ऑफिस में दो-दो प्रतियाँ हैं। इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी की एक मूलपाठ युक्त प्रति शारदालिपि में १६६७ ई. की तथा दूसरी टीकायुक्त प्रति देवनागरी लिपि में १६२४ ई. के आसपास लिखी गयी है।

मैसूर में मेलकोट के अर्चक योगानन्द भट्ट और तञ्जौर में पुडूकोट वाली प्रति ग्रन्थलिपि में है। नासिक के गोविन्दशास्त्री निरन्तार के व्यक्तिगत पुस्तकालय में एक पूर्ण प्रति है।

विलियम टेलर ने अपनी सूची में एक पूर्णप्रति का विवरण दिया है, जिसमें बालरामायण का नामान्तर वीरविलास मिलता है। राजेन्द्रलाल मित्रा ने कागज पर बङ्गाली लिपि में लिखी गयी एक प्रति का विस्तृत विवेचन किया है। डॉ. ई. हुल्त्ज ने एक प्रति की सूचना दी है। आफ्रेक्ट महोदय के कैटलॉगस कैटलॉगारम में कीलहॉर्न, राजारामशास्त्री, बर्नल और राइस की सूचियों (तथा Report on sans. mss. १८७२-७३, Bombay १८७८-८०) के अनुसार और भी पाँच प्रतियों के सङ्केत हैं। इनमे कीलहार्न की सूची में उल्लिखित बालरामायण टीकायुक्त बतलाया गया है।

---

१. बालरा. तु. हि. समी, ११/पृ. २६१

२. वही, ११/पृ. २६१

३. वही, ११/पृ. २६२-२६३

प्रसन्नराघवम्—टीका परम्परा

प्रसन्नराघव नाटक पर जो टीकायें उपलब्ध होती हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

रमा संस्करण

१९७० ई. में मोतीलाल बनारसीदास (दिल्ली, वाराणसी, पटना) से प्रकाशित यह टीका रमा नाम से संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी द्वारा लिखी गयी है।

चन्द्रकला संस्करण

आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मी द्वारा चन्द्रकला नाम से संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित टीका लिखी गयी है, जो चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से प्रकाशित है। इसका तृतीय संस्करण (वि.संवत् २०२९) सन् १९७२ में प्रकाशित हुआ है।

प्रसन्नराघवम् नाटक का एक अन्य संस्करण भी है। श्री वासुदेव शर्मा द्वारा प्रस्तुत यह संस्करण १९८२ में दिल्ली से प्रकाशित है।

विभा संस्करण

सन् १९७७ ई. (वि.सं. २०३४) में चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित विभा नाम्नी टीका संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित लिखी गयी है। इसकी संस्कृत व्याख्या पं. रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री और हिन्दी व्याख्या डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी द्वारा की गयी है।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों पर अनेक टीकायें लिखी गयी हैं, जिनमें से कतिपय वर्तमान समय में उपलब्ध हैं और कतिपय टीकाओं का उल्लेख मात्र प्राप्त होता है।

❊

तृतीय अध्याय
बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—कथावस्तु विधान

(क) विवेच्य नाटकों की कथावस्तु

महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण को आदिकाव्य के रूप में विश्वसाहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। रामकथा का आधार श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण है।

रामायण के नायक राम का चरित एक ऐसा चरित है जिसको वाल्मीकि के परवर्ती कवि उपजीव्य मानकर राम-साहित्य सर्जना करते चले आ रहे हैं। वे साहित्यकार संस्कृत साहित्य क्षेत्र के हों या हिन्दी साहित्य क्षेत्र के रहे हों उन्होंने राम साहित्य को लेकर महाकाव्य, नाटक इत्यादि की रचना की है। उनके महाकाव्य और नाटक में राम का चरित बालरूप में, वनवासी रूप में या राजा राम के रूप में चित्रित किया गया है, लेकिन उसके मूल में रामायण का पुट अवश्य मिलता है।

राम-साहित्य में राम के जीवन को अभिलक्षित करके जो भी विवेचन किया गया है उसमें आध्यात्मिक, सामाजिक, व्यावहारिक, पारिवारिक, सांस्कारिक, भौगोलिक तथा चारित्रिक स्थितियाँ देखने और पढ़ने को मिलती हैं। इस महती रचना के द्वारा वाल्मीकि अनेक महाकवियों और नाटककारों को अपनी ओर आकर्षित करने में पूर्ण रूप से सफल हुये हैं।

बालरामायणम् की कथावस्तु

महाकवि राजशेखर विरचित बालरामायण नाटक दस अङ्कों में विभाजित किया गया है, इसमें वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड के सीता-स्वयंवर से लेकर युद्धकाण्ड के रावण-विजय तक के प्रसङ्गों को नवीन कल्पनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इसका कथानक इस प्रकार है—

प्रथम अङ्क

विश्वामित्र के प्रतिनिधि शुनःशेप द्वारा ज्ञात होता है कि महर्षि विश्वामित्र राक्षसों से रक्षा के निमित्त रामचन्द्र को लेने के लिये अयोध्या गये हुये हैं। जनक के धनुः यज्ञ में रावण उपस्थित होकर क्रोधपूर्वक शिवधनुष को उठाता है और कुछ विचार करके तिरस्कारपूर्वक धनुष फेंक देता है। उसकी इस चेष्टा से क्रुद्ध जनक को पुरोहित शतानन्द शान्त करते हैं। रावण यह प्रतिज्ञा करता है कि सीता का जो वरण करेगा उसका कण्ठ काटकर उसके रक्त का आस्वादन मैं अपनी तलवार को कराऊँगा। नाटक की कथा का बीज रावण की प्रतिज्ञा होने के कारण इस अङ्क का नाम प्रतिज्ञापौलस्त्य रखा गया है।[1]

1. इति प्रतिज्ञापौलस्त्यो नाम प्रथमोऽङ्कः। बालरा. पृ. ३२

द्वितीय अङ्क

नारद और शिव के गण भृङ्गिरिटि के वार्तालाप द्वारा ज्ञात होता है कि क्रुद्ध परशुराम रावण से युद्ध करने के लिये आ रहे हैं। रावण सीता का स्मरण कर रहा है, उसी समय परशुराम अपने शिष्य सहित उपस्थित हो जाते हैं। दोनों में परस्पर वार्तालाप बढ़कर विवाद का रूप ले लेता है परन्तु भगवान् शिव के गण भृङ्गिरिटि उन दोनों को रोकते हैं। परशुराम और रावण के वाक्कलह के कारण ही इस अङ्क का नाम राम-रावणीय रखा गया है।[१]

तृतीय अङ्क

गृध्र दम्पत्ति के परस्पर वार्तालाप द्वारा सूचित होता है कि यज्ञ रक्षार्थ राम ने ताटका आदि का वध कर दिया है। रावण के विनोदार्थ स्वयंवररूपी अभिनय में विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण भी सम्मिलित होते हैं। स्वयंवर में धात्री द्वारा घोषणा की जाती है कि शिवधनुष को भङ्ग करने वाला ही सीता का वरण करेगा। स्वयंवर में उपस्थित राजा जब शिवधनु को तोड़ने में असफल होते हैं तो राम धनुर्भङ्ग करते हैं और सीता का पाणिग्रहण करते हैं। यह देखकर रावण के उत्तेजित होने पर प्रतीहारी उसे समझाती है कि यह अभिनय है, वास्तविक धनुर्भङ्ग नहीं है। रावण के वैलक्ष्य को लक्षित कर इस अङ्क का नाम विलक्षलङ्केश्वर रखा गया है।[२]

चतुर्थ अङ्क

श्रीराम द्वारा धनुर्भङ्ग करने का समाचार सुनकर परशुराम क्रोधित होकर राम से युद्ध करने के लिये मिथिला आ रहे हैं, यह सूचना उपाध्याय और बटु के परस्पर वार्तालाप द्वारा प्राप्त होती है। गुरुजन सीता को स्त्री-धर्म का उपदेश देते हैं उसी समय क्रोधित परशुराम का आगमन होता है। राम विनम्रता और शिष्टता का परिचय देते हैं, महर्षि विश्वामित्र के समझाने पर भी परशुराम का क्रोध शान्त नहीं होता है, राम के साथ युद्ध में परशुराम की पराजय होती है और उनके दम्भ का भङ्ग होता है। यही कारण है कि यह अङ्क भार्गव-भङ्ग के नाम से जाना जाता है।[३]

पञ्चम अङ्क

माल्यवान और मायामय की परस्पर वार्ता से ज्ञात होता है कि राम और परशुराम के युद्ध में राम विजयी हुये। राम सीता पर आसक्त है। ऐसी स्थिति में यन्त्र-जानकी और उनकी सखी सिन्दूरिका रावण के सामने उपस्थित की जाती है। जब वह आलिङ्गन के लिये उद्योग करता है तब उसे यन्त्र जानकी का ज्ञान होता है।

---

१. इति परशुरामरावणीयो नाम द्वितीयोऽङ्कः। बालरा. पृ. ६०

२. इति विलक्षलङ्केश्वरो नाम तृतीयोऽङ्कः। वही, पृ. १००

३. इति भार्गव भङ्गो नाम चतुर्थोऽङ्कः। वही, पृ. १३७

उसकी कामशान्ति के लिये नदियाँ, अप्सरायें, गिरिकन्यायें, वारुणि, लक्ष्मी, और सरस्वती उसका उपचार करती हैं। तभी शूर्पणखा के नाक कटाकर आने पर रावण क्रोध से प्रज्वलित हो उठता है। इस अङ्क में रावण की कामवेदना और उसकी उन्मत्तावस्था द्योतित होने के कारण इस अङ्क का नाम उन्मत्त दशानन रखा गया है।[१]

षष्ठ अङ्क

कुरुपित शूर्पणखा जब रावण के समीप आती है तब रावण के सक्रोध पूछने पर कहती है कि राम और लक्ष्मण द्वारा इस स्थिति में पहुँचा दी गयी हूँ। माल्यवान के आदेशानुसार शूर्पणखा और मायामय छद्म वेष धारण कर अयोध्या जाते हैं जहाँ कैकेयी, दशरथ से राम वनवास की याचना करती है। सुमन्त्र आकर नर्मदा तक राम को पहुँचाने की सूचना देते हैं, उसी समय जटायु का दूत चित्रशिखण्ड आकर रावण द्वारा सीताहरण की सूचना देता है। इस अङ्क में दशरथ को पूर्णतया निर्दोष दिखाया गया है इसीलिये इस अङ्क का नाम निर्दोष दशरथ रखा गया है।[२]

सप्तम अङ्क

इस अङ्क में सागर तट पर सागर से मार्ग की याचना, सागर की प्रथमतः उपेक्षा और अग्निबाण से दग्ध होकर प्रकट होना और सेतु का निर्माण वर्णित है। सेतुबन्ध के निर्माण में बाधा डालने हेतु राक्षसी आकर भयङ्कर युद्ध करती है और उसकी पराजय होती है। राम सीता के कटे हुये शिर को देखकर विलाप करते हैं तभी मैना कठपुतली का यथार्थ व्यक्त कर देती है। तदनन्तर रावण पुत्र सिंहनाद से परस्पर वाद-विवाद के पश्चात् राम नगर-सीमा से दूर हटकर युद्ध करने का परामर्श देते हैं। इस अङ्क में राम के असीम-पराक्रम का वर्णन है, अतः इस अङ्क का नाम असम-पराक्रम है।[३]

अष्टम अङ्क

दुर्मुख और सुमुख के परस्पर वार्तालाप द्वारा सिंहनाद की मृत्यु की सूचना मिलती है। रावण द्वारा भेजे गये तुला-द्यूत के प्रस्ताव को राम स्वीकार कर लेते हैं। अङ्गद और नरान्तक युद्ध करते हैं। इस युद्ध में नरान्तक मृत्यु को प्राप्त होता है। रावण युद्ध की घोषणा कर देता है। त्रिजटा युद्ध का समस्त वृत्तान्त सीता को बताती है। अन्त में मेघनाद और कुम्भकर्ण का वध होता है। इस अङ्क में वीरों का चरित्र वर्णित है। अतः इस अङ्क का नाम वीरविलास रखा गया है।[४]

---

१. उन्मत्तदशाननो नाम पञ्चमोऽङ्कः। बालरा. पृ. १७३
२. निर्दोषदशरथो नाम षष्ठोऽङ्कः। वही, पृ. २११
३. इति असमपराक्रमो नाम सप्तमोऽङ्कः। वही, पृ. २५५
४. इति वीरविलासो नामाष्टमोऽङ्कः। वही, पृ. ३०२

नवम अङ्क

यम के दूत द्वारा ज्ञात होता है कि यमराज जानना चाहते हैं कि किस लङ्कावासी का किसके द्वारा कब वध होगा और राम-रावण का युद्ध किस प्रकार होगा। चित्रगुप्त लङ्का का लेखपट्ट देते हैं। उसमें लिखा है कि त्रेता के प्रथम वर्ष में कार्तिक कृष्णपक्ष के प्रतिपदा (प्रथम) के दिन प्रातः लङ्का को राम के अनुचर सुग्रीव की वानर सेना ने बलात् घेर लिया है। धूम्राक्ष और अकम्पन को हनूमान ने मारा, प्रहस्त को नील ने मारा और दूसरे दिन राम ने कुम्भकर्ण का वध किया। अङ्गद ने नरान्तक को मारा और हनुमान ने देवान्तक और त्रिशिरा को मारा। महापार्श्व को ऋषभ ने मारा तथा तीसरे दिन लक्ष्मण ने अतिकाय को मारा। कुम्भकर्ण के दोनों पुत्रों, कुम्भ और निकुम्भ को सुग्रीव और हनुमान ने मारा। खर-पुत्र मकराक्ष को राम ने मारा, मेघनाद का वध लक्ष्मण ने किया। चौथे दिन सुग्रीव ने महोदर और विरूपाक्ष को मारा तथा पाँचवें दिन बड़े प्रयास से राम द्वारा रावण का वध किया जायेगा तत्पश्चात् राम-रावण का रथ युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। युद्ध में दिव्य अस्त्रों का प्रयोग होता है। अंततः श्रीराम ब्रह्मास्त्र से रावण का शिरःछेद करते हैं। रावणवध का वर्णन इस अङ्क में होने से इसका नाम रावणवध है।[1]

दशम अङ्क

रावण विजयोपरान्त राम पुष्पक विमान द्वारा लङ्का से अयोध्या आते हैं। मार्ग में हिमालय, कैलाश, मन्दराचल, मेरु आदि दिव्यलोकों का वर्णन और मलय, रोहण आदि के वर्णन के पश्चात् विमान अगस्त्याश्रम में उतरता है तत्पश्चात् द्रविड़, आन्ध्र, कावेरी, महाराष्ट्र, नर्मदा, लाट, मालवा, उज्जयिनी, पाञ्चाल, कान्यकुब्ज, प्रयाग, वाराणसी तथा मिथिला का अवलोकन करते हुये विमान अयोध्या में उतरता है। अन्त में भरत वाक्य के साथ नाटक पूर्ण होता है। राज्याभिषेक के आमोदमय प्रसङ्ग के कारण इस अङ्क का नाम राघवानन्द रखा गया है।[2]

प्रसन्नराघवम् की कथावस्तु

जयदेव विरचित प्रसन्नराघव नाटक सात अङ्कों में विभाजित है। वाल्मीकीय रामायण को आधार बनाकर कवि ने नवीन उद्भावनाओं का समावेश इस नाटक में किया है। इसमें रामायण के बालकाण्ड के सीता-स्वयंवर से लेकर युद्धकाण्ड के रावण-विजय तक के प्रसङ्ग वर्णित हैं। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—

प्रथम अङ्क

दाल्भ्यायन के प्रवेश करते ही शूद्र, नट तथा सूत्रधार मंच से निकल जाते हैं।

---

१. रावणवधो नाम नवमोऽङ्कः। बालरा. पृ. ३३०

२. राघवानन्दो नाम दशमोऽङ्कः। वही, पृ. ३७२

दाल्भ्यायन मंच पर सीता-स्वयंवर में रावण के प्रत्याशी के रूप में उपस्थित होने का समाचार देते हैं। सीता-स्वयंवर में उपस्थित राजसमुदाय का वर्णन स्तुतिपाठक करते हैं। रावण का प्रवेश, बाणासुर और रावण का वाक्‌युद्ध, बाण का नन्दनवन के समूल नाश के लिये प्रस्थान के साथ ही मारीच का करुण-क्रन्दन सुनकर रावण का गमन इसके साथ ही स्तुति पाठकों का भी स्वयंवर वृत्तान्त जानने के लिये जाने के साथ ही प्रथम अङ्क समाप्त होता है।

द्वितीय अङ्क

तापस और भिक्षु वेषधारी राक्षसों का वार्तालाप विश्वामित्र द्वारा कौशल्या को प्रदत्त ताड़ङ्कयुग्म को लेकर होता है। दोनों का मिथिला जाने का प्रयोजन एक ही है। भिक्षु ताड़का मरण की सूचना देने के साथ ही राम-लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ मिथिला में आने का वृत्तान्त सुनाता है। राम पुष्पवाटिका में बसन्त के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं, वाटिका में उन्हें राजकुमारी सीता के दर्शन होते हैं। जब सीता वहाँ से प्रस्थान करती हैं तब राम और लक्ष्मण भी विश्वामित्र की पूजा के लिये पुष्प लेकर चले जाते हैं। इसके साथ ही द्वितीय अङ्क की समाप्ति होती है।

तृतीय अङ्क

वामनक और कुब्जक का हास्य वार्तालाप राम और सीता के भावी सम्बन्ध की सूचना देता है तत्पश्चात् विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण का प्रवेश होता है। शतानन्द और स्वयंवर में उपस्थित नृपसमुदाय के सम्मुख राम शिवधनुर्भङ्ग करके सीता का पाणिग्रहण करते हैं, इसके साथ ही सीता की बहनों उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्ति का विवाह राम के भाइयों लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के साथ हो जाता है, यहाँ पर तृतीय अङ्क समाप्त होता है।

चतुर्थ अङ्क

परशुराम का आगमन होता है और राम-लक्ष्मण के साथ उनका वक्रोक्तिपूर्ण वार्तालाप होता है। जब परशुराम विश्वामित्र पर आक्षेप करते हैं तब राम क्रोधित हो जाते हैं और परशुराम के साथ युद्ध भूमि में प्रवेश कर उनके द्वारा दिये गये विष्णु धनुष को चढ़ाकर अपने वैष्णवी प्रभाव को सिद्ध कर देते हैं। इस प्रभाव को देखकर परशुराम शान्त होकर राम को राक्षस विजय का आशीर्वाद देते हैं तत्पश्चात् परशुराम प्रस्थान करते हैं और राम-लक्ष्मण भी बान्धवों के दर्शन हेतु चले जाते हैं। इस प्रसङ्ग के पश्चात् चतुर्थ अङ्क समाप्त होता है।

पञ्चम अङ्क

गङ्गा, यमुना, गोदावरी, तुङ्गभद्रा और सरयू नदियाँ राम के वनवास गमन से क्षुब्ध तथा दुःखी हैं। नदियों के परस्पर वार्तालाप द्वारा राम का पंचवटी में निवास,

खरदूषण वध, शूर्पणखा का नाक, कान कर्तन, राम द्वारा स्वर्णमृग का वध और भिक्षु के रूप में रावण द्वारा सीता के अपहरण की घटना विदित होती है, तत्पश्चात् राम द्वारा बालि का वध करके सुग्रीव को चक्रवर्ती पद की प्राप्ति कराना और सुग्रीव द्वारा सीता की खोज में वानरों को भेजने के साथ ही पञ्चम अङ्क समाप्त होता है।

षष्ठ अङ्क

सीता के वियोग से सन्तप्त राम का लक्ष्मण से वार्तालाप होता है। लक्ष्मण इन्द्रजाल के माध्यम से राम को अशोक वाटिका में सीता के दर्शन कराकर उन्हें शान्त करते हैं। त्रिजटा के वृत्तान्त के पश्चात्, सीता को आग के स्थान पर हनुमान द्वारा गिरायी गयी राम की अङ्गूठी की प्राप्ति होती है। सीता प्रत्यभिज्ञान के रूप में राम के लिये अपना चूड़ामणि हनुमान को देती हैं। हनुमान द्वारा लङ्कादहन और सागर को पार करके इस पार आकर राम के दर्शन के साथ ही अङ्क समाप्त होता है।

सप्तम अङ्क

रावण द्वारा विभीषण का राज्य निष्कासन और रावण के कामज्वर से पीड़ित होने के वृत्तान्त से अङ्क आरम्भ होता है। रावण को प्रहस्त द्वारा दिये गये चित्रफलक में समुद्र पर सेतु निर्माण, समुद्र के उत्तर में राम की सेना के दर्शन, विभीषण द्वारा राम की शरण लेना, मन्दोदरी का रावण के पास आना, कुम्भकरण और मेघनाद के वध की सूचना पाकर रावण द्वारा मन्दोदरी को समझाने के साथ ही रणोन्मुख होना, रावण के बाण से आहत लक्ष्मण को गन्धमादन की औषधि सुंघाकर जीवित करना, रावण का राम द्वारा वध और अग्नि परिशुद्धा सीता की प्राप्ति के साथ ही पुष्पक विमान द्वारा लक्ष्मण, विभीषण सहित राम के सीता के साथ मार्ग में पड़ने वाले स्थानों का दर्शन करते हुये अयोध्या पहुँचने की घटना निहित है।

(ख) विवेच्य नाटकों की कथावस्तु-वस्तुविन्यास

बालरामायणम्—वस्तुविन्यास

आचार्य भरत[१] धनञ्जय[२] तथा विश्वनाथ[३] प्रभृति आचार्यों ने नाट्यशरीर स्वरूप इतिवृत्त को दो प्रकार का माना हैं-आधिकारिक तथा प्रासङ्गिक।

रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने अपने नाट्यदर्पण में इतिवृत्त को मुख्य तथा अङ्ग रूप से

---

१. इतिवृत्तं द्विधा चैव बुधस्तु परिकल्पयेत्।
आधिकारिकमेकं स्यात् प्रासङ्गिकमथापरम्।। ना. शा. २१/२

२. तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः। द. रू. १/११

३. इदं पुनर्वस्तु बुधैर्द्विविधं परिकल्प्यते।
आधिकारिकमेकं स्यात्प्रासङ्गिकमथापरम्। सा. द. ६/४२

दो प्रकार का माना है।[1] सम्पूर्ण नाटक में व्याप्त मुख्यफल से सम्बन्धित नायक का इतिवृत्त आधिकारिक कहलाता है।[2]

विश्वनाथ बालरामायण में रामचरित को आधिकारिक इतिवृत्त मानते हैं।[3] यदि इसे राम द्वारा सीता-प्रत्यानन कहा जाय तो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। इस नाटक में राम का प्रवेश तृतीय अङ्क में होता है।

आधिकारिक इतिवृत्त के अङ्गरूप में, प्रसङ्ग से आया हुआ कथानक प्रासङ्गिक कहलाता है। ये कथानक प्रधान कथा की सहायता के लिये प्रयुक्त होते हैं।[4] विश्वनाथ ने बालरामायण में सुग्रीव आदि के चरित को प्रासङ्गिक बताया है।[5] इसी प्रकार विभीषण-वृत्त, जटायु तथा रत्नशेखर की कथा प्रासङ्गिक है। इसमें कतिपय प्रासङ्गिक कथाएँ मुख्य कथा के साथ अन्त तक चलती हैं और कुछ मुख्य कथा के मध्य में ही आकर मुख्य कथा को सहायता प्रदान करती हैं और नाटक में सौन्दर्य तथा पूर्णता उत्पन्न करती हैं। कुछ कथाएँ प्रसिद्ध होने के कारण प्रख्यात, कुछ कविकल्पित होने के कारण उत्पाद्य और कुछ कथाएँ उपर्युक्त दोनों का संयोग होने से मिश्र कहलाती हैं। मिश्र कथा दिव्य, मर्त्य और दिव्यादिव्य होती हैं।[6]

बालरामायण नाटक में रामचरित पर आधारित इतिवृत्त रामायण प्रसिद्ध होने के कारण प्रख्यात की श्रेणी में आता है। छद्मवेषधारी दशरथरूपी राक्षस के द्वारा राम के वन-निर्वासन का प्रसङ्ग कवि द्वारा कल्पित होने के कारण भी उसको मिश्र इतिवृत्त की कोटि में नहीं रखा जा सकता है, क्योंकि नाटककार को नाटक की प्रख्यात कथा को नेता और रस के अनुसार संशोधित करने का अधिकार होता है।[7] नाटक प्रायः

---

१. मुख्यमिष्टफलं वृत्तं, अङ्गं प्रासङ्गिकं क्वचित्।
सूच्यं प्रयोज्यमभ्यूह्यं, उपेक्ष्यं तच्चतुर्विधम्।। ना. द. १/ का. १०/सू. ८

२. अधिकारः फलस्वाम्यधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्।। द. रू. १/१२

३. यथा—बालरामायणे रामचरितम्। सा. द. ६/पृ. १७७

४. प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थे यस्य प्रसङ्गतः। द. रू. १/१३

५. अस्योपकरणार्थं तु प्रासङ्गिकमितीष्यते। यथा—सुग्रीवादिचरितम्। सा. द. ६/४४

६. प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा।
प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम्।।
मिश्रं च सङ्करात्ताभ्यां दिव्यमर्त्यादिभेदतः।। वही, १/१५-१६

७. इत्याद्यशेषमिह वस्तुविभेद जातं
रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथां च।
आसूत्रयेत्तदनु नेतृरसानुगुण्याच्चित्रां
कथामुचित चारुवचः प्रपञ्चैः।। वही, १/६८

ख्यातवृत्त ही होते हैं।[१] बालरामायण नाटक में रत्नशेखर की कथा का प्रसङ्ग उत्पाद्य की श्रेणी में आता है।

अर्थ प्रकृतियाँ

धनञ्जय[२], विश्वनाथ[३] और रामचन्द्र-गुणचन्द्र[४] ने अर्थप्रकृतियों को प्रयोजन की सिद्धि के हेतु पाँच भागों में विभाजित किया है—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य।

बीज

जो छोटे रूप में स्थापित होने पर अनेक रूपों और मार्गों से उत्तरोत्तर विकास करता हो तथा फल को मुख्य रूप में उपलब्ध करवाते हुए समाप्त होता हो, वह बीज कहलाता है।[५]

बालरामायण नाटक के प्रथम अङ्क में शुनःशेप द्वारा यह ज्ञात होता है कि तात विश्वामित्र राक्षसों से रक्षा के निमित्त सिद्धाश्रम से अयोध्या जाते हुए औषधि रूप में श्रीरामभद्र को बुलाने के लिए गये हैं[६] और कर्णाट देशीय नट द्वारा यह निवेदन किया गया कि मैं भी विवाह करूँगा और द्वीपान्तर में हरण कर ले गयी उसे लौटा लाऊँगा। स्त्री को हरण करने में पुरुषों को समुद्र लाँघना क्या है?[७]

उपर्युक्त प्रसङ्गों में राम द्वारा राक्षस विनाश तथा उसके पश्चात् सीताप्रत्यानन-रूप फल के प्रति उत्साह से नाटक में बीज का ज्ञान हो जाता है। आचार्य लक्ष्मणसूरि ने भी बालरामायण नाटक पर लिखी गयी अपनी तत्त्वालोक नामक टीका में इसी प्रसङ्ग में बीज को सूचित किया है।

---

१. नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
विलासद्ध्यादिगुणवद्युक्तंनानाविभूतिभिः।। — सा. द. ६/७

२. बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः।
अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः।। — द. रू. १/१८

३. बीज बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च।
अर्थप्रकृतयः पञ्च ज्ञात्वा योज्या यथाविधि।। — सा. द. ६/६४-६५

४. बीजं पताका प्रकरी बिन्दुः कार्यं यथारुचि।
फलस्य हेतवः पञ्च चेतनाचेतनात्मकाः।। — ना. द. १/का. २८/सू. २५

५. स्वल्पमात्रं समुत्सृष्टं बहुधा यद्विसर्पति।
फलावसानं यच्चैव बीजं तत् परिकीर्तितम्।। — ना. शा. २१/२१

६. राक्षसरक्षौषधं रामभद्रमानेतुं सिद्धाश्रमादयोध्यां
गच्छता तात विश्वामित्र।। — बालरा. १/पृ. १०

७. अपि द्वीपान्तरादेष हृतां प्रत्याहरामि ताम्।
कलत्रहरणे पुंसां कियदर्णवलङ्घनम्।। — वही, १/४

बिन्दु

अवान्तर विच्छेद होने पर भी जो रूपक में समाप्ति तक अविच्छिन्नता का कारण होकर (कथाबन्ध में) स्थित रहता हो उसे बिन्दु कहते हैं।[१] अर्थात् कथा के विच्छिन्न हो जाने पर उसको जोड़कर आगे बढ़ाने का कार्य बिन्दु द्वारा ही होता है।

बालरामायण नाटक में प्रथम अङ्क में मुख्य कथा में रावण द्वारा शिवधनुष को तिरस्कारपूर्वक फेंके जाने पर जनक और रावण के मध्य वाक्सङ्घर्ष तथा द्वितीय अङ्क में रावण और परशुराम के मध्य युद्ध से कथा विच्छिन्न हो गयी थी, किन्तु तृतीय अङ्क में चित्रशिखण्ड गृध्र द्वारा जब अपनी गर्भिणी स्त्री सुवेगा से राम द्वारा ताड़का वध[२] और अन्य राक्षसों के विनाश[३] का कृत्य बतलाया जाता है तत्पश्चात् उसके द्वारा युद्ध में बहुत दिनों से संचित राक्षसों के रक्त तथा मांस से दोहद[४] की पूर्ति सम्भव बतलाता है, तब विच्छिन्न कथा पुनः जुड़कर फैलने लगती है। यहीं पर बिन्दु अर्थप्रकृति का ज्ञान होता है।

पताका

जब मुख्य या आधिकारिक कथा के साथ कोई घटना उसकी उपकारिणी बनकर दूर तक चले, वह पताका अर्थप्रकृति कहलाती है।[५] पताका का नायक पीठमर्द कहलाता है।[६] गर्भ या विमर्श सन्धि के पूर्ण होने तक पताका रहती है। इसके उपरान्त यह भी समाप्त हो जाती है क्योंकि इसकी विनियोजना मुख्य कथा की विशेष सहायता मात्र होती है।[७]

बालरामायण नाटक में सुग्रीव और विभीषण इन दोनों की कथा पताका है। ये

---

१. प्रयोजनानां विच्छेदे यदविच्छेदकारणम्।
यावत्समाप्तिर्बन्धस्य स बिन्दुः परिकीर्तितः।। ना. शा. २१/२२,

२. विध्वस्तहस्तयुगलं ललितान्त्रतन्त्रमुन्मुक्तरक्ततति खण्डितकालखण्डम्।
उत्कृत्तकृत्ति रचितं च शरैः शरीरमार्येऽखिलाङ्गपरिताडिनि ताडकायाः।। बालरा. ३/६

३. कोदण्डात्तरलमुदञ्चतः शरस्य द्राग्द्वेधा व्यधितसुधारया सुबाहुम्।
मारीचं सपदि च पुङ्खपत्रवातैरम्भोधेः पुलिनचरं चकार रामः।। वही, ३/८

४. चित्रशिखण्डः—तस्माच्च समरतः सुचिरसंचितेन
निशाचराणामसृजा मांसेन च संपादय दोहदम्। वही, ३/पृ. ६६

५. यद्वृत्तन्तु परार्थं स्यात् प्रधानस्योपकारकम्।
प्रधानवच्च कल्प्येत सा पताकेति कीर्तिता।। ना. शा. २१/२३

६. पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः।
तस्यैवानुचरो भक्तः किञ्चिदूनश्च तद्गुणैः।। द. रू. २/८

७. आगर्भादाविमर्शाद्वा पताका विनिवर्तते।
कस्माद् यस्मान्निबन्धोऽस्याः परार्थः परिकीर्त्यते।। ना. शा. २१/२७

दोनों ही श्रीराम के अनुचर तथा भक्त हैं।[1] इन दोनों के ही प्रसङ्ग द्वारा कथा में फल प्राप्ति होने में सहायता मिलती है। यहाँ विभीषण और सुग्रीव का राम के चरित के प्रति कहा गया कथन पताका के रूप में दिखायी पड़ता है।[2] कथानक में विभीषण और सुग्रीव के साथ ही हनुमान, अङ्गद इत्यादि की कथाओं का भी समावेश हो जाता है।

प्रकरी

जो कथा केवल एक ही प्रदेश तक सीमित रहती है, वह प्रकरी कहलाती हैं।[3] जब किसी पात्र का आधिकारिक इतिवृत्त के लिए ही निवेश हो तथा जिसमें स्वार्थनिरपेक्षता रही हो तो उस इतिवृत्त विशेष को प्रकरी कहा जाता है।[4]

बालरामायण नाटक के षष्ठ अङ्क में जटायु की कथा[5] और दसवें अङ्क में विद्याधर-कुमार रत्नशेखर की कथा[6] द्वारा प्रकरी अर्थप्रकृति का ज्ञान होता है।

कार्य

आधिकारिक कथावस्तु में जिन उद्योगों को लक्ष्यप्राप्ति के लिये प्रारम्भ किया जाता है तथा उनके लिये जो आवश्यक साधनरूपी समुदाय होता है उसे कार्य समझना चाहिये।[7]

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र के अनुसार—साध्य अर्थात् प्रधान फल की

---

१. तस्यैवानुचरो भक्तः। द. रू. २/८

२. (क) निर्वाणं जलपानपीडितजलैर्यस्मिन् युगान्तानलै-
र्यस्याभाति कुकूलमुर्मुरमृदुः क्रोडे शिखी वाडवः।
तस्याप्यस्य कृशानुसंक्रमकृतज्योतिः शिखण्डैः शरै-
र्दत्तश्चण्डदवाग्निडम्बरविधिर्देवस्य वारांनिधेः।। बालरा. ७/३२

(ख) अन्योन्याश्लेपरक्षाविधिवलितवपुर्यष्टितुष्टं भुजङ्ग-
द्वन्द्वैरुद्दामदाहस्रुतसलिलमहागर्भमभ्रैर्व्यलायि।
सर्वत्रावर्तमुद्रां विदधति जलधौ सायकैः पावकीयै-
रूत्तापाद्यादसां च त्रिजगद्भिभवन्निःसृतो विस्रगन्धः।। वही, ७/३३

३. प्रकरी च प्रदेशभाक्। द. रू. १/१३

४. फलं प्रकल्प्यते यस्याः परार्थायैव केवलम्।
अनुवन्धविहीनत्वात् प्रकरीति विनिर्दिशेत्।। ना. शा. २१/२४

५. यत्संवर्ते दिनमणिरयं वासरस्यैककर्ता, यद्विस्तारे भवति रजनीरञ्जितो जीवलोकः।
ताभ्यां रुन्धन्नरुणतनयो रोदसी पक्षतिभ्यां, जातो योद्धुं त्रिभुवनरिपोरग्रतो रावणस्य।।
बालरा. ६/६५

६. विद्याधरः-रामभद्र महेन्द्रादेशादेष रत्नशेखरो विद्याधरकुमारस्ते दिव्यचरितं त्यनक्ति।
वही, १०/पृ. ३४१

७. यदाधिकारिकं वस्तु सम्यक्प्राज्ञैः प्रयुज्यते।
तदर्थे यस्समारम्भस्तत् कार्यं परिकीर्तितम्।। ना. शा. २१/२५

सिद्धि में बीज का सहकारी द्रव्य, गुण आदि अचेतन साधन कार्य कहलाता है।[1]

बालरामायण नाटक में सप्तम्, अष्टम् और नवम् अङ्क में सेतुबन्ध[2] और युद्ध[3] इत्यादि सभी कार्य अर्थप्रकृति के अन्तर्गत आयेंगें।

कार्यावस्थायें

नायकों द्वारा अपनाये गये कार्य के विकास की पाँच अवस्थायें होती हैं—आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलयोग। ये इसी क्रम में होती हैं। अर्थप्रकृतियों और सन्धियों की भाँति इनमें क्रमविपर्यय की स्वतन्त्रता नहीं होती।[4]

फल प्राप्ति के लिए नायक द्वारा किया जाने वाला उद्योग जो पूर्णता तक पहुँचता हो उस (कार्य) की क्रमशः पाँच अवस्थायें होती हैं।[5] ये अवस्थायें हैं—प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्ति-सम्भव, नियतफलप्राप्ति तथा फलयोग या फलप्राप्ति।[6]

इच्छा वाले नायकादि के द्वारा प्रारब्ध कार्य की पाँच अवस्थायें होती हैं—आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम।[7]

आरम्भ

किसी भी फल की प्राप्ति के लिए नायकादि में इच्छा होती है और उसके प्रति उत्सुकता होती है। इस उत्सुकता का पाया जाना ही आरम्भ है। धनञ्जय ने इसका लक्षण दिया है—अत्यन्त फलभाग की उत्सुकतामात्र ही आरंभ कहलाती है।[8]

भरत के अनुसार नाटक का वह भाग जो बीज से सम्बन्धित होकर फल प्राप्ति

---

१. साध्ये बीजसहकारी कार्यम्। ना. द. का. ३३/सूत्र ३५

२. भो नागनाथ हरिकच्छप दिव्यमत्स्य स्वस्त्यस्तु वः क्षणमितः कुरुतापसर्पम्।
अब्धावयं ननु रघूद्वहकीर्तिहेतुः सेतुः प्रसर्पति दशाननधूमकेतुः।। बालरा. ७/४४

३. कुर्वन्नुत्कर्णतालान् दिशिदिशि करिणो धौर्जटीनां जटानां,
बन्धाहिग्रन्थिमुद्रां सपदि शिथिलयन् खण्डितोपेन्द्रनिद्रः।
कुन्दानो नन्दिवाद्यं मुरजमुखरतं भुग्नविश्वप्रमोदो,
रोदोरन्ध्रं निरुद्धं प्रसरति किमिदं निष्ठुरज्यानिनादः।। वही, ८/४५

४. आरम्भ-यत्न-प्रात्त्याशा-नियताप्ति-फलागमाः।
नेतुर्वृत्ते प्रधाने स्युः पञ्चावस्था ध्रुवं क्रमात्।। ना. द. का. ३४/सूत्र ३७

५. संसाध्ये फलयोगे तु व्यापारः कारणस्य यः।
तस्यानुपूर्व्या विज्ञेयाः पञ्चावस्थाः प्रयोक्तृभिः।। ना. शा. २१/६

६. प्रारम्भश्च प्रयत्नश्च तथा प्राप्तेश्च सम्भवः।
नियता च फलप्राप्तिः फलयोगश्च पञ्चमः।। वही, २१/७

७. अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्ति फलागमाः।। द. रू. १/१९

८. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे। वही, १/२०

के सम्पादनार्थ औत्सुक्यमात्र का प्रारम्भ करे, वह आरम्भ कहलाता है।[1]

बालरामायण नाटक के प्रथम अङ्क में शुद्ध-विष्कम्भक में राम को बुलाने के लिए विश्वामित्र के अयोध्या जाने का उल्लेख शुनःशेप नामक पात्र करता है[2] और तपस्वी वेश में राक्षसरूपी पात्र रावण की भी सीता प्राप्ति की इच्छा का वर्णन करता है[3] तदनन्तर प्रथम और द्वितीय अङ्कों में मायामय नामक पात्र द्वारा राजनीतिक तथा ब्राह्मण-क्षत्रिय सम्बन्धी षड़यन्त्र[4] और रावण द्वारा धनुर्भङ्ग करने का उपक्रम[5] तथा प्रसङ्ग रूप में रावण-परशुराम युद्ध[6] इत्यादि घटनाएँ सक्रिय उत्साह से सम्बन्धित होने के कारण कार्य की आरम्भ अवस्था के अन्तर्गत आती हैं।

यत्न

फल की प्राप्ति न होने पर उसे पाने के लिए बड़ी तेजी के साथ जो उपाययोजनायुक्त चेष्टा होती है वह प्रयत्न है।[7]

नायक का फलप्राप्ति की ओर ध्यान न देते हुए भी फलप्राप्ति के प्रति किये जाने वाले अत्यन्त उत्सुकतापूर्ण प्रदर्शन को यत्न समझना चाहिए।[8]

बालरामायण नाटक में प्रतिनायक रावण की ओर से पाँचवें, छठे और सातवें

---

१. औत्सुक्यमात्रवन्धस्तु यद् बीजस्य निबध्यते।
महतः फलयोगस्य स स खल्वारम्भ इष्यते।। ना.शा. २१/८

२. राक्षसरक्षौषधं रामभद्रमानेतुं सिद्धाश्रमादयोध्यां गच्छता तातविश्वामित्रेण। बालरा. १/१०

३. यत्किल स्थाणवीयधनुरारोपणपणेन रावणः सीतां परिणेष्यतीति तत्र कश्चिदेवंविधः।
वही, १/पृ.१५

४. मायामयः-पौलस्त्यः प्रणयेन याचत इति श्रुत्वा मनो मोदते,
देयो नैष हरप्रसादपरशुस्तेनाधिकं ताम्यति।
तद्वाच्यः स दशाननो मम गिरा दत्ता द्विजेभ्यो मही,
तुभ्यं ब्रूहि रसातलत्रिदिवयोर्निर्जित्य किं दीयताम्।। वही, २/२०

५. निष्पर्यायनिवेशपेशलरसैरन्योन्यनिर्भर्त्सिभि-
र्हस्ताग्रैर्युगपन्निपत्य दशाभिर्वामैर्धृतं कार्मुकम्।
सव्यानां पुनरप्रथीयसि विधावस्मिन् गुणारोपणे,
मत्सेवा विदुषामहं प्रथमिका काव्यम्बरे वर्त्तते।। वही, १/५०

६. नश्यन्नानाविमानाङ्गणमणिवलभीरत्नवातायनेभ्यो,
वक्त्रैराकण्ठदृश्यैर्यदमरललना लोलमालोकयन्ति।
यच्चेदं व्योम विद्युत्खचितमिव पुरस्तेन मन्ये किमन्य-
द्वत्साभ्यामाद्रियन्ते शिखिनिचयमुचो देवताः शस्त्रमय्यः।। बालरा २/५६

७. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः। द. रू. १/२०

८. अपश्यतः फलप्राप्तिं व्यापारो यः फलं प्रति।
परञ्चौत्सुक्यगमनं प्रयत्नः परिकीर्तितः।। ना. शा. २१/९

अङ्कों में माल्यवान् नामक पात्र द्वारा खेले गए राजनीतिक दाँवपेंच[1], शूर्पणखा और मायामय नामक पात्रों द्वारा कैकेयी और दशरथ का छद्म वेष धारण करके राम का वननिर्वासन[2] तथा रावण द्वारा सीताहरण[3], राम द्वारा ताडका-वध[4], रावण-परीक्षित धनुष तोड़ना[5], बालि को मारना[6] और सुग्रीव से मित्रता करके विशाल वानरदल को सीतान्वेषण हेतु भेजना[7] इत्यादि घटनाएँ यत्न नामक अवस्था की कोटि में आयेंगी।

---

१. माल्यवान- सीताप्रतिकृतिदर्शनेन दशाननः प्रलोभितो भवति। प्रलोभनेन च काललाभः। काललाभो हि नयविदां प्रयोगग्रामं कन्दलयति। प्रयोगपरतन्त्रा च कार्यसिद्धिः।
बालरा. ५/पृ. १४२

२. (क) यत्त्वयाऽस्या महाराज प्रतिपन्नं वरद्वयम्।
व्योममात्रासहचरी कैकेयी याचतेऽद्य तत्।। वही, ६/६

(ख) वरेणैकेन लभतां रघुराज्यं सुतो मम।
चतुर्दश समा रामो वने वन्येन तिष्ठतु।। वही, ६/७

३. आकर्णाकृष्टचापार्पितविशिखभृतानुद्रुतश्चाणीयान्,
माणिक्याङ्गः कुरङ्गः सपदि धृतजवो जानकीवल्लभेन।
सीतां चाधाय मध्ये मणिवलभि बली रावणः पुष्पकेण
स्वां गन्तुं राजधानीं सकलसुरवधूचण्डवृतः प्रवृत्तः।। वही, ६/६२

४. मार्तण्डैककुलप्रकाण्डतिलकस्त्रैलोक्यरक्षामणि-
र्विश्वामित्रमहामुनेर्निरूपधिः शिष्यो रघुग्रामणीः।
रामस्ताडितताडकः किमपरं प्रत्यक्षनारायणः
कौशल्यानयनोत्सवो विजयतां भूकश्यपस्यात्मजः।। वही, ७/३

५. कन्दर्पोद्दामदर्पप्रशमनगुरोर्ब्रह्मणः कालदण्डे,
पाणिं दातुर्गङ्गातरलितशशिनः पार्वतीवल्लभस्य।
चापं चण्डाहिसिञ्जारवभरितनभः कर्षणारुद्धमध्यं,
यद् भग्नं तस्य शब्दो निश्रूयते त्रिभुवने विस्तरन् न माति।। वही, ७/४

६. पौलस्त्यस्यावमन्ता त्रिदशपतिसुतश्चक्रवर्ती कपीनां,
कर्ता सन्ध्यासमाधेर्जलनिधिषु चतुर्दिङ्निकुञ्जाश्रितेषु।
किष्किन्धां राजधानीं भुजपरिघबलात्त्रायमाणस्त्वयाऽसौ
वाली हेमाब्जमाली गुणनिधिरिषुणानिर्मितो दक्षिणेर्मा।। वही, ७/११

७. (क) ये कैलासे कलिन्दे मलयमहीधरे मन्दरे मेरुशैले
सह्ये विन्ध्ये महेन्द्रे तथा च हिमवहे पर्वते वानरेन्द्राः।
सर्वे सुग्रीवपादप्रणतिप्रणयिनस्तेऽपि यत् स प्रसादः-
सेवातुष्टस्य सत्यं तव यशोजलधेर्मूलतावेल्लितानाम्।। वही, ७/१२

(ख) भीमं यज्जलधिं जवेन हनूमानुल्लङ्घ्य लङ्कां गतो,
यच्चाशोकमहावनं दतिवानक्षं च यत्क्षुण्णवान्।
सीतोपायनमौलिरत्नसहितः प्राप्तश्च यत् त्वामसौ
तत्राप्येष भवत्प्रभावमहिमा निर्यन्त्रणः कारणम्।। वही, ७/१३

प्राप्त्याशा

जहाँ उपाय तथा विघ्न की आशङ्का के कारण फलप्राप्ति के विषय में कोई ऐकान्तिक निश्चय नहीं हो पाता, फलप्राप्ति की सम्भावना उपाय व विघ्नाशंका दोनों में दोलायमान रहती है, वहाँ प्राप्त्याशा नामक अवस्था होती है।[१]

जब किसी विचार या भाव के द्वारा उद्दिष्ट अर्थ या फल (थोड़ी) पूर्णता तक पहुँचने लगे तो उसे विशेषज्ञ जन प्राप्तिसम्भव या प्राप्त्याशा कहते हैं।[२]

बालरामायण नाटक में हनुमान् द्वारा सीता का पता मिल जाने पर सेतुबन्ध[३] समुद्रतरण का कार्य[४] उपाय तथा अपाय की शङ्काओं से घिरा है, अतः यह प्राप्त्याशा अवस्था है। इस बीच सीता का मायासिर कटा हुआ देखकर राम को फल से निराशा हुई है।[५]

यदि प्रतिनायक पक्ष से प्राप्त्याशा अवस्था देखी जाय तो युद्ध के समय जब रावण अपने बन्धुओं की विजय देखता था तो फलोपाय[६] और जब उनकी पराजय

---

१. उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्ति सम्भवः। द. रू. १/२१

२. ईषत्प्राप्तिर्यदा काचित् फलस्य परिकल्प्यते।
भावमात्रेण तं प्राहुर्विधिज्ञाः प्राप्तिसम्भवम्।। ना. शा. २१/१०

३. तातादेशात् कियदिदमहो यद्वनान्ते निवासो, यस्मिन् सेव्याः प्रशमनिधयो धाम निःश्रेयसानाम्।
अप्येकाकी किमु पितृगिरा गाढागूढाचलेन्द्रैर्बद्ध्वा सेतुं लवणजलधौ हेलया सञ्चरामि।।
बालरा. ६/१८

४. (क) सुग्रीवे प्रणयोल्लासाः शशधरे बद्धाभ्यसूयाश्चिरं,
साश्चर्याः पवनात्मज धृतरुषः पौलस्त्यवत्पां दिशि।
सोत्साहाश्च शरासने जलनिधौः क्षुब्धाश्च कृत्स्नां निशां,
रामस्याद्य नियन्तुमेव न गता नानारसा दृष्टयः।।
(ख) रामे तटान्तवसतौ कुशतल्पशायिन्येवं तु नाम भवतो भगवन्ननास्था।
स्मृत्वा तदेहि सगरं च भगीरथं च, दृष्ट्वाऽथ वा मम धनुश्च शिलीमुखांश्च।।
वही, ७/१७-१८

५. देव्याः शिरो मम पुरो यदिदं विलूनं, दृष्टं छलाद्दशमुखो यदसौ प्रनष्टः।
धिङ्निष्फलं हनुमतः प्लवनं तदब्धौ, धिङ्निष्फलः स च ममाचलसेतुबन्धः।।
वही, ७/७५

६. रावणः— (सहर्षम्)
किं शय्यापरतो रतिर्धनपतेर्दूरे भवन्तुस्त्रिय-
श्चन्द्रान्तःपुरमेतदस्तु च पृथक्कौबेरिणीषूत्सवः।
साकं शक्रजितः कलत्रनिवहैः सार्धं च दारैर्मम,
प्रीत्युल्लासितपाणिपल्लवयुगं मन्दोदरी नृत्यतु।। वही, ८/७४
(रावणः मूर्च्छति सर्वे यथोचितमुपचरन्ति)

देखता था तो नैराश्य की बातें सोचने लगता था।[1]

नियताप्ति

विघ्न के अभाव के कारण फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है तो नियताप्ति नामक अवस्था होती है।[2]

जब किसी विषय, अभीष्ट-वस्तु या भाव की निश्चित फल-प्राप्ति पूर्ण रूप से दिखती हो तो उसे नियतफलप्राप्ति अवस्था कहते हैं।[3] नियताप्ति और फलयोग नायक के ही कार्य-विकास की अवस्थाएँ हैं।

बालरामायण नाटक के नवम अङ्क में युद्ध के समय राम द्वारा मायाहर अस्त्र का प्रयोग करने से रावण केवल एक सिर वाला, बचा हुआ दिखाई पड़ता है[4], यहीं से नियताप्ति अवस्था का आरम्भ हो जाता है। यह अवस्था रावणवध[5] और सीता की अग्निशुद्धि[6] तक रहती है।

फलयोग

समग्र फल की प्राप्ति हो जाना फलयोग अवस्था के अन्तर्गत आता है।

भरत के अतिरिक्त धनञ्जय और नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने इसका नाम फलागम कर दिया है।

नाटक में होने वाले समस्त कार्यों की उनके अनुरूप पूर्ण फल की उपलब्धि जब

---

१. शेतां सम्प्रति वासवश्चिरभवत्रिद्राजडैर्लोचनै-
जार्यन्तां विबुधोपयोग्यकुसुमाः सर्वेऽपि दिव्यद्रुमाः।
बन्धाः स्वर्गसदां च सन्त्वनिगडाः प्राप्तोऽसि तं गोचरं
मद्वक्त्रैरपि वत्स नाम दशभिर्वक्तुं न यः शक्यते।। बालरा. ८/८६

२. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता। द. रू. १/२१

३. नियतान्तु फलप्राप्तिं यदा भावेन पश्यति।
नियतां तां फलप्राप्तिं सगुणाः परिचक्षते।। ना. शा. २१/११

४. मायाहरशरन्यासादेष नक्तञ्चरेश्वरः।
एकशेषशिराः संप्रत्येकशेषो रथेस्थितः।। बालरा. ९/५०

५. यद्वक्त्राणां दशानामिव दश ककुभः शासितुं सृष्टिरासी-
द्विंशत्या यश्च दोर्भिर्दशगुणितमिव प्राप्तवान् वीरधर्मम्।
लङ्केन्द्रः संयतेन्द्रो रणभुवि दशभिर्मैथिलीवल्लभेन,
ज्योतिर्दीप्तैः क्षुरप्रैः स खलु विरचितो निर्विबन्धः कबन्धः।। वही, ९/५३

६. वह्नेः शुद्धिविधायिनो भगवतस्तेजोभिरत्युद्धतै-
रम्लानामनसूयया विरचितां मौलिस्रजं बिभ्रती।
पादाङ्गुष्ठनखाग्रदत्तनयना नीरन्ध्रविन्यासत-
स्तोकालक्ष्यमुखी चितावलयतो द्राङ्मैथिली निर्गता।। वही, १०/११

कथावस्तु में सम्पन्न हो जाए तो उसे फलागम (फलयोग) समझना चाहिए।[१]

समस्त फल की प्राप्ति हो जाने पर फलयोग (फलागम) कहलाता है।[२]

नायक को साक्षात् (जन्मान्तरभावी फल के रूप में नहीं अपितु इसी जन्म में कार्य के बाद) इष्ट अर्थ की प्राप्ति फलागम रूप पञ्चमी अवस्था कहलाती है।[३]

बालरामायण में सीता की प्राप्ति, उनका प्रत्यानन[४] और राम का राज्याभिषेक[५] इत्यादि घटनाएँ फलयोग की अवस्था के अन्तर्गत आती हैं।

सन्धियाँ

आचार्य भरत के अनुसार नाटक में पाँच सन्धियाँ होती हैं। जिनके नाम हैं— मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण।[६]

धनञ्जय सन्धि का सामान्य लक्षण बताते हुए कहते हैं कि किसी एक प्रयोजन से परस्पर सम्बद्ध (अन्वित) कथांशों को जब किसी दूसरे एक प्रयोजन से संबद्ध किया जाय तो, वह सम्बन्ध सन्धि कहलाता है।[७] ये सन्धियाँ हैं-मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श (विमर्श) तथा उपसंहृति (उपसंहार या निर्वहण)।[८]

रामचन्द्र-गुणचन्द्र के अनुसार मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण ये पाँच अवस्थाओं का क्रमशः अनुगमन करने वाले मुख्य कथा के पाँच भाग सन्धि कहलाते हैं।[९]

मुख

मुखसन्धि में नाना प्रकार के रस को उत्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति पाई जाती

---

१. अभिप्रेतं समग्रञ्च प्रतिरूपं क्रियाफलम्।
इतिवृत्ते भवेद्यस्मिन् फलयोगः प्रकीर्तितः।। ना. शा. २१/१२

२. समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः। द. रू. १/२२

३. साक्षादिष्टार्थसम्भूतिर्नायकस्य फलागमः।। ना. द. १/३६

४. बद्धः सेतुर्लवणजलधौ क्रोधवह्नेः समित्वं, नीतं रक्षः कुलमधिगताः शुद्धिमन्तश्च दाराः।
तेनेदानीं विपिनवसतावेष पूर्णप्रतिज्ञो, दिष्टयाऽयोध्यां व्रजति दयिताप्रीतये पुष्पकेण।।
बालरा. १०/१५

५. (रामं प्रति) वत्स दाशरथे रामचन्द्र! प्रशस्तो मुहूर्तो वर्तते तदध्यास्व पित्र्यं सिंहासनमेषोऽभिषिच्यसे। वही, १०/पृ. ३७१

६. मुखं प्रतिमुखं चैव गर्भो विमर्श एव च।
तथा निर्वहणञ्चेति नाटके पञ्च सन्धयः।। ना. शा. २१/३५

७. अन्तरैकार्थ सम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति। द. रू. १/२३

८. मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः। वही, १/२४

९. मुखं प्रतिमुखं गर्भाऽऽमर्शनिवर्हणान्यमी।
सन्धयो मुख्यवृत्तांशाः पञ्चावस्थानुगाः क्रमात्।। ना. द. १/का.३७/सू. ४३

है।[१] बीजारम्भ के लिये प्रयुक्त होने के कारण इस मुखसन्धि के बारह अङ्ग हैं। मुखसन्धि में ही रूपक के बीज की सूचना दी जाती है। इसके बारह अङ्ग इस प्रकार हैं—उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना, उद्‌भेद, करण तथा भेद।[२]

बालरामायण नाटक के प्रथम दो अङ्कों में मुखसन्धि का समावेश है। बालरामायण नाटक के प्रथम अङ्क में शुनःशेप द्वारा ज्ञात होता है कि विश्वामित्र राक्षसों से रक्षा हेतु राम को बुलाने के लिए अयोध्या गये हैं।[३] यहाँ से लेकर जब राक्षसरूपी तपस्वी के द्वारा यह ज्ञात होता है कि शिवधनुर्भङ्ग से परिणेय सीता का पता रावण को लग गया है[४]। इस प्रसङ्ग तक बीजन्यासरूपी उपक्षेप सन्ध्यङ्ग है।[५]

प्रवेश करते ही रावण उत्साह से भुजाओं की प्रशंसा करता है[६] तदनन्तर प्रहस्त रावण के तेज के सामने सभी के तेज को फीका बतलाता है।[७] उपर्युक्त प्रसङ्ग में बीजन्यास की वहुलता के कारण परिकर अङ्ग है।[८]

जनक, रावण के साथ सम्बन्ध करने से खेद प्रकट करते हैं[९] और शतानन्द उन्हें

१. मुखं बीज समुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।। द. रू. १/२४

२. अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात्।
उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम्।।
उक्तिः प्राप्तिः समाधानं विधानं परिभावना।
उद्‌भेदवेदकरणान्यन्वर्थान्यथ लक्षणम्।। वही, १/२५-२६

३. संप्रत्येव राक्षसभयात् सत्रे दीक्षिष्यमाणः स भगवान् रक्षितारं रामभद्रं वरीतुमयोध्यां गतः।
बालरा. १/पृ. १३

४. अगर्भसम्भवा कन्यां दशकण्ठो जगज्जयी।
आरोप्य हरकोदण्डं कथं न परिणेष्यति।। वही, १/२६

५. बीजन्यास उपक्षेपः। द.रू. १/२७

६. रावणः—
यस्यारोपणकर्मणाऽपि बहवो वीरव्रतं त्याजिताः,
कार्यं सज्जितबाणमीश्वरधनुस्तद्दोर्भिरेभिर्मया।
स्त्रीरत्नं तदगर्भसम्भवमितो लभ्यं च लीलायिता,
तेनैषा मम फुल्लपङ्कजवनी जाता दृशां विंशतिः।। बालरा. १/३०

७. प्रहस्त—
बह्ने निह्नोतुमर्चिः परिचिनुपुरतः सिञ्चतो वारिवाहान्,
हेमन्तस्यान्तिके स्याः प्रथयति द्रवथुं येन ते ग्रीष्मनोष्मा।
मार्तण्डाश्चण्डतापप्रशमनविधये धत्त नाडीं जलार्द्रा,
देवो नान्यप्रतापं त्रिभुवनविजयी मृष्यते श्रीदशास्यः।। वही, १/३१

८. तद्बाहुल्यं परिक्रिया। द. श. १/२७

९. जनक (निःश्वस्य)

समझाते हैं कि रावण भी शिव की इच्छा को अन्यथा नहीं कर सकता है।[1] यहाँ पर बीजन्यास की बहुलता की सिद्धि होने के कारण परिन्यास अङ्ग है।[2] आचार्य लक्ष्मणसूरि ने बालरामायण नाटक पर लिखी गयी अपनी तत्त्वालोक नामक टीका में इसी प्रसङ्ग में परिन्यास अङ्ग बताया है तदनन्तर रावण द्वारा सीता को देखकर उसके गुणों का वर्णन करने के[3] कारण विलोभन अङ्ग[4] और सीता को देखने से उत्पन्न कुतूहल[5] के पश्चात् रावण के आश्चर्यचकित[6] होने के कारण परिभावना अङ्ग[7] स्पष्ट है।

रावण द्वारा शिवधनुष बिना तोड़े ही तिरस्कारपूर्वक फेंक देने के कारण[8] सीता

गिरिशधनुरधिज्यं रावणः कर्त्तुमीष्टे, करतुलितहराद्रेर्दुष्करं किं हि तस्य।
किमुत न स निमीनां यौनसम्बन्धयोग्यस्तदिति हि मम चित्तं चिन्तया मूर्च्छतीव।।

बालरा. १/३७

१. शतानन्दः—राजर्षे! मा विषीदस्व। पाणिप्रणयिनं कोदण्डदण्डं प्रसादीकुर्वतः पार्वतीपतेर्विवोढा कः सीताया अभिमत इति न जानीमः। इदं तु प्रतिजानीमहे यदुत न प्रचण्डदोःखण्डोऽपि दशकण्ठः श्रीकण्ठमनीषितमपरथा प्रस्थापयिष्यति। वही, १/पृ. १६

२. तन्निष्पत्तिः परिन्यासः। द. रू. १/२७

३. रावणः—
निर्माल्यं नयनश्रियः कुवलयं, वक्त्रस्य दासः शशी,
कान्तिः प्रावरणं तनोर्मधुमुचो यस्याश्च वाचः किल।
विंशत्या रचिताञ्जलिः करतलैस्त्वां याचते रावण-
स्तां द्रष्टुं जलकात्मजां हृदय हे नेत्राणि मित्रीकुरु।। बालरा. १/४०

४. गुणाख्यानं विलोभनं। द. रू. १/२७

५. रावणः—
इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव,
प्रम्लानारुणिमेवविद्रुमलता श्यामेव हेमद्युतिः।
पारूष्यं कलया च कोकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतं,
सीतायाः पुरतश्च हन्त शिखिनां बर्हाः सगर्हा इव।। बालरा. १/४२

६. एतां यथाहृदयवर्तनमायताक्षीं,
संसारसारनिचयेन विधाय वेधाः।
शङ्के दिदेश मदनं परिरक्षितारमारात्
स मां किरति येन शरैः शिताग्रैः।। वही, १/४३

७. कौतूहलोत्तरावेगो भवेत्तु परिभावना।। ना. शा. २१/७३

८. रावणः—
रुद्रादेस्तुलनं स्वकण्ठविपिनच्छेदो हरेर्वासनं,
कारावेश्मनि पुष्पकापहरणं यस्येदृशाः केलयः।
सोऽहं दुर्मदबाहुदण्डसचिवो लङ्केश्वरस्तस्य मे,
का श्लाघा घुणजर्जरेण धनुषा कृष्टेन भग्नेन वा।। बालरा. १/५१

की सखियों को अच्छे फल को पाने की आशा से प्रसन्नता होती है,[१] इसलिए यहाँ प्राप्ति अङ्ग है।[२]

रावण जब अभिमानपूर्वक कहता है कि मेरे सामने सबके शस्त्र और तप व्यर्थ हो जाते हैं,[३] तब शतानन्द कहते हैं कि शङ्कर के धनुष को चढ़ाने वाले को ऐसी बातें शोभा देती हैं, तुम्हें नहीं।[४] उपर्युक्त प्रसङ्ग में राम द्वारा रावण पराजयरूपी बीज के प्रति प्रोत्साहन मिलता है, फलतः भेद अङ्ग है।[५]

उपरोक्त वार्ता सुनकर रावण सीताहरण करने के लिए स्पष्ट रूप से सोचता है।[६] यहाँ छिपे हुए बीजार्थ के अङ्कुरित हो जाने के कारण उद्भेद अङ्ग है।[७] आचार्य लक्ष्मणसूरि ने इसी नाटक पर लिखी गयी अपनी तत्त्वालोक नामक टीका में इसी प्रसङ्ग में मुख सन्धि का उद्भेद अङ्ग बताया है तत्पश्चात् रावण, सीता के पति को मारने की प्रतिज्ञा करता है।[८] यहाँ बीजार्थ के अवधारणा के कारण युक्ति अङ्ग पल्लवित होता है।[९] आचार्य लक्ष्मणसूरि ने भी इसी प्रसङ्ग में युक्ति अङ्ग का उल्लेख अपनी टीका में किया है।

द्वितीय अङ्क में नारद कहते हैं कि परशुराम रावण का युद्ध टल गया है तो मैं अवश्य ही अयोध्या जाकर राम और रावण के मध्य युद्ध की योजना बनाता हूँ[१०]।

---

१. सख्यौ—भर्तृदारिके! दिष्टया वर्धसे समं ते पाणिग्रहणमङ्गलेन। मुक्तं रावणेन धनुः।
बालरा. १/पृ. २७

२. प्राप्तिः सुखागमः। द. रू. १/२८

३. रावणः—
मयि कण्ठपरिच्छेदपरितोषितशङ्करे।
कुण्ठीभवन्ति सर्वेषामस्त्राणि च तपांसि च।। वही, १/५६

४. शतानन्द—
निशाचरचक्रवर्त्तिन्! मा वृथा विकत्थस्व।
वक्रीकृतचण्डीशचापदण्डस्य शोभत एष व्याहारो न पुनस्तव। वही, १/पृ. ३०

५. भेदः प्रोत्साहना मता। द. रू. १/२९

६. परिषदियमृषीणामेव वृद्धो नरेन्द्रः कथमथ तदमुष्मिन् मैथिलीलालसोऽपि।
निजभुजबलदृप्यद्वीरवर्ये समाजे हठहरणविनोदं राक्षसेन्द्रः करोतु।। बालरा. १/६०

७. बीजार्थस्य प्ररोहो य उद्भेदः स तु कीर्तितः। ना. शा. २१/७४

८. कुर्वन् मौर्वीनिवेशक्रमनमदटनि स्पष्टटङ्कारटङ्कं
शम्भोः कोदण्डदण्डं बधिरितभुवनं भूर्भुवःस्वस्त्रयेऽपि।
यस्तामेनां वरीता रसयति तदसृक् चन्द्रहासोममासिः
कण्ठास्थिग्रन्थिशक्लीकरणभवरणत्कारवाचालधारः।। बालरा. १/६०

९. सम्प्रधारणमर्थाना युक्तिः। द. रू. १/२८

१०. नारदः—(सविषादमात्मगतम्) धिक्कष्टमुत्थितश्च कौतुकद्रुमाङ्कुरो झटिति त्रुटितश्च

यहाँ कथा के अनुरूप, कार्य के आरम्भ होने के कारण करण अङ्ग है।[१]

प्रतीहारी मन में यह चिन्तन करती है कि इन्द्र के प्रति पक्षपात के कारण ही कामदेव दशानन को अधिक व्याकुल कर रहे हैं[२]—उपर्युक्त प्रसङ्ग में पुनः बीज के युक्ति द्वारा व्यवस्थापित होने के कारण समाधान अङ्ग है।[३]

रावण द्वारा सीता को देखने के समय उसके बीस नेत्रों में बीस प्रकार के शोक और आनन्द के भाव आ जा रहे हैं।[४] अतः विधान अङ्ग[५] है। आचार्य लक्ष्मणसूरि ने भी बालरामायण नाटक पर लिखी गयी अपनी तत्त्वालोक नामक टीका में उपर्युक्त प्रसङ्ग में विधान अङ्ग बताया है।

प्रतिमुख

बीज का कुछ-कुछ दिखाई देना और कुछ दिखाई न देना और इस लक्ष्यालक्ष्य रूप में फूट पड़ना प्रतिमुख सन्धि का विषय है। इस सन्धि में बिन्दु नामक अर्थप्रकृति और नायकपक्षीय प्रयत्न नामक अवस्था का मिश्रण होता है।[६]

प्रतिमुख सन्धि में बीज का रह-रहकर उद्घाटन होता है।[७] इसके तेरह अङ्ग होते हैं—विलास, परिसर्प, विधूत, शम, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन, निरोध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास तथा वर्णसंहार।[८]

तदन्तरितं तावदिदं रामरावणीयं युद्धमयोध्यां गत्वा परं रामरावणीयं योजयिष्यामि संप्रत्येवोभयरामीयं वा।। बालरा. २/पृ. ३८

१. करणं प्रकृतारम्भः। द.रू. १/२६

२. प्रतीहारी—(स्वगतम्) कथमद्यापि सैव चित्रभित्तिस्तदेव चित्रकर्म तद्गाढमभिनिविष्टो दशानने कामस्तन्मन्ये शतमन्युपक्षपातोऽत्र विस्तार्यते। बालरा. २/पृ. ३६

३. बीजागमः समाधानम्। द. रू. १/२८

४. रावणः—

हन्त हन्त नैकप्रकारो मदनव्यापारः। यतो मम वैदेहीदर्शनतः प्रभृति।

न्यञ्चत्कुञ्चित्तमुन्मुखं हसितवत्साकूतमाकेकरं
व्यावृत्तं प्रसरत्प्रसादि मुकुलं सत्प्रेम कम्पं स्थिरम्।
उद्भ्रूभ्रान्तमपाङ्गवृत्तिविकचं मज्जत्तरङ्गाकुलं
चक्षुः साश्रु च वर्त्तते रसवशादेकैकमन्यक्रियम्।। बालरा. २/१६

५. विधानं सुखदुःखकृत्।। द. रू. १/२८

६. लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश।। वही, १/३०

७. बीजस्योद्घाटनं यत्तु दृष्टनष्टमिव क्वचित्।
मुखन्यस्तस्य सर्वत्र तद्वै प्रतिमुखं स्मृतम्।। ना. शा. २१/३८

८. विलासः परिसर्पश्च विधूतं शमनर्मणी। नर्मद्युतिः प्रगमनं निरोधः पर्युपासनम्।।
वज्रं पुष्पमुपन्यासो वर्णसंहार इत्यपि। द. रू. १/३१-३२

बालरामायण के तृतीय और चतुर्थ अङ्कों में प्रतिमुख सन्धि दिखायी पड़ती है। राम, सीता के प्रत्यङ्ग तारुण्य और उनके रूप-लावण्य से प्रभावित होकर सीता के प्रति काम-संवेदित हो जाते हैं।[1] अतः यहाँ पर विलास अङ्ग का समावेश है।[2] आचार्य लक्ष्मणसूरि ने भी अपनी टीका में उपर्युक्त प्रसङ्ग में विलास अङ्ग बताया है।

स्वयंवर में आये हुये राजाओं का परिचय अपनी सखी हेमप्रभा द्वारा जानकर सीता सभी में कुछ न कुछ दोष निकाल देती हैं,[3] यहाँ पर सीता द्वारा अनिच्छा व्यक्त करने से विधूत अङ्ग है।[4]

धनुर्भङ्ग किये जाने पर विश्वरक्षा, शत्रुनाश और कीर्तिलाभ को सूचित करता हुआ शिव-धनुष का टङ्कार उठा।[5] सीता ने कहा कि भगवान शङ्कर का धनुष टूट

---

१. रामः—

(क) समन्तात् साभोगं न च कुचविभागाञ्चितमुरो
नितम्बः स्वां लक्ष्मीमभिलषति नाद्यापि लभते।
दृशो लीलामुद्रा स्फुरति च न चातिस्थितिमती।। बालरा. ३/२१

(ख) वहतु धनुरसङ्गादैक्षवं वैणवं वा प्रहरतु च पृषत्कैः कौसुमैरायसैर्वा।
तदपि मकरकेतुर्मूर्ध्नि धन्वीश्वराणामियमिह युवभावं यावदङ्गीकरोति।। वही, ३/२२

(ग) उत्तालालकभञ्जनानि कबरीपाशेषु शिक्षारसो
दन्तानां परिकर्म नीविनहनं भ्रूलास्ययोग्याग्रहः।
तिर्यङ्ग्लोचनवर्तितानि वचसां छेकोक्तिसंक्रान्तयः
स्त्रीणां म्लायति शैशवे प्रतिपलं कोऽप्येष केलिक्रमः।। वही, ३/२३

२. समीहा रतिभोगार्था विलास इति कीर्तितः।। ना.शा. २१/७६

३. हेमप्रभा दर्शनामात्रमहनीयकामरूपः कामरूपेश्वर एषः।
सीता यः सुरप्रतिपक्षोऽसुरः। बालरा. ३/पृ.७७
हेमप्रभा गुरूजनदर्शितविनयनर्मदे नर्मदैकालङ्करणमाहिष्मतीनगरनरेन्द्र एषः।
सीता यः क्षत्रियकुलकुमारोऽपि भूत्वाऽवमानितपरशुरामपराक्रमः। वही, ३/पृ. ७८
हेमप्रभा निसर्गसर्वाङ्गमधुरे मधुरैकालङ्करणमेष।
सीता यो वृन्दावनविहारदुर्ललितः। वही, ३/पृ. ८३
प्रतीहारी औण्ड्रश्चण्डासिरश्मिर्मगधविभुरसावेष काम्बोजराजः
सौराष्ट्रोऽयं नरेन्द्रः शकनृपतिरितोऽप्यत्र नेपालपालः।
अन्ध्राणामीश्वरोऽग्रे सदसि समुदिताः क्ष्माभृतः सर्व एते
सीतायामिन्दुमौलेर्धनुषि च सरसाः प्रेमकौतूहलाभ्याम्।। वही, ३/६३
सीता कथं पुनरेते नरेन्द्राः सकलक्षत्रियमानखण्डनखण्डपरशुचापारोपणमुखाडम्बरेण विडम्बयन्त्यात्मानम्। वही, ३/पृ. ९०

४. विधूतं स्यादरतिः। द. रू. १/३३

५. ओङ्कारो विश्वरक्षाक्रमनिगमविधेरन्तकस्याट्टहासः
संहर्ता शात्रवाणां पटुपटहरवः कीर्तिनिर्वासनस्य।

गया।[1] सीता की सखी हेमलता ने कहा कि तुम्हारा पाणिग्रहण भी सुनिश्चित हो गया।[2] यहाँ धूमिल होते हुए बीज का खोज रूपी कार्य परिसर्प है[3] और सखी का सीता के प्रति परिहास युक्त वचन होने से नर्म अङ्ग भी है।[4]

राम द्वारा धनुष के टूटने पर लक्ष्मण आदि प्रसन्नता से पुलकित हो उठे किन्तु राम धैर्यपूर्वक नीचे सिर किये हुए बैठे रहे।[5] यहाँ राम द्वारा धैर्य की स्थिति होने के कारण नर्मद्युति अङ्ग है।[6]

धनुर्भङ्ग के पश्चात् जनक राम से सीता का हाथ पकड़ने के लिए कहते हैं, जिससे पद्मा अर्थात् श्री का पद्म से संयोग हो जाए।[7] यहाँ स्वयंवर की पूर्व अरति समाप्त हो जाने से शम अङ्ग है।[8] टीकाकार आचार्य लक्ष्मणसूरि ने भी अपनी टीका में इसी पद्य में शम नामक अङ्क बताया है।

उपर्युक्त दृश्य को प्रेक्षणक में देखने के पश्चात् रावण राम को मारने की अपनी प्रतिज्ञा को दोहराता हैं[9]—उपरोक्त प्रसङ्ग में बीज का सहायक होने के कारण प्रगमन अङ्क है।[10]

दोर्यन्त्रासञ्जिसिञ्जानमदटनिरटत्सर्वपर्वप्रसूत-
ष्टीत्कारः शम्भुचापे जयति विजयिनो राघवस्यादिवन्दी।। बालरा. ३/७६

१. सीता—सखि हेमप्रभे भग्नं भर्गस्य भगवतश्चापम्। वही, ३/पृ. ६६

२. हेमप्रभा—सपन्नं च प्रियसख्याः पाणिग्रहणम्। वही, ३/पृ. ६७

३. दृष्टनष्टानुसर्पणम्। द. रू. १/३२

४. परिहासवचो नर्म। वही, १/३३

५. रामः (सकण्ठरोधम्)—
वाचा कार्मुकमस्य कौशिकपतेरारोपणायार्पितं
मद्दोर्दण्डहठाञ्चनेन तदिदं भग्नं कृतन्यक्कृति।
नो जाने जनकस्तदत्र भगवान् व्रीडावशादुत्तरं
त्रिक्षेप्त्रे नतकन्धरो भगवते रुद्राय किं दास्यति।। बालरा. ३/८२
लक्ष्मणः—अहो महदन्तरं पुरुषकाराणाम्।
भग्नं निरीक्ष्य हरकार्मुकमित्यथैते रोमाञ्चकञ्चुकमिदं वपुरुद्वहामः।
आर्यस्तु कण्ठधृतवाणि विलक्षभावात्त्रसानिषण्णनयनं वदनं बिभर्ति।। वही ३/८३

६. धृतिस्तज्जा द्युतिर्मता। द. रू. १/३३

७. जनकः रुग्णचण्डीशकोदण्डनिजदोर्दण्डनिर्जिताम्।
गृहाण पाणौ वैदेहीं पद्मा पद्मे निषीदतु।। बालरा. ३/८४

८. तच्छमः शमः। द. रू. १/३३

९. रावणः—(संस्मरणलज्जम् आत्मगतम्) कथं प्रेक्षणकमेतत्। मुधा संरब्धमस्माभिः। (प्रकाशम्)
सखे प्रहस्त अपि स्मरसि दशकन्धरस्य प्रतिज्ञाम्। बालरा. ३/पृ. ६६

१०. उत्तरा वाक्प्रगमनम्। द. रू. १/३४

राम-परशुराम के मध्य संघर्ष के पहले नारद सभी ऋषियों, देवों, अप्सराओं, विद्याधरों तथा दिव्यचारणों को युद्ध देखने के लिए कहते हैं।[१] यहाँ ब्राह्मणादि चारों वर्णों के एकत्रित होने के कारण वर्णसंहार अङ्ग है।[२] आचार्य लक्ष्मणसूरि ने भी उपर्युक्त सभी प्रसङ्गों में वर्णसंहार अङ्ग बताया है।

जनक, दशरथ से अनुनय करते हैं कि विश्वामित्र के सान्निध्य में राम और सीता का विवाह हुआ है, अतः आप अपनी अनुपस्थिति की बात न सोचियेगा[३]। अतः यहाँ अनुनयविनय होने के कारण पर्युपासन अङ्ग है।[४]

सीता की विदाई के शुभ अवसर पर युद्धप्रिय अतिथि परशुराम के आ जाने[५] से राम-सीता के हित में रुकावट पैदा हो गयी। अतः हित की रोक हो जाने पर निरोध अङ्ग है।[६]

दशरथ द्वारा यह कहने पर कि सूर्यवंशी विश्वामित्र के धनुर्विद्या—शिष्य और शिवधनुष को भङ्ग करने से परीक्षित बल वाले राम दूसरे से हार नहीं सकते।[७] दशरथ द्वारा कहे गये ये वाक्य बीजोद्घाटन कर रहे हैं। अतः यहाँ पुष्प अङ्ग है।[८]

---

१. (क) अत्रे पुलस्त्य पुलह प्रतिथे सुगीथ शाण्डिल्य कुण्डिन विभाण्डक याज्ञवल्क्य।
काण्वे वसिष्ठ यमदत्त पदं रणाय शापेन निर्दहति नारद एष नो चेत्।। बालरा. ४/४

(ख) भो नाकनायक विनायक चित्रभानो भावो विशाख वरुण क्षणदेशदम्भौ।
कीनाश किन्नरपते पवमान रुद्र द्राक्सङ्गरं भजत भार्गवराघवीयम्।। वही, ४/५

(ग) रत्नप्रभे रजनि चित्रलते लवङ्गि सौदामिनि भ्रमरि सुन्दरि देवसेने।
रम्भे घृताचि कलकण्ठि सुकण्ठि सर्वाः स्वर्योषितो व्रजत पश्यत रामभद्रम्।। वही, ४/६

(घ) मायावने विहगवेग कृपाणकेतो जीमूतवाहन कपिञ्जलहंसनाद।
विद्यावतंस तिलकोत्तर केलिसार विद्याधरास्त्वरितमेत रणाय यामः।। वही, ४/७

(ङ) हे हेमवर्ण मणिशेखर चित्रबाहो वीणाविनोद मदवल्लभ रक्तकण्ठ।
क्रीडाकुमार कनकाङ्गद रुद्रहास द्राक् सारणाः सरत मांयुधि चेद्दिदृक्षा।। वही, ४/८

२. चातुर्वर्ण्योपगमनं वर्णसंहार इष्यते। द. रू. १/३५

३. मया विना विवाहोऽभूदिति चेतसि मा कृथाः।
यदासीत् सन्निधौ तत्र स्वयं कुशिकनन्दनः।। बालरा. ४/४८

४. पर्युपास्तिरनुनयः। द. रू. १/३४

५. यत्तूणे परशुर्द्धनुर्गुणनतं पाणौ शराः पञ्चषाः कृष्णैणाजिनमक्षसूत्रवलयं यज्ञोपवीतं जटाः।
तन्नूनं जमदग्निजो मृनिवृषा रोषादुपैत्यग्रतस्तुल्यं मूर्तिमिवैष बिभ्रदुभयीं वीरस्य शान्तस्य च।।
बालरा. ४/५०

६. हितरोधो निरोधनम्। द. रू. १/३४

७. यस्योत्पत्तिर्दिनकरकुले यं महाभागधेयं विश्वामित्रो धनुरूपनिषद्येकशिष्यं व्यधत्त।
श्रीकण्ठीये बलमविकलं यस्य चापे च दृष्टं तस्यान्यस्माद्यदि परिभवः स्वस्ति वीरव्रताय।।
बालरा. ४/६८

८. पुष्पं वाक्यं विशेषवत्। द. रू. १/३४

परशुराम का क्रोधपूर्ण वाक्य कि मैं राम के शिर में पिनाक का टुकड़ा लपेटकर मुण्डमालाधारी शिव के पास जाऊँगा[१]। यहाँ परशुराम द्वारा राम के प्रति प्रत्यक्ष रूप से निष्ठुर वचन का प्रयोग करने के कारण वज्र अङ्ग है।[२] आचार्य लक्ष्मणसूरि ने भी अपनी टीका में इसी प्रसङ्ग में वज्र अङ्ग का उल्लेख किया है।

आर्या जानकी के विवाह की शर्त वाला शिवधनुष आपने चढ़ाया, किन्तु यदि बाहुबल देखा जाना है तो पहले मेरा देख लिया जाय[३] लक्ष्मण के इस कथन को सीता और विश्वामित्र अनुमोदित करते हैं[४] और लक्ष्मण वैष्णव धनुष को चढ़ा देते हैं।[५] यहाँ लक्ष्मण और विश्वामित्र द्वारा हेतुप्रदर्शक वाक्यों का प्रयोग होने के कारण उपन्यास अङ्ग है।[६]

गर्भ

प्रतिमुख सन्धि में जहाँ पर बीज प्रकाशित होकर बार-बार प्रकट और तिरोहित हो जाता हो तथा साथ ही साथ (उसके लिये) अन्वेषण होकर जिसका विकास होता हो वह गर्भ सन्धि कहलाती है।[७]

जब बीज के दिखने के बाद फिर से नष्ट हो जाने पर उसका अन्वेषण बार-बार किया जाता है, तो गर्भसन्धि होती है।[८] इसमें पताका अर्थप्रकृति और प्राप्तिसम्भव अवस्था का मिश्रण पाया जाता है। पताका का होना अनिवार्य नहीं किन्तु प्राप्तिसम्भव

---

१. जामदग्न्यः—भग्नरुद्रधनुः खण्डप्रोतेन शिरसा तव।
मुण्डधारी व्रती चाहमुपस्थास्ये कपालिनम्।। बालरा. ४/७०

२. वज्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम्। द. रू. १/३५

३. लक्ष्मण—आर्य! आर्य! आर्यालाभपणैकप्रणयिनि शकरकार्मुकारोपणे के नामान्ये दोर्दण्डचण्डिमात्रारोप्ये तु वैष्णवे धनुषि सति पदातिलवे लक्ष्मणे न प्रभुरार्यः।
बालरा. ४/पृ. १३४

४. सीता—वत्स लक्ष्मण! सुलक्षणोऽसि यो राघवकुलोचितचरितधुरं धारयसि।
विश्वामित्रः-रामभद्रे भग्नधूर्जटिधनुषि ज्यायसि कनीयसो भ्रातुरुचितमेव माधवयं चापमारोपयितुं भङ्क्तुं वा। वही, ४/पृ. १३४

५. दोर्दण्डन्यासलीलानमदटनि तडत्कारि नारायणीयं
सद्यः सज्जीकृतज्यं विरचयति धनुर्लक्ष्मणे स्थामलक्ष्म।
रामस्याद्यस्य दत्तं मुखशशिनि पदं कालिकालाञ्छनेन
न्यस्तं नव्यस्य भव्ये कुमुदवनभुवा द्राक्स्मितज्योत्स्नया च।। वही, ४/७४

६. उपन्यासस्तु सोपायम्। द. रू. १/३५

७. उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिरप्राप्तिरेव च।
पुनश्चान्वेषणं यत्र स गर्भ इति संज्ञितः।। ना. शा. २१/३६

८. गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः। द. रू. १/३६

का होना बहुत जरूरी है।[१] यह सन्धि बारह अङ्गों वाली होती है—अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल, उद्वेग, सम्भ्रम, आक्षेप।[२]

बालरामायण नाटक के पञ्चम, छठे और सप्तम अङ्क के मिश्रविष्कम्भक में गर्भ सन्धि का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

रावण का मन्त्री माल्यवान् रावण को वञ्चित करने के लिए कठपुतली की सीता का निर्माण करवाता है।[३] यहाँ छद्म या कपट होने के कारण अभूताहरण अङ्ग है।[४] आचार्य लक्ष्मणसूरि ने भी अपनी टीका में इसी प्रसङ्ग में अभूताहरण अङ्ग बताया है।

माल्यवान् की आगामी योजना है कि रावण को कठपुतली का प्रलोभन दे देने पर हमें कुछ समय प्राप्त होगा, जिससे हम लोग विविध नीतियों का प्रयोग कर सकेंगे[५]—यहाँ माल्यवान् द्वारा प्राप्ति का मार्ग समझाया गया है अतः मार्ग अङ्ग है।[६]

यन्त्र जानकी रूपी कृत्रिम सीता की प्रतीक्षा में बैठा हुआ रावण कहता है कि जितनी प्रसन्नता मुझे आज हो रही है उतनी प्रसन्नता तो मुझे शिव के प्रसन्न होने पर, इन्द्र को बाँधने पर और युद्ध में कुबेर से पुष्पक का हरण करने पर भी नहीं हुई थी[७]। यहाँ रावण द्वारा सीता प्राप्ति को उत्कृष्ट रूप में वर्णित करने के कारण उदाहरण अङ्ग है।[८]

कठपुतलीरूपी सीता को रावण प्रेमपूर्वक समझाता है और राम से अपने को

---

१. द्वादशाङ्गः पताकास्यात्र वा स्यात्प्राप्तिसम्भव। द. रू. १/३६

२. अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः।
सङ्ग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिबले यथा।।
उद्वेगसम्भ्रमाक्षेपाः लक्षणं च प्रणीयते। वही, १/३७-३८

३. सूत्रधारचलद्दारुगात्रेयं यन्त्रजानकी।
वक्त्रस्थसारिकालापा लङ्केन्द्रं वञ्चयिष्यति।। बालरा. ५/६

४. अभूताहरणं छद्म्। द. रू. १/३८

५. माल्यवान् शृणु यत्कृतं भवति। सीताप्रतिकृतिदर्शनेन दशाननः प्रलोभितो भवति। प्रलोभनेन च काललाभः। काललाभो हि नयविदां प्रयोगग्रामं कन्दलयति। प्रयोगपरतन्त्रा च कार्यसिद्धिः।
बालरा. ५/पृ. १४२

६. मार्गस्तत्त्वार्थकीर्तनम्। द. रू. १/३८

७. रावणः न प्रीते परमेश्वरेऽपि शिरसां छेदेन होमेन वा
ज्यावल्लीनहनेन चामरपतौ द्वारार्गलासङ्गिनि।
संयत्यैलविलात्तथा न च हृते विश्वातिथौ पुष्पके,
द्रष्टव्या जनकात्मजेत्यथ यथा लङ्केश्वरो मोदते।। बालरा. ५/८

८. सोत्कर्षं स्यादुदाहृतिः। द. रू. १/३९

श्रेष्ठ बतलाता है।[१] अपने प्रताप का वर्णन करता हुआ उसे विविध सुखों का लालच देता है।[२] यहाँ रावण द्वारा साम, दाम, दण्ड और भेद का प्रयोग करने के कारण सङ्ग्रह सन्ध्यङ्ग है।[३]

यन्त्र-जानकी रूपी सीता का स्पर्श करता हुआ रावण यथास्थिति को जानकर इसे मायामय की बुद्धि और सीता द्वारा अपनी परीक्षा समझता है।[४] उपरोक्त प्रसङ्ग में रावण द्वारा तर्क-वितर्क युक्त वाक्यों का प्रयोग होने के कारण रूप अङ्ग की प्रस्तुति है।[५] आचार्य लक्ष्मण सूरि ने भी अपनी तत्त्वालोक टीका में इसी प्रसङ्ग में रूप अङ्ग बताया है।

रावण की बहन शूर्पणखा उसके पास आकर उसे क्रोधयुक्त वचनों द्वारा उकसाती है कि भैया! तक्षक नाग का चूड़ामणि निकाल लिया गया और बड़वानल के ज्वालासमूह को चूर्णित कर दिया गया। आपकी बहन के साथ अत्याचार किया गया[६]। इसलिए रावण भी सक्रोध राम को मारने का निश्चय करता है[७]। यहाँ पर रावण द्वारा क्रोधपूर्ण वचनों का प्रयोग होने के कारण तोटक है।[८]

इन्द्र की सहायता करके लौटते हुए दशरथ अयोध्या में सूनापन देखकर रामादि

---

१. दृग्लीलासु सकौतुकं यदि मनस्तन्मे दृशां विंशति-
निःसन्धौ परिम्भणे रतिरथो दोर्मण्डली दृश्यताम्।
प्रेमा चेत्परिचुम्बने दशमुखी वैदेहि सज्जापुरः
पौलस्त्यस्य च राघवस्य च महत् पश्योपचारेऽन्तरम्।। बालरा. ५/१७

२. मदनघभुजदण्डग्रामचण्डप्रतापप्रतिहतदयितानां खेचरीणां शिरःसु।
तव करपुटचेष्टासज्जसेवाञ्जलीनां चरणनखशिखाली शेखरीभावमेतु।। वही, ५/१८

३. संग्रहः साम—दानादिः। ना. द. १/सू. ७७

४. रावणः—रूपसंपदमरीषु नेदृशी स्पर्श एष च दृषत्सहोदरः।
तन्मतिर्मम विदेहजन्मनो मां परीक्षितुमियं विजानता।। बालरा. ५/२०
(पुनर्निरूप्य) अये सारिकाधिष्ठितवक्त्रं सीताप्रतिकृतियन्त्रम्। अहो मतिमान् मायामयश्छ-
लितोऽस्मि। वही, ५/पृ. १४८

५. रूपं वितर्कवद्वाक्यम्। द. रू. १/३६

६. शूर्पणखा—आर्येकमातृक! प्रेक्षस्व तक्षकचूडामणिरुत्पाटितो वडवानलज्वालाकलापकं चूर्णितं दशकण्ठकनिष्ठभगिन्या अत्याहितम्। बालरा. ५/पृ. १७१

७. रावणः—त्रुटयद्दोर्दण्डखण्डोड्डमरपुरुपतत्कण्ठकोष्ठप्रकोष्ठं,
स्फारस्फिक्पृष्ठपीठीहठदलितशिराकन्धराकाण्डखण्डम्।
सस्तम्भं क्षत्रडिम्भं चटदितिविचटन्मुण्डपिण्डं प्रचण्ड-
श्चण्डीशोच्चण्डदंष्ट्राक्रकच इव दृढं चन्द्रहासस्तृणेढु।। वही, ५/७७

८. संरब्धं तोटकं वचः। द. रू. १/४०

के विषय में अनिष्ट की आशङ्का करते हैं।[1] यहाँ दशरथ द्वारा हेतुओं के आधार पर तर्क करने के कारण अनुमान अङ्ग है।[2]

रामादि के नर्मदा पार पहुँचने का प्रसङ्ग सुमन्त्र द्वारा जानकर दशरथ मलयाचल निवासी मित्र जटायु को याद करते हैं।[3] तभी जटायु का दूत रत्नशिखण्ड आ जाता है।[4] यहाँ दशरथ द्वारा इष्ट वस्तु का चिन्तन करते ही उसकी प्राप्ति हो गयी अतः क्रम अङ्ग है।[5]

प्रस्तुत नाटक में कपट द्वारा राम का वनवास[6] और मारीच रूपी मायामृग से राम और सीता को ठगकर रावण द्वारा सीताहरण किया गया है।[7] उपर्युक्त दोनों प्रसङ्गों में कपटयुक्त आचरण होने के कारण अधिबल अङ्ग है।[8]

मारीच रूपी मायामृग के पीछे राम का जाना और तदनन्तर लक्ष्मण का भी राम के पीछे चला जाना सुनकर[9] कौशल्या उद्विग्न हो जाती हैं।[10] अतः यहाँ उद्वेग अङ्ग

---

१. दशरथः—एतच्छ्रान्तविचित्रचत्वरपथं विश्रान्तवैतालिक-
श्लाघाश्लोकमगुञ्जिमञ्जुमुरजं विध्वस्तगीतध्वनि।
व्यावृत्ताध्ययनं निवृत्तसुकविक्रीडासमस्यं नमद्-
विद्वद्वादकथं कथं पुनरिदं मौनव्रते वर्त्तते।। बालरा. ६/१२

२. अध्यूहो लिङ्गतोऽनुमा। द. रू. १/४०

३. दशरथः—वत्स रामभद्र! मन्ये ममेव मलयाचलवासिनः प्रियवयस्यस्य जटायोरपि सर्वङ्कषो भविष्यसि। बालरा. ६/पृ. २०३

४. चित्रशिखण्डः—एषोऽहं जलमयरत्नकामधेनुं पक्षाभ्यां सपदि विघूर्ण्य ताम्रपर्णीम्।
द्राक्कृत्वा मलयतरून् द्रुताहिपाशानादेशाद्दशरथमागतो जटायोः।। वही, ६/५७

५. क्रमः सञ्चिन्त्यमानाप्तिः। द. रू. १/३६

६. रामः—मया मूर्ध्नि प्रहे पितुरिति धृतं शासनमिदं स यक्षो रक्षो वा भवतु भगवान् वा रघुपतिः।
निवर्तिष्ये सोऽहं भरतकृतरक्षां निजपुरीं, समाः सम्यङ्नीत्वा वनभुवि चतस्रश्च दश च।।
बालरा. ६/१६

७. रत्नशिखण्डः—आकर्णाकृष्टचापार्पितविशिखभृतानुद्रुतश्चाणीयान्
माणिक्याङ्गः कुरङ्गः सपदि धृतजवो जानकीवल्लभेन।
सीतां चाधाय मध्ये भणिवलभि बलीरावणः पुष्पकेण
स्वां गन्तुं राजधानीं सकलसुरवधूचण्डवृतः प्रवृत्तः।। वही, ६/६२

८. कपटेनातिसन्धानं ज्ञेयन्त्वधिबलं बुधैः।। ना. शा. २१/८८

९. रत्नशिखण्डः—ततश्च विचित्ररचनाकर्मणि तच्चर्मणि सीताकौतूहलिकतामवगत्य तद्रक्षणार्थं लक्ष्मणमवस्थाप्य तमनुपृष्ठसृतो रामभद्रः। कियतीषु च कालकलासु गतासु किं तत्राद्भुतभूते भविष्यत्यार्यस्येति जाताशङ्कां वैखानसपत्नीनां समर्प्य जानकीं सौमित्रिरपि राममनुसृतः।।
बालरा. ६/पृ. २०५

१०. कौशल्या—(किञ्चिदुत्थाय) जात लक्ष्मण,! अलमलं माणिक्यकुरङ्गेण।
मा खलु मा खल्विदानीं जानकीमटवीकान्तारे परित्यज। वही ६/पृ. २०५-२०६

वर्णित है।[1]

रत्नशिखण्ड से जटायु और रावण के मध्य हुए भीषण युद्ध का वर्णन सुनने के पश्चात्[2] दशरथ और सभी रानियाँ भयपूर्वक विविध हार-जीत की शङ्काएँ करते हैं।[3] इस प्रसङ्ग में शङ्का का सञ्चार होने के कारण सम्भ्रम अङ्ग है।[4]

सप्तम अङ्क के मिश्रविष्कम्भक में विभीषण के वैतालिक कर्पूरचण्ड से राम की प्रशंसा करते हुए प्रतीहार बतलाता है कि राम ने दशरथ की मृत्यु को सुनकर रावण के वध तक अपनी प्रशंसा का निषेध कर दिया है।[5] यहाँ रावणरूपी गर्भ के बीज का उद्भेद होने से आक्षेप सन्ध्यङ्ग है।[6]

विमर्श सन्धि

गर्भसन्धि में विकसित बीज का और अधिक विस्तार से विकास प्रतीत हो और जो प्रलोभन, क्रोध तथा दुर्गति के द्वारा और अधिक जमावट लिये हो तो उसे विमर्श-सन्धि, समझना चाहिए।[7]

जहाँ क्रोध से, व्यसन से या विलोभन (लोभ) से फल-प्राप्ति के विषय में विचार किया जाय तथा जहाँ गर्भसन्धि के द्वारा बीज को प्रकट कर दिया गया हो, वहाँ अवमर्श (विमर्श) सन्धि कहलाती है।[8] यह सन्धि तेरह अङ्गों से संवलित होती है अपवाद,

१. उद्वेगोऽरिकृता भीतिः। द. रू. १/४२

२. चित्रे तत्र तपन्निशाचरणे नाङ्गं जटायोरभू-
न्नो कृत्तं दशकन्धरेण कणशो यच्चन्द्रहासासिना।
लङ्काभर्तुरपि प्रचण्डकुलिशव्यापारनीराजितं
यत्तुण्डेन न खण्डितं खगपतेर्यद्वा न लूनं नखैः।। वालरा. ६/६८

३. कौशल्या—भगवति संग्रामश्रीः मुञ्चतु सीतां वन्दिग्रहात्।
दशरथः—साधु गरुडाग्रज! साधु साधु दिनमणिसारथे! साधु जटायुनापुत्रेण।
दशरथः—हा अरुणकुलालङ्करण! हा संपातिवल्लभ! हा गरुडप्रसादवित्त।
कामवस्थां नीतोऽसि प्रियसुहृदा दशरथेन।
कौशल्या—हा देव त्वया कृतविडम्बं समस्तं वनगतराघवकुटुम्बम्।
सुमित्रा—न केवलं वनगतं भुवनगतमपि। वही, ६/पृ. २०६-२१०

४. शङ्कात्रासौ च सम्भ्रमः। द.रू. १/४२

५. प्रतीहारः ननु रामदेवेन निषिद्धमात्मोपवर्णनमादशरथस्वर्गारोहणश्रुतेरादशकण्ठवन्धम्। वालरा. ७/पृ. २१८

६. गर्भबीजसमुद्भेदादाक्षेपः परिकीर्तितः। द. रू. १/४२

७. गर्भानिर्भिन्नबीजार्थो विलोभनकृतोऽपि वा।
क्रोधव्यसनजो वापि विमर्शः स इति स्मृतः।। ना. शा. २१/४०

८. क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।। द. रू. १/४३

सम्फेट, विद्रव, द्रव, शक्ति, द्युति, प्रसङ्ग, छलन, व्यवसाय, विरोधन, प्ररोचना, विचलन और आदान।[1]

बालरामायण नाटक में सप्तम और अष्टम अङ्कों में विमर्श सन्धि के तेरह अङ्गों को वर्णित किया गया है।

राम के द्वारा समुद्र की उपासना किये जाने पर भी समुद्र कोई ध्यान नहीं देता और उनकी सहायता नहीं करता है[2] तो प्रतीहार समुद्र को जड़राशि कहता है[3] फलतः समुद्र का दोषवर्णन होने के कारण यहाँ अपवाद अङ्ग है।[4]

अगस्त्य ऋषि द्वारा सागर को एक चुल्लू में पीना, बड़वानल के निश्चित होने के कारण किनारे को न लाँघ पाना और कल्पान्त में विपुल शरीर को गर्तमात्र धारण करना इत्यादि समुद्र की कमजोरियों का उद्घाटन प्रतीहार करता है[5]। अतः राम के द्वारा माननीय समुद्र का प्रतीहार द्वारा तिरस्कार किये जाने के कारण द्रव अङ्ग है।[6]

समुद्र में राम द्वारा अग्निबाण छोड़ते ही[7] समुद्र में निवास करने वाले सभी जीव-जन्तु प्राणरक्षार्थ इतस्ततः भागने लगते हैं[8]। इस प्रसङ्ग में समुद्र के

---

१. तत्रापवादसम्फेटौ विद्रवद्रवशक्तयः।
द्युतिः प्रसङ्गश्छलनं व्यवसायो विरोधनम्।।
प्ररोचना विचलनमादानं च त्रयोदश। — द.रू. १/४४-४५

२. सुग्रीवे प्रणयोल्लसाः शशधरे बद्धाभ्यसूयाश्चिरं
साश्चर्याः पवनात्मजे धृतरुषः पौलस्त्यवत्पां दिशि।
सोत्साहाश्च शरासने जलनिधौ क्षुब्धाश्च कृत्स्नां निशां
रामस्याद्य नियन्तुमेव न गता नानारसा दृष्टयः।। — बालरा. ७/१७

३. प्रतीहारः जडराशिरसौ। — वही, ७/पृ. २१६

४. दोषप्रख्यापवादः स्यात्। — द. रू. १/४५

५. प्रतीहारः—पीतोऽयं कलशोद्भवेन चुलुकं कृत्वैकमम्भोनिधि-
र्नो वेलामपि लङ्घते नियमितग्रासादयं वाडवात्।
कल्पान्तेषु वहत्ययं च विपुलं श्वभ्रावशेषं वपु-
स्तत्पूर्वाकलितेप्यमुत्र भवतां कोऽयं विषादोदयः।। — बालरा. ७/१९

६. द्रवो गुरुतिरस्कृतिः। — द. रू. १/४५

७. प्रतीहारः—त्र्यक्षात्किंस्विदक्ष्णः क्षयसमयशिखी निर्गतश्चञ्चदर्चिः
किंस्विद्भित्त्वार्णवार्णांस्युपरि परिणतः सर्वतोऽत्यौर्ववह्निः।
किंस्वित्कालाग्निरुद्रः स्थगयति जगतीमेष पातालमूला-
दाज्ञातं धाम्नि वारां रघुपतिविशिखाः प्रज्वलन्तः पतन्ति।। — बालरा. ७/३०

८. सुग्रीवः—अन्योन्याश्लेषरक्षाविधिवलितवपुर्यष्टितुष्टं भुजङ्ग-
द्वन्द्वैरुद्दामदाहस्रुतसलिलमहागर्भमभ्रैर्व्यलायि।
सर्वत्रावर्तमुद्रां विदधति जलधौ सायकैः पावकीयै-
रुत्तापाद्यादसां च त्रिजगदभिभवन्निःसृतो विस्रगन्धः।। — वही, ७/३३

जलचर-जन्तुओं का राम के अग्निवाण से डर कर पलायन करने के कारण विद्रव अङ्ग है।[1]

माया सीता का सिर काटने वाले रावण की ललकार में, राम के साथ रोषपूर्ण बातें[2] करने के कारण यहाँ सम्फेट अङ्ग है।[3]

माया-सीता का कटा हुआ सिर देखकर राम के साथ सभी लोग दुःखी होते हैं[4] और क्षण भर के लिए विरोध शान्त-सा हो जाता है। अतः यहाँ शक्ति अङ्ग है।[5]

सिंहनाद को आगे वढ़ता हुआ देखकर राम उसे उद्विग्न करने वाली बातें कहते हैं।[6] अतः द्युति अङ्ग का समावेश है।[7]

सिंहनाद, ताड़का को मारने के कारण राम की वीरता को कलङ्कित करने का प्रयास करता है[8], तव लक्ष्मण कहते हैं कि ताडका को मारने में गुरु की आज्ञा थी[9]। अतः यहाँ गुरु की चर्चा होने के कारण प्रसङ्ग अङ्ग है।[10]

---

१. विद्रवो वधबन्धादिः। द. रू. १/४५

२. कोऽयं दिव्ये विमाने
हनूमान्—रजनिचरपतिः
लक्ष्मणः—साधु पौलस्त्य साधु, द्राक् चण्डं चन्द्रहासं कलय सविधगे नास्त्यरातौ तितिक्षा।
रामः—सीताप्यत्रैव तस्याश्चटुपु कृतरतिः सैष भोः कार्मुकं मे,
सुग्रीवः—शान्तं वाणाः सरन्तो न खलु जनकजां रावणं वा विदन्ति।। वालरा. ७/७०
भोः पश्य राम ममपार्श्वगतां च सीतां तच्च प्रदर्शय निजं जितवालि वीर्यम्।
अस्याः स एष ननु मूर्धनि चन्द्रहासो रम्भाप्रकाण्डदलनोद्यममातनोति।। वही, ७/७१

३. सम्फेटोरोषभाषणम्। द. रू. १/४५

४. देव्याः शिरो मम पुरो यदिदं विलूनं दृष्टं छलाद्दशमुखो यदसौ प्रनष्टः।
धिङ्निष्फलं हनुमतः प्लवनं तदव्धौ धिङ्निष्फलः स च ममाचलसेतुवन्धः।। वालरा. ७/७५
(सर्वे विषादं नाट्यन्ति)

५. विरोधशमनं शक्तिः। द. रू. १/४६

६. धिग्धिङ्निशाचरपतिं शुकसारणौ धिङ्धिङ्मेघनादमथ धिग्दशराजपुत्रान्।
यैस्त्वं विचित्रपुषा चिरमीक्षणीयः क्रूराशयैरुपहतो रणदेवतायै।। वालरा. ७/८७

७. तर्जनोद्वेजने द्युतिः। द. रू. १/४६

८. स्त्रीमात्रं ननु ताडका भृगुभवो रामश्च विप्रःशुचि-
र्मारीचो मृग एष भीतिभवनं वाली पुनर्वानरः।
भोः काकुत्स्थ विकत्थसे कथय किं वीरोजितः कस्त्वया
दोर्दर्प्यस्तु तथापि ते यदि ततः कोदण्डमारोपय।। वालरा. ७/८८

९. स्त्री ताटकास्तु तद्घाते गुर्वाज्ञा गुरुकारणम्।
मारीचोऽप्यस्तु स मृगः श्रात्रं हि मृगयारसम्।। वही, ७/८९

१०. गुरुकीर्तनं प्रसङ्गः। द. रू. १/४६

सिहंनाद और नरान्तक की मृत्यु अङ्गद के द्वारा होने पर देवता आकाश में हर्षित होते हैं।[1] रावण अपमानित होता हुआ कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत को बुलाने के लिए कहता है।[2] इस प्रसङ्ग में देवों के द्वारा रावण का अपमान होने के कारण छलन[3] तथा रावण द्वारा अपने सामर्थ्य के विषय में वर्णन करने से व्यवसाय अङ्ग है।[4]

रावण द्वारा कुम्भकर्ण को जगाने का आदेश देने पर राक्षस परस्पर वार्तालाप करते हैं कि हम लोग स्वामी कुम्भकर्ण को जगायेंगे परन्तु राम उसे पुनः सदा के लिए सुला देगें तत्पश्चात् कङ्कालक निशाचर कहता है कि विभीषण को छोड़कर सभी की यही गति होने को है।[5] यहाँ सिद्धव्यक्ति की भांति कङ्कालक की बातों से भावी घटनाओं की सूचना होने से प्ररोचना अङ्ग है।[6]

मेघनाद से युद्ध करते समय लक्ष्मण कहते हैं कि माया को त्यागकर वीरों की भाँति लड़कर स्वर्ग जाओ। खरदूषण और त्रिशिरा का खून पीने वाले मेरे बाण तुम्हारा भी खून चाह रहे हैं[7]—यहाँ लक्ष्मण द्वारा आत्मश्लाघा का वर्णन होने के कारण विचलन अङ्ग है।[8]

इसके बाद मेघनाद और लक्ष्मण क्रोधपूर्वक परस्पर अपनी-अपनी शक्ति का

---

१. हर्षादिकं नयनमुशना नेत्रयुग्मानि देवा-
स्त्रीण्यक्षीणि त्रिपुरविजयी पद्मसद्माऽष्टदृष्टीः।
चक्षुःषट्कं द्विगुणगुणितं शाङ्करिर्दृक्सहस्रं
नीत्वोल्लासं स च सुरपतिर्दृष्टवान् बालिपुत्रम्।। बालरा. ८/६

२. हर्षोत्कर्षः किमयममराः क्षुद्ररक्षोवधाद्व-
स्तन्मे दोष्णां विजितजगतां विक्रमं विस्मृताः स्थ।
किञ्चाद्यैव प्रियरणरसो बोध्यते कुम्भकर्ण-
स्तूर्णं जेता स च दिविषदां बोध्यते मेघनादः।। वही, ८/१२

३. छलनं चावमाननम्। द. रू. १/४६

४. व्यवसायः स्वशक्त्युक्तिः। वही, १/४७

५. करङ्ककः—(जनान्तिकं) सखे कङ्कालक! देव कुम्भकर्णं प्रबोधयति न पुनरात्मानं किं च प्रयत्नप्रबोधितोऽप्यसौ रामेण दीर्घं शाययितव्य एव।
कङ्कालकः—(कर्णे) विभीषणं वर्जयित्वा सर्वस्यैषा गतिः। बालरा. ८/पृ. २६६

६. सिद्धमन्त्रणतो भाविदर्शिका स्यात्प्ररोचना। द. रू. १/४७

७. मायां मुञ्च गृहाण कौतुकरसं वीरप्रशस्ये रणे
स्वर्नारीजन एष नूतनपतिप्राप्त्याऽस्तु बद्धोत्सवः।
मद्बाणाः खरदूषणत्रिशिरसां सैन्योपमर्दादमी
रक्षःशोणितपानलम्पटमुखास्त्वत्तोऽपि वाञ्छन्त्यसृक्।। बालरा. ८/२४

८. विकत्थना विचलनम्। द. रू. १/४८

वर्णन करते हैं।[1] यहाँ क्रोधयुक्त उत्तरोत्तर सम्भाषण होने के कारण विरोधन अङ्ग है।[2]

कुम्भकर्ण और मेघनाद की मृत्यु सुनकर, रावण शोकपूर्वक उन दोनों के कृत्यों का स्मरण करता हुआ कहता है कि अब सारे देव निश्चय ही स्वतन्त्र हो जाएँगे। रावण के विलाप से नाटक उपसंहार की ओर बढ़ता है और फल का सामीप्य व्यक्त होता है।[3] अतः यहाँ आदान नामक संध्यङ्ग है।[4]

निर्वहण सन्धि

मुखादि सन्धियों में कथित अर्थ बीज सहित प्रधान प्रयोजन के साथ मिलकर फलप्राप्ति को यदि सम्पादित कर दिया जाय तो उसे निर्वहण सन्धि कहते हैं।[5]

---

१. मेघनादः—तं रामं कथयन्ति विक्रमधनं तन्मे मनाक्प्रीतये
तस्मिन् सङ्गरकेलिकर्म यदयं वीरप्रियो रावणिः।
भ्रातृत्वेन तु तस्य लक्ष्मण कथं धैर्योदधुरं चेष्टसे
दायादान्न च रिक्थवत्क्वचन भो शौर्यक्रिया क्रामति।। बालरा. ८/२८
(पुनस्तत्रैव)
लक्ष्मणः—लङ्केश्वरेण यदि शङ्करपादमूले लूत्वा शिरांसि भुवनाधिपतित्वमाप्तम्।
तन्मेघनाद यदि किं तव सूर्यभक्तो भास्वन्मणिर्ज्वलति किं स्फटिकोपलस्य।। वही, ८/२६
(पुनस्तत्रैव)
मेघनादः—रे रे विलोचनकुलपांसन केरलीसुत लक्ष्मण। रणप्रवणं रावणयुवराजं इन्द्रजितमपि मां न जानासि तदेव ज्ञाप्यसे। (पुनस्तत्रैव)
लक्ष्मणः—रे रे पुलस्त्यकुलकलङ्क सहोढासुत! रामचन्द्रानुचरं लक्ष्मणमपि मां न जानासि तदेव ज्ञाप्यसे। वही, ८/पृ. २७४

२. विरोधनन्तु संरम्भादुत्तरोत्तरभाषणम्। ना. शा. २१/६५

३. रावणः—शेषः सोढ्याऽपि शङ्कां त्यजति न भवता कण्ठसूत्रार्धकृष्टो
गौरीसिंहेन्द्रदन्तिद्वितयरणविधिं त्वत्प्रणीतं स्मरामि।
तच्चास्ते त्वच्चरित्रं लिखितमिव पुरो मद्दृशां यत्सुमेरु-
र्वत्सेनोदस्यमानो रचितचटुशतं मोचितः स्वर्गिवर्गैः।। बालरा. ८/८४
सुमुखः—आकर्णाकृष्टचापोन्मुखविशिखशिखाशेखरः शूलपाणि-
र्बिभ्राणो भैरवत्वं वहलकहकहारावरौद्राट्टहासः।
ध्यातः सौमित्रिणाऽथ प्रसरदुरुतरोत्तालवेतालताल-
स्तद्वक्त्रादुद्भवद्भिः समजनि शिखिभिर्भस्मसादिन्द्रजिच्च।। वही, ८/८५
रावणः—शेतां सम्प्रति वासवश्चिरभवन्निद्राजडैर्लोचने-
र्जायन्तां विबुधोपयोग्यकुसुमाः सर्वेऽपि दिव्यद्रुमाः।
वन्धाः स्वर्गसदां च सन्त्वनिगडाः प्राप्तोऽसि तं गोचरं
मद्वक्त्रैरपि वत्स नाम दशभिर्वक्तुं न यः शक्यते।। वही, ८/८६

४. फलसामीप्यमादानम्। ना. शा. २१/का. ६०

५. समानयनमर्थानां मुखार्थानां स वीजिनाम्।
फलोपसङ्गतानाञ्च ज्ञेयं निर्वहणं तु तत्।। वही, २१/४१

कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि अर्थ, जो अब तक इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, जब एक अर्थ के लिये एक साथ समेटे जाते हैं या एकत्रित किये जाते हैं, तो वहाँ निर्वहण सन्धि होती है।[1] इस सन्धि के चौदह अङ्ग होते हैं—सन्धि, विबोध, ग्रथन, निर्णय, परिभाषण, प्रसाद, आनन्द, समय, कृति, भाषा, उपगूहन, पूर्वभाव उपसंहार और प्रशस्ति।[2]

बालरामायण नाटक के नवम और दशम अङ्क में निर्वहण सन्धि का समावेश है।

इन्द्र ने यमराज से जिज्ञासा की है कि लङ्कानिवासियों में किनका कब और किसके द्वारा नाश किया जायगा और राम द्वारा रावण का कैसे वध किया जायगा?[3] इस प्रसङ्ग में बीज की उद्भावना होने के कारण सन्धि नामक अङ्ग है।[4]

रावण से राम कहते हैं कि अब भी तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ा है, नीति से चलो और जनकपुत्री सीता दे दो, नहीं तो तुम्हारे भाइयों के कण्ठ के रक्त से सींचा हुआ मेरा बाण यदि धनुष पर चढ़ा तो तुम्हें मारने में कुछ कसर नहीं छोड़ेगा।[5] यहाँ नायक द्वारा अब तक छिपे हुए साध्य की पुनः खोज होने के कारण विबोध अङ्ग है।[6]

चारण द्वारा ज्ञात होता है कि रावण के मन्दोदरी परिचित वक्षःस्थल पर राम ने मारीच घाती अपना प्रथम बाण छोड़ा जो उसकी देह में घुस भी गया।[7] यहाँ कार्य का उपक्षेप होने के कारण ग्रथन नामक निर्वहणाङ्ग है।[8]

---

१. वीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।। द. रू. १/४८-४६

२. सन्धिर्विबोधो ग्रथनं निर्णयः परिभाषणाम्।।
प्रसादानन्दसमयाः कृतभाषोपगूहना।
पूर्वभावोपसंहारौ प्रशस्तिश्च चतुर्दश।। वही, १/४६-५०

३. कदा केषां च केभ्यश्च क्षयो लङ्कानिवासिनाम्।
रामात्तु दशकण्ठस्य किंविधो भविता वधः।। बालरा. ६/२

४. सन्धिर्बीजोपगमनम्। द. रू. १/५१

५. भो लङ्केश्वर दीयतां जनकजा रामः स्वयं याचते
कोऽयं ते मतिविभ्रभः स्मर नयं नाद्यापि किञ्चिद्गतम्।
नैवं चेत् खरदूषणत्रिशिरसां कण्ठासृजा पङ्किलः
पत्री नैष सहिष्यते मम धनुर्ज्याबन्धबन्धूकृतः।। बालरा. ६/१६

६. विबोधः कार्यमार्गणम्। द. रू. १/५१

७. चारणः—मन्दोदरीस्तनविसूत्रितकुङ्कुमं यद्वज्रघातकणचूर्णविकीर्णहारम्।
लङ्केश्वरस्य हृदि तत्र भवद्भुवाऽपि मारीचरक्तपिहितो निहितः पृषत्कः।। बालरा. ६/२४

८. ग्रथनं तदुपक्षेपो। वही, १/५१

रावण का एक सिर काटने के पश्चात् राम कहते हैं कि पार्वती को प्रणाम न करने वाला और सीता को सप्रेम दृष्टि से देखने वाला रावण का सिर मैनें काट डाला। अब अन्य सिर तो सुरवन्दियों को छुड़ाने के लिए काटे जायेंगे।[1] यहाँ राम द्वारा स्वयं ही अपने द्वारा किये गये कार्य का वर्णन किया गया है अतः निर्णय अङ्ग है।[2]

रावण के पुनः उगने वाले सिर को दिखाते हुये रावण और राम के मध्य अधिक्षेपात्मक वार्तालाप होता है।[3] अतः यहाँ पर परिभाषा अङ्ग है।[4]

रावणवध को देखकर इन्द्र और दशरथ प्रसन्न होते हैं।[5] यहाँ इन्द्र द्वारा राम का प्रसादन किया जा रहा है। अतः प्रसाद अङ्ग है।[6]

अङ्क के अन्त में नेपथ्य से ध्वनि आती है कि सभी सुरवन्दियाँ, ऐरावत और प्रहरी देव स्वर्गलोक के लिए प्रस्थान करें और नन्दनवन पुनः देवतरूओं से लहलहाये क्योंकि यमराज के सेवकों ने रावण का सिर इन्द्र के द्वार पर फेंक दिया है।[7] यहाँ

---

१. यद्गौरीचरणाब्जयोः प्रथमतस्त्यक्तप्रणामक्रियं
प्रेमार्द्रेण सविभ्रमेण च पुरा येनेक्षिता जानकी।
लूनं ते तदिदं च राक्षसशिरो जातं च शान्तं मनः
शेषच्छेदविधिस्तु सम्प्रति परं स्वर्बन्दिमोक्षाय मे।। बालरा. ६/४०

२. अनुभूताख्या तु निर्णयः। द. रू. १/५१

३. (क) (पुनराकाशे) किमाह रावणः। हंहो राम किमलीकशिरःखण्डनाडम्बरेण विडम्बयस्यात्मानं क्व पुनः स्वेच्छाजन्मनां रावणावयवानांविच्छेदः।
(पुनराकाशे) किमाह रामः। रावणायं मे प्रीतये भवज्ज्म्भकभावः। तथाहि। बालरा. ६/पृ. ३२२
(ख) यन्मूलतो दशशिरांसि भवन्तियच्चच्छेदेपु तानि शतशोऽथ सहस्रशश्च।
तत् साधु राक्षसपते कथमन्यथाऽयमुत्सृज्यतां जनकजाहरणापवादः।। वही, ६/४५
(ग) (पुनराकाशे) किमाह रावणः। आः क्षत्रियखेट कापटिकतापस धनुरारोपणसमयप्रथम गृहीतां सीतामभिलषन्नुपपतिरिव शीर्षच्छेद्योऽसि।
(पुनराकाशे) किमाह रामः। रे रे पिशाचापसद! वही, ६/पृ. ३२२
(घ) रम्भोपभोगरभसेन निरर्गलोऽसि नो मैथिलीहरणनामसहोऽपि रामः।
नन्वस्मि भास्करकुलप्रभवो द्युभूषा पूषा स एवहि निजान्वयकर्मसाक्षी।। वही, ६/४६

४. परिभाषामिथो जल्पः। द. रू. १/५२

५. निर्दग्धत्रिपुरेन्धनोऽस्तु गिरिशः क्रौञ्चाचलच्छेदने
पाण्डित्यं विदितं गुहस्य किमुतावज्ञायुद्धोत्सवौ।
लूत्वा पङ्कजलावमाननवनं चैतस्य लङ्कापते-
र्वीराणां चरितादूभुतस्य परमे रामः स्थितः सीमनि।। वही, ६/५७

६. प्रसादः पर्युपासनम्। द. रू. १/५३

७. सर्वा गीर्वाणिवन्द्यो व्रजत निजगृहान् बन्धुमाधोरणं द्राक्
स्वर्गेभस्तम्भशालां नय सुरकरिणं यामिका यात देवाः।

दुःखों की समाप्ति हो जाने के कारण समय नामक अङ्ग का समावेश है।[1]

नेपथ्य से शब्द उठता है कि समुद्र में सेतु बांधकर राक्षसों का विनाश करके, अग्निशुद्ध पत्नी को प्राप्त करके और वनवास की प्रतिज्ञा को पूर्ण करके राम पुष्पक विमान से अयोध्या जा रहे हैं।[2] यहाँ ईप्सित वस्तु की प्राप्ति हो जाने के कारण आनन्द सन्ध्यङ्ग है।[3]

हनुमान् राम से कहते हैं कि मुझसे आपका वृत्तान्त सुनकर समस्त प्रजा और भरत, शत्रुघ्न के साथ वशिष्ठ आपके अभिषेक के लिए प्रतीक्षारत हैं।[4] इस स्थल पर लब्ध अर्थ के शमन स्वरूप अभिषेक का समाचार मिलने से कृति सन्ध्यङ्ग है।[5]

वशिष्ठ भरत और शत्रुघ्न, राम, सीता और रघुवंशियों की प्रशंसा करने के उपरान्त राम को सिंहासन पर बैठने को कहते हैं।[6] यहाँ वशिष्ठ के द्वारा राम आदि को मान दिया जा रहा है अतः भाषण सन्ध्यङ्ग है।[7]

अभिषेक समारोह के अनन्तर वशिष्ठ कहते हैं कि वत्स राम तुम धन्य हो, क्योंकि कुबेर तुम्हारे घर भिखारी बन कर आये हैं।[8] राम को अद्भुत वस्तु की प्राप्ति होने के कारण उपगूहन सन्ध्यङ्ग है।[9]

भूयो दिव्यद्रुमाणां ननु भवतु वने नन्दने संनिवेशो
द्वारि क्षिप्तं यदैन्द्रे दशवदनशिरः किङ्करैरन्तकस्य।। बालरा. ६/५८

१. समयो दुःखनिर्गमः। द. रू. १/५२

२. बद्धः सेतुर्लवणजलधौ क्रोधवह्नेः समित्वं नीतं रक्षःकुलमधिगताः शुद्धिमन्तश्च दाराः।
तेनेदानीं विपिनवसतावेष पूर्णप्रतिज्ञो दिष्टयाऽयोध्यां व्रजति दयिताप्रीतये पुष्पकेण।।
बालरा. १०/१५

३. आनन्दो वाञ्छितावाप्तिः। द. रू. १/५२

४. हनूमान—(प्रणम्य) देव! मत्तः श्रुतवृत्तान्तो वसिष्ठः समं भरतशत्रुघ्नाभ्यामन्याभिश्च प्रकृतिभिस्त्वदभिषेकसज्जस्तिष्ठति। बालरा. १०/पृ. ३६७

५. कृतिर्लब्धार्थशमन्।। द. रू. १/६३

६. बसिष्ठः—रामो दान्तदशाननः किमपरं सीता सतीष्वग्रणीः
सौमित्रिः सद्वशोऽस्तु कस्य समरे येनेन्द्रजिन्निर्जितः।
किं ब्रूमो भरतं च रामविरहे तत्पादुकाराधकं
शत्रुघ्नः कथितोऽग्रजस्य च गुणैर्वन्द्यं कुटुम्बं रघोः।। बालरा. १०/१०२
(रामं प्रति) वत्स दाशरथे रामचन्द्र! प्रशस्तो मुहूर्तो वर्तते तदध्यास्व पित्र्यं सिंहासनमेषोऽभिषिच्यसे। वही, १०/पृ. ३७१

७. मानाद्याप्तिश्च भाषणम्। द. रू. १/५३

८. आराधितो रघुकुलोद्वह पुष्पकं प्राक्पालं चिरादिदमदत्तपतिः पशूनाम्।
तस्य प्रभुस्त्वमिह सम्प्रति तत्प्रयच्छ त्वां याचते धनद एष वृषाङ्कमित्रम्।। बालरा. १०/१०३
बसिष्ठः वत्स रामभद्र! धन्योऽसि यस्य ते तत्र भवान्नामकुबेरोऽर्थी। वही, १०/पृ. ३७१

९. कार्यदृष्टयद्भुतप्राप्ती पूर्वभावोपगूहने। द. रू. १/५३

वसिष्ठ द्वारा नायक राम से यह निवेदन कि अब और तुम्हारा क्या प्रिय उपकार करूँ?[1] काव्यसंहार अङ्ग को प्रदर्शित करता है।[2]

बालरामायण नाटक का अन्तिम श्लोक जिसमें राम ने सत्काव्यों के निर्माण और उनके समादर की शुभाशंसा की है।[3] इसमें राम द्वारा कल्याण की कामना होने के कारण प्रशस्ति नामक सन्ध्यङ्ग है।[4]

पताकास्थानक

नाटककार कभी-कभी रूपक में एक स्थान पर भविष्य में घटित होने वाली घटना का सङ्केत कर देता है। यह सूचना पताका या ध्वजा की भाँति भावी वृत्त की सूचना देती है, इसलिये पताकास्थानक कहलाती है। धनञ्जय पताकास्थानक की व्युत्पत्ति करते हुए बताते हैं—जहाँ प्रस्तुत भावी वस्तु की समान वृत्त या समान विशेषण के द्वारा अन्योक्तिमय सूचना हो, उसे पताकास्थानक कहते हैं।[5]

आचार्य भरत के अनुसार जब किसी एक प्रयोजन के विचार के साथ तत्काल अकस्मात् वैसे ही स्वरूप के अन्य प्रयोजन की अतर्कित रूप में प्राप्ति हो जाय तो उसे पताकास्थानक समझना चाहिए।[6] उन्होंने इसके चार प्रकार माने हैं—

१. जहाँ सामाजिकों को किसी गौण या अप्रत्यक्ष प्रकार से सहसा किसी अभीष्ट प्रयोजन या कार्य का ज्ञान हो जाय तो उसे प्रथम पताकास्थानक समझना चाहिए।[7]

२. जहाँ प्रकृत विषय के वर्णन में प्रयुक्त श्लिष्टवचनों का रचनागत विन्यास किसी अप्रकृत अर्थ के भी उपयुक्त हो जाता हो तो उसे द्वितीय पताकास्थानक कहते हैं।[8]

---

१. वसिष्ठः—(रामं प्रति) किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि। — बालरा. १०/३७१

२. वराप्तिः काव्यसंहारः। — द. रू. १/६४

३. रामः—सम्यक्संसारविद्याविषदमुपनिषद् भूतमर्थाद्भुतानां
ग्रन्थन्तु ग्रन्थिबन्धं वचनमनुपतत्सूक्तिमुक्ताः सुयुक्ताः।
सन्तः संतर्पितान्तःकरणमनुगुणं ब्रह्मणः काव्यमूर्त्ते-
स्तत्तवं सात्त्विकैश्च प्रथमपिशुनितं भावयन्तोऽर्चयन्तु।। — बालरा. १०/१०५

४. प्रशस्तिः शुभशंसनम्। — द.रू. १/५४

५. प्रस्तुतागन्तु भावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम्।
पताकास्थानकं तुल्यसंविधानविशेषणम्।। — द. रू. १/१४

६. यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिन् तल्लिङ्गोऽन्यः प्रयुज्यते।
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत्।। — ना. शा. २१/२६

७. सहसैवार्थसम्पत्तिर्गुणवत्युपकारतः।
पताकास्थानकमिदं प्रथमं परिकीर्तितम्।। — वही, २१/३०

८. वचः सातिशयं श्लिष्टं काव्यबन्धसमाश्रयम्।
पताकास्थानकमिदं द्वितीयं परिकीर्तितम्।। — वही, २१/३१

३. जहाँ नाटक में प्रस्तुत श्लिष्टसंवादों की प्रश्नोत्तर प्रणाली द्वारा अस्फुट और अभिप्रेत अर्थ की अभिव्यक्ति होती हो तो उसे तृतीय पताकास्थानक कहते हैं।[1]

४. जिसमें द्वयर्थ वचनों की योजना काव्य-प्रबन्ध के इतिवृत्त को उपयुक्त बताते हुये की जाय जिससे कि वे मुख्य अभिप्राय के साथ-साथ भिन्न अर्थ की भी प्रतीति कराये तो उसे चतुर्थ पताकास्थानक कहते हैं।

आचार्यों ने पताका की तरह दूर से ही सूचक होने के कारण इसको पताकास्थानक की संज्ञा दी है।[2]

आचार्य विश्वनाथ ने स्वरचित ग्रन्थ साहित्यदर्पण में पताकास्थानक के चारों प्रकारों की सत्ता को आवश्यक माना है।[3]

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में महानाटक की परिभाषा देते समय उदाहरणस्वरूप बालरामायण को उल्लिखित किया है।[4]

बालरामायण नाटक में पताकास्थानकों के प्रचलित शास्त्रीय प्रयोगों का उपयोग यद्यपि नहीं के बराबर हुआ है, फिर भी उनकी स्थिति इस प्रकार देखी जा सकती है—

प्रथम प्रकार

बालरामायण के सप्तम अङ्क में राम कठपुतलीरूपी सीता का कटा हुआ सिर

---

१. अर्थोपक्षेपणं यत्र लीनं सविनयं भवेत्।
श्लिष्टप्रत्युत्तरोपेतं तृतीयमिदमिष्यते।। ना. शा. २१/३२

२. द्वयर्थो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः।
उपन्यासः संयुतश्च तच्चतुर्थमुदाहृतम्।। ना. शा. २१/३३

३. (क) पताकास्थानकं योज्यं सुविचार्येह वस्तुनि।। सा. द. ६/४४
(ख) यत्रार्थेचिन्तितेऽन्यस्मिंस्तल्लिंगोऽन्यः प्रयुज्यते।
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत्।। वही, ६/४६
तद्भेदानाह—
(ग) सहसैवार्थसम्पत्तिर्गुणवत्युपचारतः।
पताकास्थानकमिदं प्रथमं परिकीर्तितम्।। वही, ६/४६
(घ) वचः सातिशयश्लिष्टं नानाबन्धसमाश्रयम्।
पताकास्थानकमिदं द्वितीयं परिकीर्तितम्।। वही, ६/४७
(ङ) अर्थोपक्षेपकं यत्तु लीनं सविनयं भवेत्।
श्लिष्टप्रत्युत्तरोपेतं तृतीयमिदमुच्यते।। वही, ६/४८
(च) द्वयर्थोवचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः।
प्रधानार्थान्तराक्षेपी पताकास्थानकं परम्।। वही, ६/४६

४. एतदेव यदा सर्वैः पताकास्थानकैर्युतम्।। वही, ६/२३३
अङ्गैश्च दशभिर्धीरा महानाटकमूचिरे।
एतदेव नाटकम्। यथा—बालरामायणम्। वही, ६/२२४

देखकर उसे सीता ही समझते हैं,[1] पर वास्तविकता का ज्ञान हो जाने पर उनकी उत्कृष्ट प्रयोजनसिद्धि होती है। तत्पश्चात् राम के सारिका के प्रति कहे गये वचन प्रयोजन सिद्धि के उपचारतः द्योतक हैं।[2]

द्वितीय प्रकार

बालरामायण नाटक के प्रथम अङ्क के प्रथम श्लोक में प्रकृत विषय का वर्णन करने में श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया गया है।[3] अतः द्वितीय प्रकार का पताकास्थानक है।

तृतीय प्रकार

बालरामायण में तृतीय प्रकार का पताकास्थानक कतिपय स्थानों पर द्रष्टव्य है। प्रथम अङ्क की प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है कि चुरायी गयी, अपनी स्त्री को दूसरे द्वीप से भी मैं लौटा लाऊँगा। स्त्री की चोरी होने पर पुरुषों के लिये, समुद्र लाँघना भी क्या है?[4] उपर्युक्त प्रसङ्ग में रावण द्वारा सीताहरण और राम-रावण युद्ध की भावी सूचना प्राप्त होती है।

बालरामायण के चतुर्थ अङ्क में राम द्वारा शिव धनुर्भङ्ग के पश्चात् सीता मोहवश कहती हैं कि तात्! उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्ति (बहनों) के साथ जाऊँगी[5]—यहाँ लक्ष्मणादि के विवाह की घटना का आभास सहृदय सामाजिक को हो जाता है।

छठे अङ्क में वनगमन प्रसङ्ग के पश्चात् मातलि जब दशरथ के साथ अयोध्या आता है तो विदा होते समय कहता है कि मर्त्य महाराज! अपना घर देखिये।[6] यहाँ मर्त्य महाराज पद द्वारा दशरथ की भावी मृत्यु की सूचना प्राप्त होती है तदनन्तर

---

१. रामः—(ससम्भ्रमं) कथमिदं दशकण्ठेन विलूय क्षिप्तं सीताशिरः शर्करायां भुवि पतति। तत्सत्वरमुपसृत्य स्तनतटपरिपीडनपरिचितस्पर्शे प्रसारितकरयुगजनितेऽञ्जलौ प्रतीच्छामि। (तथा कृत्वाऽवलोक्य च) हा वैदेहि!शिरः शेषा वर्तसे! बालरा. ७/पृ. २४७

२. रामः—स्वस्ति भवत्यै प्रियकारिण्यै। तत्समीहितसिद्धये साधय। वही, ७/पृ. २४६

३. प्रसत्तेर्यः पात्रं तिलकयति यं सूक्तिरचना
य आद्यः स्वादूनां श्रुतिचुलुकलेह्येन मधुना।
यदात्मानो विद्याः परिणमति यश्चार्थवपुषा
स गुम्फो वाणीनां कविवृषनिषेव्यो विजयते।। वही, १/१

४. सूत्रधारः—अपि द्वीपान्तरादेष हतां प्रत्याहरामि ताम्।
कलत्रहरणे पुंसां कियदर्णवलङ्घनम्।। वही, १/४

५. सीता—तात्! उर्मिलामाण्डवी श्रुतिकीर्तिभिः समं गमिष्यामि। वही, ४/पृ. १२३

६. मातलिः—मर्त्यमहाराज! सम्भावयस्व सदनमहमपि निबिडौजसं विडौजसमुपतिष्ठामीति। बालरा.६/पृ.१८०

राम की ये उक्ति कि पिता की आज्ञा से मैं अकेले भी ऊँचे पर्वतों से पुल बाँधकर समुद्र में खिलवाड़ करते हुये जा सकता हूँ।[1] यहाँ राम द्वारा सेतु बाँधने की भविष्यद्घटना संकेतित होती है।

चतुर्थ प्रकार

प्रथम अङ्क के नेपथ्य में कहा जाता है कि शशाङ्कमण्डल का त्याग करने वाले जो देवतागण हैं, वे राहु से व्याकुल चन्द्रमा का उल्लेख कर रहे हैं।[2]

इसी प्रकार तृतीय अङ्क के नेपथ्य में सूचित होता है कि शिवधनुष के मर्दन हेतु शरत्समय आविर्भूत हो गया। इसमें रामरूपी कमल प्रकट हो गये हैं, जिसमें विश्वामित्ररूपी आमोद है और जो लक्ष्मणरूपी हंस को आनन्द देने वाला है।[3]

उपर्युक्त दोनों प्रसङ्गों में नाटककार ने ऋतुवर्णन के माध्यम से प्रधान अर्थभूत कथानकों की भावी सूचना दी है।

उपरोक्त सम्पूर्ण विवरण से यह स्पष्ट होता है कि राजशेखर ने बालरामायण नाटक की कथावस्तु को अर्थप्रकृति, अवस्था, सन्धि और पताकास्थानक के माध्यम से शास्त्रीय रीति से पूर्णरूपेण सङ्घटित करने में अपनी प्रतिभा का बहुत ही सुन्दर रूप में प्रदर्शन किया है।

आचार्यों ने नाटकों में नाटकीय कलेवर का सुव्यवस्थित रूप इसीलिए प्रतिपादित किया है, जिससे ये नाटक स्वतन्त्र क्षेत्रों से सम्बद्ध होते हुये, मूल सिद्धान्तों के अभाव में समाज के लिये दिशाहीन और अनुपयोगी न बन जायँ।

प्रसन्नराघवम्—वस्तु-विन्यास

संस्कृत साहित्य में मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के लोकोत्तर पावनचरित पर रचे गये नाटकों में सात अङ्कों का जयदेव विरचित प्रसन्नराघवम् नाटक अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

प्रसन्नराघव के वस्तु-विन्यास के अन्तर्गत राजशेखरकृत बालरामायण की ही भाँति नाटक के विभिन्न पहलुओं पर विचार करेंगे। इन पहलुओं में कथावस्तु के प्रकार

---

१. तातादेशात् कियदिदमहो यद्वनान्ते निवासो
यस्मिन् सेव्याः प्रशमनिधयो धाम निःश्रेयसानाम्।
अप्येकाकी किमु पितृगिरा गाढगूढाचलेन्द्रै-
र्बद्ध्वा सेतुं लवणजलधौ हेलया सञ्चरामि।। बाल. रा. ६/१८

२. मुक्तहरिणाङ्कमण्डलपार्श्वप्रसरो बुधो विबुधवर्गः।
अवतीर्य राहुविधुरं नलिनीनाथं समुल्लिखति।। वही, १/१६

३. प्रकटितरामाम्भोजः कौशिकवान् सपदि लक्ष्मणानन्दी।
सुरचापदमनहेतोरयमवतीर्णः शरत्समयः।। वही, ३/१६

(आधिकारिक और प्रासङ्गिक), अर्थप्रकृतियाँ (बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य), कार्यावस्थाएँ (आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम), पञ्चसन्धियाँ (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण) तथा उनके अङ्ग और पताकास्थान को लिया गया है।

उपर्युक्त पहलुओं के आधार पर हमें दर्शाना है कि प्रसन्नराघव नाटक कहाँ तक इनकी कसौटी पर खरा उतरता है। इन विन्दुओं की परिभाषा सहित व्याख्या बालरामायण के वस्तु-विन्यास के सन्दर्भ में विस्तृत रूप से कर दी गयी है, अतः यहाँ केवल वस्तु-विन्यास के निकष को ही देना उपयुक्त होगा।

प्रसन्नराघव नाटक में राम ही फल के अधिकारी हैं, क्योंकि घोर संग्राम के बाद सीता की प्राप्ति और अयोध्या प्रस्थान कर बान्धवों का दर्शनलाभ प्राप्त कर राज्याभिषेक से अलङ्कृत होना ही नाटक का फल है, जो राम को प्राप्त है। इस प्रकार सप्तम अङ्कों में निहित राम से सम्बद्ध वृत्तान्त आधिकारिक कथावस्तु के अन्तर्गत आता है। दशरूपक के अनुसार आधिकारिक कथावस्तु का लक्षण है।[1]

अधिकारः फलस्वाम्यधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्।।

यह वृत्त मुख्य वृत्त का अनुयायी होने के कारण आधिकारिक कथावस्तु का अवयव होता है। प्रासङ्गिक इतिवृत्त का फल गौण रूप में रहता है।[2]

प्रसन्नराघव नाटक में सुग्रीव का प्रसङ्ग, जटायु का वृत्तान्त और मन्दोदरी का अपशकुन इत्यादि प्रसङ्ग आधिकारिक कथावस्तु के सहायक रूप में होने के कारण प्रासङ्गिक कथावस्तु के अन्तर्गत आते हैं।

अर्थप्रकृतियाँ

बीज

बीजनामक अर्थप्रकृति का स्वरूप है—

स्वल्पमात्रं समुत्सृष्टं बहुधा यद्विसर्पति।
फलावसानं यच्चैव बीजं तत् परिकीर्तितम्।।[3]

प्रसन्नराघव नाटक का बीज प्रथम अङ्क में सूत्रधार द्वारा श्रीराम के गुणवर्णन में ही निहित है।[4] टीकाकार डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी, पं. रामनाथत्रिपाठीशास्त्री और

१. द. रू. १/१२

२. प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः। वही, १/१३

३. ना.शा. २१/२१

४. बीजं यस्य चिरार्जितंसुचरितं, प्रज्ञा नवीनोऽङ्कुरः
काण्डः पण्डितमण्डलीपरिचयः काव्यं नवः पल्लवः।

आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी ने प्रसन्नराघव पर लिखी गयी अपनी-अपनी टीका में प्रथम अङ्क के तेरहवें पद्य में नाटक का बीज बताया है।

बिन्दु

बिन्दु अर्थप्रकृति का स्वरूप है—

प्रयोजनानांविच्छेदे यदविच्छेदकारणम्।
यावत्समाप्तिर्बन्धस्य सबिन्दुः परिकीर्तितम्।।[1]

प्रसन्नराघव नाटक में बिन्दु नामक अर्थप्रकृति का समावेश राम के अधोलिखित कथन में है। वह कहते हैं कि अमृतमय सागर के दुग्ध महातरङ्गों के समान चञ्चल कटाक्षों से यह तरलाक्षी सीता मुझे स्नान करवा रही है, सदैव ही यह उत्तम समय बना रहे अथवा ऐसा कैसे हो सकता है क्योंकि ब्रह्मा की सृष्टि संयोग-वियोग से मिश्रित है।[2]

राम के उपरोक्त कथन से पूर्व मिथिला के उपवन में सीता और राम के परस्पर दर्शनमुख का आनन्दमय वातावरण छाया हुआ था जिससे विषयवस्तु के विकास में व्यवधान उत्पन्न हो रहा था किन्तु राम के इस कथन के उपरान्त कथानक सहसा गतिशील हो उठता है।

पताका

पताका अर्थप्रकृति का स्वरूप है-

यद्वृत्तन्तुपरार्थं स्यात् प्रधानस्योपकारकम्।
प्रधानवच्च कल्प्येत सा पताकेति कीर्तिता।।[3]

प्रसन्नराघव नाटक के पञ्चम अङ्क में राम, बालि को मारकर सुग्रीव का राज्याभिषेक करके उससे अपनी मित्रता का परिचय देते हैं।[4] यहाँ सुग्रीव से मित्रता का वृत्तान्त नायक के प्रयोजन का सहायक है।

कीर्त्तिः पुष्पपरम्परा परिणतः सोऽयं कवित्वद्रुमः
किं वन्ध्यः क्रियते विना रघुकुलोत्तंसप्रशंसाफलम्।। प्रसन्नरा. १/१३

१. ना. शा. २१/२२

२. रामः—(सप्रत्याशम्) अमृतमयपयोधिक्षीरकल्लोललोलैः
स्नपयति तरलाक्षी यत्र मां नेत्रपातैः।
अपि भवतु सदाऽयं सन्मुहूर्तः.....
(विमृश्य सविषादम्)
......कुतो वा? मधुरबिधुरमिश्राः सृष्टयो हा! विधातुः।। प्रसन्नरा. २/२८

३. ना. शा. २१/२३

४. सहेलं हत्वैनं हरिणमिव हैमं रघुपतिः कपीनां साम्राज्ये प्रणतमभिषिञ्चन् रविसुतम्।
अपि ध्वंसात् सख्युर्नृपतिमपचक्रे पलभुजामपि प्रीतं चक्रे निजकुलगरिष्ठं दिनकरम्।।
वही, ५/५०

प्रकरी

प्रकरी अर्थ प्रकृति का स्वरूप है।

प्रकरी च प्रदेश भाक्।[1]

प्रसन्नराघव नाटक के पञ्चम अङ्क में जटायु का वृत्तान्त[2] रावण द्वारा सीता के अपहरण की सूचना देता है और सप्तम अङ्क में मन्दोदरी के अपशकुन का वृत्तान्त रावण को भावी घटना की सूचना देता है। मन्दोदरी कहती है कि महाराज दूसरा भी कारण है। आज मैनें महाराज के शकुन विचारने के लिये अपनी एक दासी को पर्वत की चोटी के वन के मध्य में स्थित शबर ग्राम में भेजा था। उसने अपने घर के पास ही निवास करने वाले सिंह के बच्चो को प्यार करती हुई किसी शबर स्त्री के इस प्रकार के वचन को सुना—हे सिंह! तुम गजराज की पराजय मात्र से गर्वीले मत बनो। शरभ का बच्चा पर्वत से दुर्गम इस भू-भाग पर आ गया है।[3]

उपर्युक्त दोनों प्रसङ्ग प्रकरी अर्थप्रकृति के अन्तर्गत आते हैं।

कार्य

कार्य अर्थप्रकृति का स्वरूप है-

यदाधिकारिकं वस्तुसम्यक्प्राज्ञैः प्रयुज्यते।
तदर्थे यस्समारम्भस्तत् कार्यं परिकीर्तितम्।।[4]

प्रसन्नराघव नाटक में राम द्वारा शिवधनुष भङ्ग[5] मातृज्ञा को शिरोधार्य करके

---

१. द. रू. १/१३

२. ततः शैलशिखराधिवासिना विहङ्गराजेन जटायुनापन्थानमवरुध्येदमुक्तो राक्षसेन्द्रः—
आःपापिन्! पश्यतो मे,रघुतिलकवधूं चोरवृत्त्याऽपहर्तुं
सीतां शीतांशुलेमिव गिरिशशिरः शायिनीमुद्यतोऽसि।
एषच्छित्वा शिरांसि प्रखरनखमुखैर्दीप्तचूडामणीनि
त्वामद्याहं गरुत्मानुरगमिव सुधाकाङ्क्षिणं संहरामि।। वही ५/४६

३. मन्दोदरी देव! अन्यदप्यस्ति कारणम्। अद्य हि मया देवस्य शकुननिरूपणार्थं गिरिशिखर-गहनगर्भस्थितां शवरपल्लीं प्रस्थापिता निजपरिचारिका। तया च कस्या अपि शबरकुटुम्बिन्या निजगृहपर्यन्तवासिन केसरिकिशोरकं लालयन्त्या ईदृशं वचनमाकर्णितम्—
मा भव नागपतेः परिभवमात्रेण गर्वनिर्व्यूढः।
वसुधामिमां गिरिसङ्कटां मृगेन्द्र! शरभस्य नन्दनः प्राप्तः।। प्रसन्नरा. ७/१७

४. ना. शा. २१/२५

५. लक्ष्मणः—भगवन्! अत्यद्भुतं वर्त्तते नन्वयम्—
भिन्दन्निद्रांमुरारेः, सकल भुजभृतां म्लानयञ्शौर्यदर्पं
छिन्दन् दिक्कुम्भिकर्णाञ्चलचलनकलां, कम्पयन् कूर्मराजम्।
आर्यश्लाघागभीरः प्रलयजलधरध्वानधिक्कारधीर
ष्टाङ्कारः कृष्यमाणत्रिपुरहरधनुर्भङ्गभूराविरस्ति।। प्रसन्नरा. ३/४५

राम का वनगमन[१], शूर्पणखा का नाक कर्तन[२], रावण द्वारा सीताहरण[३], बालिका वध, सुग्रीव से मित्रता[४], हनुमान द्वारा सीता की खोज तत्पश्चात् रावण का वध[५] करके सीता की पुनः प्राप्ति[६] इत्यादि प्रसङ्ग कार्य नामक अर्थप्रकृति के अन्तर्गत आयेंगे।

कार्यावस्थायें

आरम्भ

इस का लक्षण है—

औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।[७]

प्रसन्नराघव नाटक के प्रथम अङ्क में दाल्भ्यायन कहते हैं कि राजा जनक भी सब लोगों के नेत्रों के कमल के तुल्य श्रेष्ठ पुरुष में अपनी कन्या को समर्पित करने की इच्छा करके हमारे गुरु याज्ञवल्क्य जी से उपदिष्ट ब्रह्मविद्या और कुलक्रम से आयी हुयी राजलक्ष्मी में भी आदर शिथिल कर रहे हैं।[८] उपर्युक्त प्रसङ्ग में सीता के विवाह

---

१. इतीदं कैकेय्या वचनमधिगम्याऽऽकुलमतेः।
पितुः पादौ नत्वा मुदितहृदयोऽसौ वनमगात्।। प्रसन्नरा. ५/४

२. नक्तञ्चरेन्द्रभगिनीसुकुमारनासानिर्मुक्तरक्तलवलिप्तशितैकधारः।
उत्कण्ठते कठिनराक्षसकण्ठजानां पानाय कर्दमसृजामसृजां कृपाणः।। वही, ५/३४

३. हा राम! हा रमण! हा जगदेकवीर! हा नाथ! हा रघुपते! किमुपेक्षसे माम्।
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्तीमादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम।। वही, ५/४५

४. सहेलं हत्वैनं हरिणमिव हैमं रघुपतिः
कपीनां साम्राज्ये प्रणतमभिषिञ्चन्रविसुतम्।
अपि ध्वंसात् सख्युर्नृपतिमपचक्रेपलभुजा-
मपि प्रीतं चक्रे निजकुलगरिष्ठं दिनरकरम्।। वही, ५/५०

५. (क) हनुमान तारापतेरनुचरो रघुनन्दनस्य
दूतः सुतोऽस्मि मरुतः प्रथितो हनूमान्।
त्वां हन्तुमुद्यतवतो दशकन्धरस्य
न्यस्तं करेनिभृतमक्षशिरो मयैव।। वही, ६/३६

(ख) विकच कुसुमस्तोमाकीर्णे परागविभूषितः
शशिमणिशिलातल्पेऽनल्पे सुलीलमशेत यः।
अयमयमसौ रोषारूढे क्षणं रघुनन्दने
भुवि दशमुखः शेते धूलिच्छटापरिधूसरः।। वही, ७/५२

६. उद्दामहेतिवलयैः परिदीपिताशं पश्यप्रवश्यि जनकेन्द्रसुता हुताशम्।
प्रत्युद्गता समधिकां द्युतिमावहन्ती प्रातर्मयूखकलिकेव दिवाकरस्य।। वही, ७/५३

७. द. रू. १/२०

८. दाल्भ्यायनः—(साकूतम्) सा धूक्तमनेन। तथाहि—भूपतिरयं जनकोऽपि सकललोकलोचनार-विन्दे क्वचिदपि पुरुषप्रकाण्डे निजां कन्यां समर्पयितु कामोऽस्मद्गुरूपदिष्टायां ब्रह्मविद्यायां कुलक्रमागतायां राजलक्ष्म्यां च शिथिलादरः संवृत्तः। वही, १/पृ. ३४

के लिये जनक की उत्सुकता का वर्णन ही आरम्भ नामक कार्यावस्था की प्रतीति कराता है।

यत्न

यत्न का स्वरूप है—

प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्त्वरान्वितः।[1]

प्रसन्नराघव नाटक के तृतीय अङ्क में जनक विश्वामित्र को बताते हैं कि शिवधनुष से जिनके बाहुबल दूर हो गये हैं ऐसे ये राजागण हैं। तब विश्वामित्र राम से कहते हैं कि वत्स रामभद्र! तब तुम इनके सामने हम लोगों के कौतूहल को पूर्ण करो।[2]

विश्वामित्र के उपर्युक्त आदेश में यत्न नामक कार्यावस्था का समावेश है, क्योंकि राम गुरु की आज्ञा को सुनते ही शिवधनुष भङ्ग करने के लिये निकल जाते हैं और यहीं से सीता को प्राप्त करने के लिये राम का यत्न आरम्भ हो जाता है।

प्राप्त्याशा

इसका का स्वरूप है—

उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्ति सम्भवः।[3]

प्रसन्नराघव नाटक के चतुर्थ अङ्क में परशुराम द्वारा राम को आशीर्वाद[4] देने से और पञ्चम अङ्क में हनुमान् द्वारा सागर लङ्घन का कार्य[5] होने से फल प्राप्ति की सम्भावना बढ़ जाती हैं। अतः यहाँ प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था का समावेश है।

नियताप्ति

नियताप्ति का लक्षण है—

अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता।[6]

---

१. द. रू. १/२०

२. विश्वामित्रः—वत्स रामचन्द्र! तदेषामेव पश्यतां कौतुकमस्माकं पूरय। वही, ३/पृ. १८१

३. वही, १/२१

४. जामदग्न्यः—यश पूरं दूरं तनु, सुतनुनेत्रोत्पलवनी-
तमस्तन्द्राचण्डातप! तप सहस्राणि शरदाम्।
इयं चास्तां युष्मच्छरशमितलङ्केश्वरशिरः
श्रितोत्सङ्गा नन्दतसुरनरभुजङ्गा त्रिजगती।। प्रसन्नरा. ४/४८

५. सागर—अये! कोऽयं शैलः स्फुरदमितगव्यूतिमहिमा
हिमाद्रिर्विन्ध्यो वा लघुतरगतिर्लङ्घयति माम्।। वही, ५/५३

६. द. रू. १/२१

प्रसन्नराघव नाटक के सप्तम अङ्क में वानरों द्वारा सेतुबन्ध के पश्चात्[1] राम के सेना सहित लङ्का में प्रवेश[2] करने से सीता की प्राप्ति निश्चित हो जाती है। अतः यहाँ पर नियताप्ति नामक कार्यावस्था है।

फलागम

फलागम का स्वरूप है।

साक्षादिष्टार्थसम्भूति र्नायकस्य फलागमः।[3]

प्रसन्नराघव नाटक के सप्तम अङ्क में राम द्वारा रावण के वध[4] के अनन्तर राम सीता की प्राप्ति[5] होती हैं। यहाँ राम को समग्र फल की प्राप्ति होने से फलागम नामक कार्यावस्था है।

सन्धियाँ

मुखसन्धि

मुख सन्धि का लक्षण है—

मुखं बीज समुत्पत्तिर्नानार्थसम्भवा।[6]

प्रसन्नराघवम् नाटक के प्रथम अङ्क और द्वितीय अङ्क के प्रथम श्लोक तक मुख सन्धि का समावेश है।

प्रथम अङ्क में सूत्रधार कहता है कि मृणाल के सदृश भुजाओं वाली, पूर्णचन्द्र के समान मुखमण्डल वाली, विकसित कमलों के समान नेत्रों से सम्पन्न अपनी प्रिया के सदृश, दूसरों से अपहृत कीर्ति को पाने के लिए कौन उत्तम आरम्भ नहीं करता है।[7] उपर्युक्त प्रसङ्ग में उपक्षेप नामक सन्ध्यङ्ग है।[8]

---

१. स एष कपिकुलोन्मूलितशैलशिखरनिर्मितः काकुत्स्थकुल कीर्तिप्रसक्ति प्रबन्धाः सेतुबन्धः। प्रसन्नरा. ७/पृ. ३७२

२. एषामयं रामचमूचराणां दर्पोद्धतानां कपिकुञ्जराणाम्।
नवोद्गतानामिव नीरदानां कोलाहलः कोऽपि समुज्जिहीते।। वही, ७/१३

३. विकचकुसुमस्तोमाकीर्णे परागविभूषितः शशिमणिशिलातल्पेऽनल्पे सलीलमशेतयः।
अयमयमसौ रोषारूढे क्षणं रघुनन्दने भुवि दशमुखः शेते धूलिच्छटापरिधूसरः।। वही, ७/५२

४. उद्दामहेतिवलयैः परिदीपिताशं पश्य प्रविश्य जनकेन्द्रसुता हुताशम्।
प्रत्युद्गता समधिकां द्युतिमावहन्ती प्रातर्मयूखकलिकेव दिवाकरस्य।। वही, ७/५३

५. द. रू. १/३६

६. वही, १/२४

७. कीर्तिं मृणालकमनीयभुजामनिद्रचन्द्राननां स्मितसरोरुहचारुनेत्राम्।
ज्योत्स्नास्मितामपहृतां दयितामिव स्वां लब्धुं न कः परमुपक्रममातनोति।। प्रसन्नरा. १/६

८. बीजन्यास उपक्षेपः। द. रू. १/२७

सूत्रधार कहता है कि—मनोहरस्वरूप प्रसादादि गुणों से युक्त दूसरे व्यक्ति की रचना अथवा सुन्दर मुख और उदार चरित्र वाली किसी दूसरे व्यक्ति की स्त्री को चुराकर समुद्र के दूसरे किनारे पर पहुँच जाने के बाद भी कौन सा पुरुष सुख से रह सकता है?[१] सूत्रधार के उपर्युक्त कथन में परस्त्री अपहरणकर्ता के विनाश का वर्णन करके नाटककार अपनी प्रिया को पाने के लिए प्रयास करने वाले व्यक्ति के उद्योग के उत्कर्ष का प्रकाशन करता है, अतः परिकर सन्ध्यङ्ग है।[२]

सूत्रधार द्वारा कहा जाता है कि जिन्होंने प्रिया के कुचकलशों को आनन्द के साथ क्षत-विक्षत किया है वे लोग मदोन्मत्त गज के मस्तक पिण्ड पर क्या वाणों से आघात नहीं करते?[३] यहाँ यह सिद्ध होता है कि अपनी प्रिया को पाने के लिये मनुष्य दुष्कर कार्य भी कर सकता है यदि उसको शत्रु के मतवाले हाथियों का सामना भी करना पड़े तो वह घबराता नहीं है बल्कि बाणों से उनको मार गिराता है। यहाँ परिन्यास मुखाङ्ग का समावेश है।[४]

चित्रपट में सीता को देखकर रावण उसके सौन्दर्य की अनेक प्रकार से प्रशंसा करता है।[५] अतः विलोभन मुखाङ्ग है।[६]

मञ्जीरक कहता है कि इस समय मेरा मनोरथ अङ्कुरित हो गया है। देवि

---

१. सुललितवदनामुदारवृत्तां कृतिमथवा युवतिं परस्य हृत्वा।
तटमपि परमर्णवस्य गत्वा वद कतरः सुखभाजनं जनः स्यात्।। प्रसन्नरा. १/१७

२. तद्बाहुल्यंपरिक्रिया। द. रू. १/२७

३. यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिता-
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः? वही, १/१८

४. तन्निष्पत्तिः परिन्यासः। वही, १/२७

५. पुरूषः (रावणः)

(क) तडिल्लेखा नेयं विलसति परं सौधशिखरे
वसन्त्याः कस्याश्चित् कनकरुचिरागात्रलतिका।
अपीदं नोन्मज्जत् कुवलयवनं मीनतरलं
परं तस्या एव स्फुरति नयनालोकललितम्।। प्रसन्नरा. १/३५

(ख) राजीव! जीवसि सुधा, न सुधाकर! त्व-
मस्याः समः पदनखस्य, कुतो मुखस्य?
अग्रे दृशोर्मृगदृशः कतमः कुरङ्ग-
स्तत्खञ्जन! त्वमपि किं जनरञ्जनाय।। वही, १/३६

(पुनः सरभसम्)

(ग) कदला कदली, करभः करभः, करिराजकरः करिराजकरः।
भुवनत्रितयेऽपि विभर्ति तुलामिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः।। वही, १/३७

६. गुणाख्यानं विलोभनं। द. रू. १.२७

मैत्रेयी सिद्धयोगिनी और त्रिकालदर्शिनी है। वह कभी मिथ्या चित्र नहीं लिखती है।[१] यहाँ नायक और नायिका के विवाहसम्बन्ध से मैत्रेयी के सिद्धयोगिनी होने और त्रिकालदर्शिनी होने, पर इन दो रूपों में तर्क द्वारा समर्थन किया गया है। अतः युक्ति अङ्ग है।[२]

रावण नेपथ्य से उद्‌भूत हुई महाराज जनक की प्रतिज्ञा को सुनता है कि दैत्य, देव, निशाचर, सर्प, मनुष्य, किन्नर, सिद्ध और चारण इनमें से कोई भी इस धनुष को उठाये, तो वह मेरी पुत्री के साथ पाणिग्रहण कर ले।[३] तब रावण को आशा बँधती है कि मैं अपने बाहुबल से शिवधनुष को अवश्य ही तोड़ दूँगा और निश्चित ही सीता मेरी पत्नी बन जायेगी। यहाँ सुखद आशा होने के कारण प्राप्ति मुखाङ्ग है।[४]

नूपुरक और मञ्जीरक जब हजार बाहुओं वाले दैत्य बाणासुर को सामने आता हुआ देखते हैं तो मञ्जीरक कहता है कि हाय! यह दूसरा उपस्थित हो गया (विचारकर) अथवा विष का विष ही औषध होगा।[५] दैत्य बाणासुर को देखकर दूसरे अनर्थ की आशा से मञ्जीरक दुःखी है। साथ ही उसके हृदय में यह भाव भी उठता है कि सम्भवतः रावणरूपी विपत्ति का यह समाधान बन जाय, क्योंकि विष की ओषधि विष ही होता है। अतः यहाँ विधान अङ्ग है।[६]

रावण जब **तेऽमी भुजा मम निजाः प्रकटीभवन्तु**[७] कहता हुआ कृत्रिम वेष को छोड़कर अपने वास्तविक रूप में सभी के सामने प्रस्तुत होता है तो उसे देखकर नूपुरक के मुख से निकल पड़ता है कि मित्र यह कौतुक देखो कि एक मनुष्य के भी दश मस्तक हैं।[८] मनुष्यों के दशमस्तक होना आश्चर्य की बात है। अतः यहाँ परिभावना अङ्ग है।[९]

मञ्जीरक कहता है कि हे राजाओं! सुनिए-सुनिए, इस स्वयंवर में शंकर भगवान

---

१. मञ्जीरकः इदानीमुद्भिन्नो मम मनोरथाङ्कुरः। देवी मैत्रेयी सिद्धयोगिनी कालत्रयदर्शिनी सा नालीकमालिखति। प्रसन्नरा. १/पृ. ५६
२. सम्प्रधारणमर्थाना युक्तिः। द. रू. १/२८
३. असुरसुरनिशाचरोरगाणामपि नरकिन्नरसिद्धचारणानाम्।
नयमति यदि कोऽपि चापमेतद् मम दुहितुः स करग्रहं तनोतु।। प्रसन्नरा. १/५३
४. प्राप्तिः सुखागमः। द. रू. १/२८
५. मञ्जीरकः—तन्नूनमयं बाणासुरो भविष्यति। हन्त भोः! तदिदमनर्थान्तरम् (विमृश्य) अथवा विषस्य विषमौषधं भविष्यति। प्रसन्नरा. १/पृ. ६६
६. विधानं सुःखदुःखकृत्। द. रू. १/२८
७. प्रसन्नरा. १/४३
८. नूपुरकः—वयस्य! पश्य पश्य कौतूहलं यदेकस्यापि मानुषस्य दशमस्तकानि। वही, १/पृ. ६५
९. कौतूहलोत्तरावेगो भवेत्तु परिभावना। ना. शा. २१/७३

के भयङ्कर धनुष में बँधी हुई प्रत्यञ्चा को जो कोई भी वीर कर्णोपर्यन्त खींचेगा शब्दायमान काञ्ची से मुखर कटि प्रदेश वाली राजकुमारी सीता उसके कान और नेत्रों के लिए उत्सव हो जायेगी[1]। यहाँ प्रिया कि प्राप्ति के लिये उत्तम आरम्भ रूपी बीज का उद्भेदन होने के कारण उद्भेद नामक अङ्ग है।[2]

अरे! आकाश में यह किसका करुण क्रन्दन सुनाई पड़ रहा है। निश्चित ही किसी के बाणाघात से पीड़ित रोता हुआ आकाशमार्ग से चलने वाला मारीच होना चाहिए। इसको आश्वस्त करता हूँ।[3] रावण के उपरोक्त कथन के द्वारा ताड़का-सुबाहु के वध की व्यञ्जना करायी गयी है, अतः करण अङ्ग है।[4]

प्रतिमुख

प्रतिमुख सन्धि का लक्षण है—

लक्ष्यालक्ष्तयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश।।[5]

प्रसन्नराघव नाटक के द्वितीय और तृतीय अङ्क में प्रतिमुख सन्धि का समावेश है।

नीलपत्रों के सदृश श्यामवर्ण, शङ्कर के शेखर में भासमान चन्द्र के सदृश कोमल और कामदेव के सौन्दर्य को भी तिरस्कृत करने वाला यह कौन पुरुष मेरे नेत्रों को आनन्द विभोर कर रहा है।[6] सीता के उपरोक्त कथन में राम के प्रति उनका असीम प्रेम प्रकट हो रहा है, इसी प्रसङ्ग में सखी द्वारा प्रश्न पूछने पर कि इसका चित्त कहाँ

---

१. आकर्णान्तं त्रिपुरमथनोद्दण्डकोदण्डनद्धां
मौर्वीमुर्वीवलयतिलकः कोऽपि यःकर्षतीह।
तस्याऽऽयान्ती परिसरभुवं राजपुत्री भवित्री
कूजत्काञ्चीमुखरजघना श्रोत्रनेत्रोत्सवाय।। प्रसन्नरा. १/२६

२. बीजार्थस्य प्ररोहो य उद्भेदः स तु कीर्तितः। ना. शा. २१/७४

३. रावणः—(कर्णं दत्वा) अये? कस्याऽयमाक्रन्दः श्रूयते नभसि?
(निपुणं निरुप्य) नूनमनेन कस्यचिन्नाराचपीडितेन कठोरमाक्रन्दता गगनपथचारिणा मारीचेन भवितव्यम्। तदेनमाश्वासयामि तावत् (इति निष्क्रान्तः)। प्रसन्नरा. १/पृ. ८५

४. करणं प्रकृतारम्भः। द. रू. १/२६

५. वही, १/३०

६. सीता (विलोक्य, सकौतुकम्)—
विकसितपेशलोत्पलपलाशपुञ्जश्यामलो
महेशसौम्यशेखरस्फुरत्सोम-कोमलः।
लतागृहे कोऽयमनङ्गरूप-खण्डनो
विलोचनयोर्ददाति मे सुखं शिखण्डमण्डनः।। प्रसन्नरा. २/२१

पर है?[1] सीता अपने राम विषयक प्रेम को मर्यादा का समुचित पालन करते हुए प्रकट करती हैं। अतः यहाँ विलास अङ्ग है।[2]

राम-सीता प्रणय प्रसङ्ग वर्णन में राम कहते हैं कि ब्रह्मा की रचनायें संयोग और वियोग से मिश्रित होती हैं।[3] यह दार्शनिक विचार आते ही एक क्षण के लिये राम के हृदय में सीता के प्रति निर्वेद भाव आ जाता है। अतः यहाँ अरति होने के कारण विधूत अङ्ग है।[4]

राम खेदपूर्वक कहते हैं कि सुन्दरी नेत्रमार्ग से ओझल हो गयी। फिर आशापूर्वक कहते हैं, दिन में अदृश्य चाँदनी रात में जैसे चकोरों के सामने आविर्भूत होती है उसी तरह यह सीता मेरे नेत्रों में प्रकट हो।[5]

सीता और उसकी सखी के मध्य परिहासपूर्ण वार्तालाप होता है। सखी कहती है कि राजकुमारि! देखिए! यह वासन्तीलता स्वयं ही आम्रवृक्ष को आलिङ्गन करने के लिये आगे बढ़ रही है तत्पश्चात् सीता कहती है कि (प्रणयक्रोध के साथ) अरी झूठ बोलने वाली! मैं इस समय तेरा सामीप्य छोड़कर अन्यत्र चली जाती हूँ।[6]

यहाँ सीता और सखी के मध्य परिहासपूर्ण वचनों का उपयोग होने के कारण नर्म अङ्ग है[7] तदनन्तर सीता और सखी के मध्य परस्पर वचनों के प्रयोग द्वारा[8] सीता

---

१. सखी क्व पुनश्चित्तमस्याः? — प्रसन्नरा. २/पृ. ११७

२. समीहा रतिभोगार्था विलास इति कीर्तितः। — ना. शा. २१/७६

३. रामः (सप्रत्याशम्)—
अमृतमयपयोधिक्षीरकल्लोललोलैः स्नपयति तरलाक्षी यत्र मां नेत्रपातैः।
अपि भवतु सदाऽयं सन्मुहूर्त्तः---
(विमृश्य सविषादम्) ......कुतो वा?
मधुरविधुरमिश्राः सृष्टयो हा! विधातुः।। — प्रसन्नरा. २/२८

४. विधूतं स्यादरतिः। — द. रू. १/३३

५. रामः—(सविषादम्) कथं नयनपथमतिक्रान्तैव कान्ता?
(पुनः सप्रत्याशम्)
अप्याविरस्तु भूयोऽपि मम लोचनयोरियम्।
निवसेऽन्तर्हिता नक्तं चन्द्रिकेव चकोरयोः।। — वही, २/३०

६. सखी—भर्तृदारिके! पश्य! इयमसौ वासन्ती लता स्वयमेव सहकारपोतमालिङ्गितं पुरः सरति।
सीता—(सप्रणयकोपम्) अये अलीकजल्पिनि। इदानीं तव परिसरं परिहृत्यान्यत्र गमिष्यामि। — वही, २/पृ.११४-११५

७. परिहासवचो नर्म — द. रू. १/३३

८. सखी—(स्वगतम्) कथमियं लज्जते? तदन्यतो नयामि। (प्रकाशम्)
कथमद्यापि हृदयं न मुञ्चति ते प्रणयकोपः?
सीता—(स्वगतम्) कोपमुद्दिश्यानया भणितम्, न पुनरिमम्।

का राम के प्रति प्रेम प्रकट होता है। अतः नाटक के वीज की सहायता होने के कारण प्रगमन अङ्ग है।[१]

विश्वामित्र जनक को बताते हैं कि मुझसे धनुर्विद्या सीखकर अपने बाणों द्वारा सुबाहु-ताड़कादि राक्षस समूहों को मारकर राम ने मुझे यज्ञ रक्षा रूप गुरुदक्षिणा प्रदान की है।[२] विश्वामित्र के उपरोक्त कथन से राम का अद्वितीय पराक्रम प्रकट होता है, परन्तु जनक राम की वीरता पर सन्देह करते हुये विश्वामित्र को समझाते हैं।[३] तत्पश्चात् विश्वामित्र कहते हैं कि मैं इसीलिये राम को आज्ञा देता हूँ। वत्स उठो, शिवधनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने में निपुणता दिखाकर हमें प्रसन्न करो।[४] विश्वामित्र के उपर्युक्त कथन द्वारा नष्ट वीज का पुनः अन्वेषण होता है। अतः यहाँ परिसर्प अङ्ग है।[५]

विश्वामित्र जनक से कहते हैं कि मुझे शिवधनुष देखने का अत्यधिक कौतूहल है, इसलिये उसे लाने के लिये पुरुषों को आज्ञा दीजिये अथवा औरों का क्या प्रयोजन है? रामभद्र को ही आज्ञा दीजिये।[६] तब जनक उनको समझाते हैं कि क्या आप नहीं जानते हैं कि यह वह दुर्ग्राह्य हिमालय पर्वत से निर्मित धनुष है जिसमें सर्पराज प्रत्यञ्चा और भगवान विष्णु बाण बने थे, जो शिव के भुजदण्डों से नत होकर भी संसार के अन्य धनुषों में उन्नत हो गया था और त्रिपुराऽसुर की सुन्दरियों के अश्रुजल की वृष्टि

(प्रकाशम्) हला! कथं तुभ्यं कोपिष्यामि। केवलमन्यचित्ततया न सम्भावितासि।
सखी—क्व तर्हि दत्तचित्तासि?
सीता—आरामे।
सखी—(विहस्य) अहो! ते चातुर्यम्, यत् आकारप्रकटनेनैवाकारगुप्ति कृतत्यसि।

१. उत्तरा वाक्प्रगमनम्। द. रू. १/३४

२. विश्वामित्रः—
प्राप्य चापनिगमानितः क्रमात् सम्प्रताप्य विशिखैर्निशाचरान्।
अस्मदीयमखरक्षणक्रियादक्षिणेन गुरुदक्षिणीकृता।। प्रसन्नरा. ३/३३

३. जनकः—(विमृश्य! निःश्वस्य च) भगवन्! अस्त्येतत्, किन्तु—
मारीचमुख्यरजनीचरचक्रचूडा
चञ्चन्मरीचिचयचुम्बितपादपीठः।
अत्राभवद्विफलवाहुवलावलेपो
वीरः शशाङ्कमुकुटाचलचालनोऽपि।। वही, ३/३४

४. विश्वामित्रः—किमेतावता? नन्वत एव राममादिशामि (रामं प्रति) वत्स! उत्तिष्ठ! कुमुदिनीकान्तकलाकिरीटकार्मुकरोपणप्रवीणतया सम्प्रीणयास्मान्।

५. दृष्टनष्टानुसर्पणम्। द. रू. १/३२

६. विश्वामित्रः—
भवतु! राजर्षे साधुस्मारितोऽस्मि। अतीव मे कौतुकं वृषभकेतुकार्मुकालोकने। तेन तदानयनायादिश्यन्तां पुरुषाः। अथवा किमन्यैः? रामभद्र एवादिश्यताम्। वालरा. ३/पृ. १६६

के लिये शिवधनु होता हुआ भी इन्द्रधनु के सदृश बन गया था।[1] जनक का उपरोक्त कथन राम के शिवधनुष भङ्ग में व्यवधान उत्पन्न करता है। अतः निरोध अङ्ग है।[2] इसके अतिरिक्त उपर्युक्त प्रसङ्ग में विशिष्ट वाक्यों द्वारा बीजोद्घाटन होने के कारण यहाँ पुष्प अङ्ग का भी समावेश है।[3]

विश्वामित्र कहते हैं कि लाने के लिये ही नहीं झुकाने के लिये भी आज्ञा देता हूँ, (राम से) वत्स यत्न करो।[4] यह मारीच को मारने की क्रिया में चतुर सुबाहु के निवारण का साधन और ताड़का के आघात का साधन धनु लक्ष्मण के हाथ में दे दो।[5] यहाँ विश्वामित्र जनक को यह बताने का प्रयास कर रहे हैं कि जब राम ने राक्षस समुदाय को मार गिराया तो उनके लिये धनुष तोड़ना कठिन नहीं है। अतः उपन्यास अङ्ग है।[6]

भार्गव मुनि द्वारा जनक के प्रति कहा गया कथन[7] वज्र के समान कठोर होने के कारण वज्र अङ्ग है।[8]

गर्भ सन्धि

गर्भसन्धि का लक्षण है—

गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।[9]

प्रसन्नराघव के चतुर्थ और पञ्चम अङ्क में गर्भ सन्धि का समावेश है।

---

१. जनकः—न जानासि किम्?
एतत्तद् दुर्विगाहं तुहिनगिरिमयं कार्मुकं, यत्र जज्ञे
मौर्वी दर्वीकराणां पतिरुदधिसुतानायकः सायकश्च।
दोर्दण्डैश्चन्द्रमौलेर्नतमपि यदभूदुन्नतं कार्मुकाणां
वाष्पाम्भोवृष्टये च त्रिपुरमृगदृशमिशमप्यैन्द्रमासीत्।। बाल. रा. ३/३०

२. हितरोधो निरोधनम्। द. रू. १/३४

३. पुष्पं वाक्यं विशेषवत्। वही, १/३४

४. विश्वामित्रः—न केवलमानयनाय, किन्त्वानमनाय (रामं प्रति) वत्स! बध्यतां परिकरः। बालरा.३/पृ. १७१

५. इदं च—मारीचमारीचतुरं सुबाहोरपवारणम्।
न्यस्यतां लक्ष्मणकरे ताटकाताडनं धनुः।। वही, ३/३२

६. उपन्यासस्तु सोपायम्। वही, १/३५

७. मुनिः—कस्मैचिद्देहि कन्यां नरपतिशिशवे, दीर्घमायुर्लभस्व
व्यावर्त्तस्वाऽप्रियान्नः पुरमथन धनुः कर्षणालापपापात्।
नो चेदन्योऽस्त्युपायस्तव कलुषमसीपङ्कसङ्क्षालनाया
मस्मद्विस्तारिधाराञ्चलबहलपयः पूरदूरावगाहः।। बालरा. ३/३८

८. वज्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम्। द. रू. १/३५

९. वही, १.३६

लक्ष्मण परशुराम के बारे में अनुमान लगाते हुये कहते हैं कि ये वीर और शान्तरस के परिणाम हैं क्या?[1] यहाँ अनुमान अङ्ग है।[2]

परशुराम कहते हैं कि बालिका यह सीता मेरे अस्त्र से वैधव्यदीक्षा पाने योग्य नहीं है (फिर विचार कर, क्रोध के साथ) ओह! रेणुका का कण्ठशत्रु यह मेरा परशु अभी क्यों शान्त रह रहे हैं।[3] यहाँ परशुराम के ये वाक्य उनके हृदय के करुणा, विवेक, क्रोध इत्यादि अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करते हैं, अतः रूप सन्ध्यङ्ग है।[4]

भार्गव क्रोधपूर्ण वचनों का प्रयोग राम के प्रति करते हुये कहते हैं कि शिवधनु को तोड़ने से पातकयुक्त। हे राम! कठोर नोक वाला, सीता के पाणिग्रहण का प्रतिकूल और निर्दय यह परशु तुम्हारे ही गले पर पहले प्रवेश करे।[5] यहाँ क्रोध का समावेश होने के कारण तोटक सन्ध्यङ्ग है।[6]

राम कहते हैं कि कण्ठ में हार प्रवेश करे या तीक्ष्ण धार वाला परशु प्रवेश करें। स्त्रियों के नेत्रों में कज्जल रहे या अश्रु निवास करें। हम इस लोक में चिरकाल तक सुखपूर्वक रहें या यमराज के मुख का दर्शन करें, और भी जो हो सो हो, परन्तु हम रघुवंशी ब्राह्मणों में शौर्य का अवलम्बन नहीं करेंगे।[7] यहाँ तोटक अङ्ग के विपरीत वचनों का प्रयोग होने के कारण अधिबल सन्ध्यङ्ग का समावेश है।[8]

परशुराम अपने परशु की प्रशंसा करते हुये कहते हैं कि लोहू, हड्डी और केशों

---

१ लक्ष्मणः—(सकौतुकम्)
मौर्वी धनुस्तनुरियं च विभर्ति मौञ्जीं बाणाः कुशाश्च विलसन्ति करे, सितायाः।
धारोज्ज्वलः परशुरेष कमण्डलुश्च तद्वीरशान्तरसयोः किमयं विकारः?। प्रसन्नरा. ४/१५

२. अध्यूहो लिङ्गतोऽनुमा। द. रू. १/४०

३. भार्गवः—(पुनः सानुक्रोशम्) बाला वैधव्यदीक्षां जनकनृपसुता नार्हतीयं मदस्नात् (पुनर्विचिन्त्य, सामर्षम्)
आः! शान्तो मे कुठारः कथमयमधुना रेणुका कण्ठशत्रुः।। वही, ४/१८

४. रूपं वितर्कवद्वाक्यम्। वही, १/३६

५. भार्गवः—हे राम! कामरिपुकार्मुकमर्मघात
सञ्जातपातक। तवैष कठोरधारः।
सीताकरव्यतिकरप्रतिकूलबन्धुः
कण्ठं पुरा विशतु निष्करुणः कुठारः।। प्रसन्नरा. ४/२३

६. संरब्धं तोटकं वचः। द. रू. १/४०

७. रामः—हारः कण्ठं विशतु यदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः
स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु वा कज्जलं वा जलं वा।
सम्पश्यामो ध्रुवमिव सुखं प्रेतभर्त्तुर्मुखं वा
यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः।। वही, ४/२३

८. कपटेनातिसन्धानं ज्ञेयन्त्वधिवलं बुधैः। ना. शा. २१/८८

से चारों ओर व्याप्त करके जिस परशु ने दोनों प्रकारों से पृथ्वी को त्रिवर्णा बना दिया।[1]

पुनः कहते हैं कि जिसके संग्रामभूमि में प्राप्त होने पर दुर्वार धाराञ्चल से चूर्णित क्षत्रिय तरुणों के कण्ठों के रुधिरों से भूमि धूलि से रहित हो गयी। युद्ध निहित वैसे वीरवरों को स्वयं वरण करने में तत्पर देवकुमारियों के क्रीड़ाकमलों की मालाओं के परागों से स्वर्ग ही व्याप्त हो गया।[2] यहाँ परशुराम के उपरोक्त वाक्यों में आत्मोत्कर्ष वर्णित होने के कारण उदाहरण अङ्ग है।[3]

राम कहते हैं कि वज्रतुल्य कठोर वह धनुष टूट गया तो इससे क्या? आपके हृदय में विशाल दुःख कीलक गढ़ गया तो इससे भी क्या? यह धनुष शिव जी का हो या विष्णु का हो, पर मेरा गर्वपूर्ण बाहुविलास यह कुछ भी नहीं गिनता है।[4] यहाँ गुरुओं का अपमान देखकर वे उपर्युक्त वचनों का प्रयोग करते हैं और संग्राम करने के लिये तैयार हो जाते हैं। अतः यहाँ क्रम अङ्ग है।[5]

कलहंस कहता है कि राम ने थोड़े ही समय में युद्धविजय में कोपावेग से व्याप्त गम्भीर शब्द की गुरुता से दसों दिशाओं को मुखरित कर लक्ष्मण को बुलाया। इस वाक्य को सुनते ही गङ्गा, यमुना और सरयू सभी नदियाँ भयभीत हो जाती हैं कि किस कष्ट से दुःखी होकर किसने लक्ष्मण को बुलाया।[6] यहाँ शङ्का और भय की स्थिति उत्पन्न होने के कारण सम्भ्रम अङ्ग है।[7]

---

१. क्रीडाविनिर्मितसुदुर्मददोर्विलासनिःशेषराजकवधस्य परश्वधस्य।
कीलालकीकसकचैः परितो विचित्य येन द्विधापि विदधे पृथिवी त्रिवर्णा।। प्रसन्नरा. ४/२८

२. यत्र क्रामति सङ्गराङ्गणभुवं दुर्वारधाराञ्चलक्षुण्णक्षत्रकिशोरकण्ठरुधिरैर्नीरेणुका भूरभूत्।
तादृग्वीरवरस्वयंवरपरस्वर्लोककन्याकरक्रीडापुष्करदामरेणुभिरभूद् द्यौरेव रेणूत्कटा।।
वही, ४/२६

३. सोत्कर्षं स्यादुदाहृतिः। द. रू. १/३६

४. तत्कोदण्डं कुलिशकठिनं भग्नमेतेन भग्नं मग्नं शल्यं तव हृदि महन्मग्नमेतावता किम्?
त्रैयक्षं वा भवतु, यदि वा नाम नारायणीयं नैतत् किञ्चिद् गणयति समे दुर्मदो दोर्विलासः।।
प्रसन्नरा. ४/३६

५. क्रमः संचित्यमानाप्तिः। द. रू. १/३६

६. हंसः—अथाहूतस्तादृक्समरजयसंरम्भरभसप्रसर्पद्गम्भीरध्वनिगरिमगर्जद्दशदिशम्।
मुहूर्तात् सौमित्रिः....
सरयूः—तत् किं रामेण?
हंसः—नहि नहि।
सरयू—अयि देवि भागीरथि! त्रायस्व माम्। नूनं निशाचरचक्रेणेति वक्ष्यति।
हंसः—विपिनञ्चरनक्तञ्चरचमू-वधक्रीडाकिञ्चिन्मुकुलितरुषा रामधनुषा।। वही, ५/३५

७. शङ्कात्रासौ च सम्भ्रमः।। वही, १/४२

गोदावरी कहती है कि राम द्वारा छोड़े गये बाण से सुवर्णशरीर मृग उसी क्षण मारीच नाम का राक्षस हो गया। वह भिक्षु भी अल्पकाल में दशमस्तकों से युक्त रावण हो गया।[1] इस प्रसङ्ग में छद्म की सूचना मिलती है। अतः अभूताहरण अङ्ग है।[2]

गोदावरी बतलाती है कि रावण द्वारा अपहरण करने से सीता भयभीत हो जाती हैं और हा राम! हा रमण! हे संसार के एकमात्र वीर! हा रघुपते! आप क्यों मेरी उपेक्षा कर रहे हैं? इस प्रकार बारंबार बोलती हुयी सीता को लेकर रावण आकाशमार्ग से चला।[3]

सागर एक विशाल पर्वत का अपने ऊपर से उड़ने का वर्णन करते हैं।[4] अतः यहाँ सामाजिकों को यह विश्वास हो जाता है कि अब रावण विनाश अवश्यम्भावी है। उपरोक्त प्रसङ्ग में मार्ग अङ्ग है।[5]

विमर्श सन्धि

विमर्श सन्धि का लक्षण है—

क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृताः।।[6]

प्रसन्नराघव नाटक के छठे और सातवें अङ्क में रावण वध प्रसङ्ग तक विमर्श सन्धि का समावेश है।

राम कहते हैं कि हे वसुन्धरे! स्त्रियों में रत्नभूत जिस सीता को अपने गर्भ में

---

१. गोदावरी ततः—
रामोन्मुक्तैकबाणप्रणिहतहृदयः काञ्चनाङ्गः कुरङ्गः
सद्यो मारीचनामाऽजनि रजनिचरः सान्द्ररक्ताक्तवक्षाः।
भिक्षुः सोऽपि क्षणार्धान्मणिखचितचलत्कुण्डलश्रेणिशोभा-
वीचीखेलत्कपोलस्फुरितदशशिराः कुम्भकर्णाग्रजोऽभूत्।। प्रसन्नरा. ५/४३

२. अभूताहरणं छद्म। द. रू. १/३८

३. हाराम! हा रमण! हा जगदेकवीर!
हा नाथ! हा रघुपते! किमुपेक्षसे माम्।
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्ती-
मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम।। वही, ५/४५

४. विलासैर्दम्भोलेर्दलितगरुतः सर्वगिरयः
स चैको मैनाकः पयसि मम मग्नो निवसति।
अये! कोऽयं शैलः स्फुरदमितगत्यूतिमहिमा
हिमाद्रिर्विन्ध्यो वा लघुतरगतिर्लङ्घयतिमाम्।। वही, ५/५३

५. मार्गस्तत्त्वार्थकीर्तनम्। वही, १/३८

६. वही, १/४३

धारण करती हुई तुम अन्वर्थ नाम प्राप्त करने से लोक में रत्नगर्भा हो गयी थीं। उन सीता को अपनी गोद में गिरी हुई देखकर भी तुम उसी क्षण विदीर्ण क्यों नहीं हो गयी ?[1] यहाँ ऐन्द्रजालिक के प्रभाव से पति वियोग में विह्वल सीता को पृथ्वी पर मूर्च्छित देखकर राम पृथ्वी माता का तिरस्कार करते हैं। अतः द्रव नामक सन्ध्यङ्ग है ।[2]

सीता कहती हैं कि क्यों शिव जी के मस्तक पर स्थित चन्द्र में कलङ्क का आरोप करूँ? मैं जानती हूँ कि अभी तक आर्यपुत्र को मेरा वृत्तान्त विदित नहीं है।[3] यहाँ सीता द्वारा राम को निष्कलङ्क वर्णित करके उनका संकीर्तन किया गया है। अतः प्रसङ्ग अङ्ग है।[4]

करालक कहता है कि क्रोध से लाल और चञ्चल नेत्र वाले रावण ने तलवार को कुछ उठाकर नीति और धर्मरूप अलङ्कारों से सम्पन्न विभीषण के वक्षःस्थल में प्रहार किया।[5] तत्पश्चात् मुनि कहता है कि निश्चित ही रावण ने नीति और धर्म से युक्त विभीषण को ही नहीं बल्कि ऐश्वर्य को भी चरण से ताड़ित किया है।[6] उपर्युक्त दोनों प्रसङ्गों में रावण का भ्रातृद्रोह प्रदर्शित होने के कारण अपवाद सन्ध्यङ्ग है।[7]

मन्दोदरी के मुख का वर्णन करता हुआ रावण श्लेष के बल से अपने सामर्थ्य का प्रदर्शन करता है।[8] अतः यहाँ व्यवसाय अङ्ग है।[9]

---

१. रामः—अयि वसुधे।
यां वै गर्भे त्रिजगद्बलारत्नभूतां दधाना लब्धार्थत्वाज्जगति भवती रत्नगर्भा बभूव।
तामुत्सङ्गे तव विलुलितां वीक्षमाणा च सीतां द्राग् दीर्णासीन्न कथमथवा देवि! सर्वंसहाऽसि।।
प्रसन्नरा. ६/१७

२. द्रव गुरुतिरस्कृतिः। द. रू. १/४५

३. सीता—अथवा किमिति हरमुकुटमृगाङ्के कलङ्कमारोपयिष्ये?
जानाम्यार्यपुत्रोऽद्याप्यकलितवृत्तान्तो मे। प्रसन्नरा. ६/पृ. ३२४

४. गुरुकीर्तनं प्रसङ्गः। द. रू. १/४६

५. करालकः—ततश्च—
कोपपाटलितलोलदृष्टिना किञ्चिदुन्नमितखड्गयष्टिना।
रावणेन नयधर्मभूषणस्ताडितो हृदि पदा विभीषणः।। प्रसन्नरा. ७/४

६. मुनिः—हन्त! नूनं—
लङ्केश्वरेण दुष्टेन नयधर्मविभूषणः।
विभीषणश्च न, परं विभवोऽपि पदा हतः।। वही, ७/५

७. दोषप्रख्यापवादः स्यात्। द. रू. १/४५

८. रावणः—भुग्नालकं स्मितपराजितचन्द्रलेखं दृग्लीलया कुवलयश्रियमादधानम्।
एतन्मुखं दिविषदामिव दुर्निरीक्ष्यं तन्वङ्गि मामिव मुधा किमधः करोषि?।। प्रसन्नरा. ७/१५

९. व्यवसायः स्वशक्त्युक्तिः। द. रू. १/४७

राम और रावण के मध्य युद्ध के अवसर पर रोषपूर्ण वार्तालाप[1] होने के कारण संफेट अङ्ग का समावेश है।[2]

नेपथ्य में यह सूचना प्राप्त होती है कि संग्राम में वज्रतुल्य दंष्ट्राओं के प्रहारों से पर्वत के समान वानरश्रेष्ठ मारे गये। जिनके नाराचरूप जल की वृष्टियों से दावाऽग्निसमान वानरश्रेष्ठ मारे गये। वे कुम्भकर्ण और युद्ध कलाओं में कौतूहल रखने वाले, दशरथ पुत्रों के बाणानल में पतङ्ग हो गये।[3] यहाँ कुम्भकर्ण और मेघनाद के वध की सूचना मिलने के कारण विद्रव अङ्ग है।[4]

रावण अपनी प्रशंसा करता हुआ कहता है कि हे राम! खर कैसा था? बाली वानर था और मारीच भी मृग रूप में था। उन्हें अल्पप्रकार से मारकर तुम क्यों दर्प कर रहे हो? अमरावती के गजेन्द्रों का संहार करने वाला यह दशबदन नामक सिंह आया है।[5] तत्पश्चात् रावण के वचन से क्रोधित होकर लक्ष्मण कहते हैं कि अरे राक्षस! गर्व छोड़कर विभीषण के समान राम के चरण कमलों में स्वच्छन्दरूप से भ्रमर बन जाओ अथवा कुम्भकर्ण की तरह कान तक मण्डलाकार धनुष के मध्यभाग से छूटे हुए

---

१. अये! कथं—

(क) पूर्वमेव प्रयातानां खरमारीचवालिनाम्।
सौजन्यमुग्धः पन्थानमधिवर्त्तितुमीहसे?।। प्रसन्नरा. ७/३६

(ख) कालीकेसरिकेसराञ्चलसटासाटोपसम्पादित-
क्रीडाचामरकोमलानिललवाचान्तश्रमाम्भः कणः।
श्रीमानेष दशाननो विजयते तस्यास्य पञ्चानन-
व्यापारप्रतिपादनैरपि यशः कीदृक् समुन्मीलति? वही, ७/४१

२. सम्फेटोरोषभाषणम्। द. रू. १/४५

(पुनर्नेपथ्ये)

३. यद्दंष्ट्रावज्रघातैः समिति विदलिताः शैलकल्पाः कपीन्द्रा
यन्नाराचाम्बुवर्षैर्दवदहनसमाः शामिता वानरेन्द्राः।
वीरोऽसौ कुम्भकर्णः, स च समरकलाकौतुकी मेघनादः
संजातौ—
रावणः—किमतः परं वदिष्यति?
(पुनर्नेपथ्ये)
हा पतङ्गौ दशरथसुतयोर्दारूणे बाणवह्नौ।। वही, ७/२४

४. विद्रवो वधबन्धादिः। वही, १/४५

५. खरः कीदृग् बाली कपिरपि च, मारीचहतकः
कुरङ्गस्तान् हत्वा कथमपि कथं दृप्यसि मनाक्?
अयं पश्य प्राप्तो दशवदननामा सुरपुरी-
करीन्द्राणां हेलारचितकदनः पञ्चवदनः।। प्रसन्नरा. ७/४०

बाणानल में पतङ्ग हो जाओ।[१] यहाँ रावण और लक्ष्मण के द्वारा परस्पर शक्ति प्रकट करने के कारण विरोधन अङ्ग है।[२]

युद्ध के समय राम, रावण से कहते हैं कि अरे धनुष कट गया है इसलिये क्षोभ से चञ्चल मत हो। तू युद्ध में दूसरा अस्त्र भी इच्छा के अनुसार उठा ले।[३] यहाँ राम द्वारा रावण का तर्जन किये जाने के कारण द्युति अङ्ग है।[४]

करालक से वार्तालाप करते हुये मुनि कहते हैं कि दुष्ट लङ्केश्वर ने नीति और धर्मरूप अलङ्कारों से सम्पन्न विभीषण को ही नहीं बल्कि ऐश्वर्य को भी चरण से ताडित कर दिया।[५] यहाँ मुनि द्वारा कहे गये उपरोक्त कथन में यह भावी सूचना प्राप्त होती है कि रावण अब अधिक समय तक नहीं रह सकेगा। अतः प्ररोचना अङ्ग है।[६]

जिस समय देवगण रावण वध के लिये राम को शीघ्रता करने के लिये कहते हैं, तब रावण कहता है कि मेरे बाहुओं! शङ्कर जी के सिर में स्थित एक चन्द्रकला को छोड़कर दिक्पालों की समस्त मुकुटमणियों को ग्रहण करो। उनसे निर्मित मेखला को मेरे पराक्रम के वाद्यशब्द का गान करती हुई सीता अपने नितम्ब में बहुत समय तक धारण करे।[७] यहाँ रावण द्वारा अपने गुणों का वर्णन करने के कारण विचलन अङ्ग है।[८]

---

१. विद्याधरः—अये! दशवदनवचनकुपितः किमपि वक्तुकाम इव लक्ष्यते लक्ष्मणः।
दूरोन्मुक्तमदो विभीषण इव न्यञ्चच्छिरः शेखरः
स्वच्छन्दं चरणारविन्दयुगलं रामस्य भृङ्गो भव।
रे नक्तञ्चर! कुम्भकर्ण इव वा कर्णान्तचक्रीभव-
च्चापोत्सङ्गविमुक्तबाणदहने सद्यः पतङ्गो भव।। प्रसन्नरा. ७/४२

२. विरोधनन्तु संरम्भादुत्तरोत्तर भाषणम्। ना. शा. २१.६५

३. निकृत्तचाप इति मा संक्षोभतरलो भव।
शस्त्रमन्यदपि स्वैरं ननु रे। समरे कुरू।। प्रसन्नरा. ७/४३

४. तर्जनोद्वेजने द्युतिः। द. रू. १/४६

५. मुनि—हन्त! नूनं—
लङ्केश्वरेण दुष्टेन नयधर्मविभूषणः।
विभीषणश्च न, परं विभवोऽपि पदा हतः।। वही, ७/५

६. सिद्धमन्त्रणतो भाविदर्शिका स्यात्प्ररोचना। वही, १/४७

७. विद्याधरः—नूनममी दिवौकसस्त्वरयन्ति रामचन्द्रम्।
तच्छृण्वन् किमधुना वक्ष्यति रावणः? (नेपथ्ये)
रे रे मम भुजाः।
मुक्त्वैकां हरशेखरप्रणयिनीं पीयूषभानोः कलां
दिक्पालावलिमौलिमण्डनमणीन् गृह्णीत सर्वानपि।
तैः काञ्चीं रचितां चिराय वहतु श्रोणीतटे जानकी
गायन्ती कमनीयशिञ्जितभरैर्मद्विक्रमाडम्बरम्।। प्रसन्नरा. ७/५१

८. विकत्थना विचलनम्। द. रू. १/४८

विद्याधर कहता है कि अरे! विकसित पुष्प समूह से व्याप्त चन्द्रकान्तमणि निर्मित पलंग पर परागों से अलङ्कृत होकर जो विलास के साथ शयन करता था वही यह रावण रामचन्द्र जी के कुछ क्षण क्रुद्ध होने पर धूलिसमूह से धूसरवर्ण वाला होकर जमीन पर सो रहा है।[1] यहाँ रावणवध के पश्चात् राम को सीता की निर्विघ्न प्राप्ति होती है, इसको नाटककार विद्याधर के माध्यम से सूचित करता है। अतः आदान सन्ध्यङ्ग है।[2]

निर्वहण सन्धि

निर्वहण सन्धि का लक्षण है—

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।[3]

प्रसन्नराघव नाटक में सप्तम अङ्क में रावण वध के पश्चात् इस सन्धि का समावेश है।

रावण का वध होने के पश्चात् विद्याधरी कहती है कि तब इसी समय सीता रामचन्द्र जी से मिलेंगी।[4] यहाँ विद्याधरी के उपरोक्त कथन में रामसीता के मिलन की पूर्व उद्भावना का समावेश है। अतः सन्धि अङ्ग है।[5]

जब सीता प्रज्ज्वलित अग्नि में प्रवेश करके परिशुद्ध होकर निकल आती हैं तब विद्याधरी कहती है कि देखो, देखो, ये रामचन्द्र जी अनुपम संग्राम से विकृत प्रदेश पर उतर रहे है।[6] यहाँ सीता से मिलने के लिये रथ से उतरते हुये राम को देखकर कहे गये उपर्युक्त वाक्य में ग्रथन अङ्ग है।[7]

सीता और लक्ष्मण के मध्य परस्पर संवाद[8] कार्य की सिद्धि के विषय में होने

---

१. विद्याधरः—विकचकुसुमस्तोमाकीर्णे परागविभूषितः
शशिमणिशिलातल्पेऽनल्पे सलीलमशेत यः।
अयमयमसौ रोषारूढे क्षणं रघुनन्दने
भुवि दशमुखः शेते धूलिच्छटापरिधूसरः।। प्रसन्नरा. ७/५२

२. फलसामीप्यमादानम्। ना. शा. २१/६०

३. द. रू. १/४८-४६

४. विद्याधरी—तदिदानीमेव जनकनन्दिनी रामचन्द्रेण समं सङ्गस्यते? प्रसन्नरा. ७/पृ. ४०६

५. सन्धिर्बीजोपगमनम्। द. रू. १/५१

६. विद्याधरी--पश्य, पश्य अयमसमसमरकदर्थितं प्रदेशमवतरति रामचन्द्रः।
प्रसन्नरा. ७/पृ. ४१०

७. ग्रथनं तदुपक्षेपो। द. रू. १/५१

८. लक्ष्मणः—आर्ये जानकि! पश्य पश्य।
आनन्दं कुमुदादीनामिन्दुः कन्दलयन्नयम्।

के कारण परिभाषा अङ्ग का समावेश है।[1]

नेपथ्य से उद्भूत होते हुए सूर्यदेव राम को आशीर्वाद देते हुये कहते हैं कि हे सूर्यरूप रामभद्र! कीर्तिसमूह को दूर तक फैलाओ और हजारों वर्षों तक उज्ज्वलरूप वाले बनो। यह लोकत्रयी तुम्हारे गुणकथनरूप अमृतसमूह से युक्त समृद्धि का अनुभव करने वाले देवों, मनुष्यों और सर्पों से सम्पन्न हो।[2] यहाँ राम को सूर्यदेव अपना आशीर्वाद दे रहे हैं, अतः भाषण अङ्ग है।[3]

सूर्यदेव द्वारा राम को आशीर्वाद देने के पश्चात् उनकी राम के प्रति कही गयी उक्ति[4] काव्य का उपसंहार सूचक होने के कारण काव्यसंहार नामक अङ्ग है।[5]

राम और सुग्रीव द्वारा नाटक के अन्त में लोक-कल्याण की भावना से भरत वाक्य पूर्ण होता है, अतः प्रशस्ति अङ्ग का समावेश है।[6] इसका लक्षण इस प्रकार है—

लङ्घयत्यम्बराभोगं हनुमानिव सागरम्।। प्रसन्नरा. ७/७२

सीता—अये सुलक्षण लक्ष्मण! स पुनरिदानीं क्व रघुकुलकुटुम्बसन्तापशमनचन्दनः पवननन्दनः।

लक्ष्मणः—आर्ये! स एष रामचन्द्रेण बन्धुमानन्दयितुमयोध्यां प्रहितः।

सीता—तदस्माभिः किमिति विलम्ब्यते। वही, ७/पृ. ४२६-४२७

१. परिभाषामिथो जल्पः। द. रू. १/५२

२. यशः पूरं दूरं तनु सुतनुनेत्रोत्पलवनीतमस्तन्द्रा-चण्डातप। तप सहस्राणि शरदाम्।
इयं चास्तां युष्मद्गुणकथनपीयूषपटलश्रितोत्सङ्गा नन्दतुसुरनरभुजङ्गा त्रिजगती।।
प्रसन्नरा. ७/६२

३. मानाद्याप्तिश्च भाषणम्। द. रू. १/५३

४. (पुनर्नेपथ्ये)—
अन्यच्च ते किमाशास्महे। प्रसन्नरा. ७/पृ. ४४५

५. वराप्तिः काव्यसंहारः। द. रू. १/५४

६. (क) रामः—(पुनः सीतां प्रत्यपवार्य)
तन्वि! त्वद्वदनस्य विभ्रमलवं लावण्यवारांनिधे-
रिन्दुः सुन्दरि! दुग्धसिन्धुलहरी बिन्दुः कथं विन्दतु?
उत्कल्लोलविलोचने। क्षणमयं शीतांशुरालम्बता-
मुन्मीलन्नवनीलनीरजवनीखेलन्मरालश्रियम्।। प्रसन्नरा. ७/६५

(ख) सीता—(लज्जां नाटयति) (विलोक्य, हर्षेण) अहो! कथमयमुन्मीलित एव?
मुकुलीकतारविन्दो मानवतीमानवारणमृगेन्द्रः।
त्रिभुवननयनानन्दो रजनीमुखचन्दनश्चन्द्रः।। वही, ७/६६

(ग) सुग्रीवः—आ बालाद् वनाम्बुजे तनुभृतां सारस्वतं जृम्भतां
देवे कौस्तुभधाम्नि चन्द्रमुकुटेऽद्वैता मतिः खेलतु।
वाग्देव्या सह मुक्तवैशसरसा देवीव दीव्यादियं
शेषस्येव फणाञ्चलेषु सततं लक्ष्मीः सतां सद्मसु।। वही, ७/६४

प्रशस्तिः शुभशंसनम्।[1]

पताकास्थानक

प्रसन्नराघव नाटक में चारों प्रकार के पताकास्थानक का विवरण प्राप्त होता है, पताकास्थानक का लक्षण दशरूपककार के अनुसार इस प्रकार है।[2]

प्रथम प्रकार

प्रसन्नराघव के द्वितीय अङ्क में जब यज्ञ की रक्षा के निमित्त अयोध्यापति दशरथ विश्वामित्र को अपने दोनों पुत्रों राम और लक्ष्मण को सौंपते हैं तब उनकी उत्कृष्ट प्रयोजनसिद्धि होती है।[3] अतः प्रथम प्रकार का पताकास्थानक है।[4]

द्वितीय प्रकार

प्रथम अङ्क के द्वितीय श्लोक में श्लिष्ट शब्दों के माध्यम से प्रकृत विषय को वर्णित किया गया है,[5] अतः द्वितीय प्रकार का पताकास्थानक है।[6]

तृतीयप्रकार

तृतीय अङ्क की समाप्ति में जनक और विश्वामित्र के मध्य होने वाले वार्तालाप द्वारा दशरथ के चारों पुत्रों के विवाह की भावी सूचना प्राप्त होती है।[7]

(घ) रामः—जायन्तामविरामरामचरितक्रीडाभिरामाः सता-
मुन्मीलन्नवमल्लिकाविरचितस्रग्दामरम्या गिरः।
याः कण्ठेऽपि निवेश्य पेशलधियो रोमाञ्चलीलाञ्चिताः
कान्ताबाहुलताविलासमहिमाश्लेषांस्तृणं मन्वते।। प्रसन्नरा. ७/६५

१. द. रू. १/५४

२. वही १/१४

३. कौशिकोनाम मुनी राजानमयोध्याधिपतिमेत्य स्वमखरक्षणाय तस्य रामनामानं तनयं सानुजं याचितवान्। तेन चावश्यं माननीयो मुनिरिति निजनयनाभ्यामपि प्रियतमौ निजतनयौ तस्य समर्पितौ। प्रसन्नरा. २/८६

४. ना. शा. २१/३०

५. आकल्पं मुरजिन्मुखेन्दुमधुरोन्मीलन्मरुन्माधुरी
धीरोदात्तमनोहरः सुखयतु त्वां पाञ्चजन्यध्वनिः।
लीलालङ्घितमेघनादविभवो यः कुम्भकर्णव्यथा-
दायी दानवदन्तिनां दशमुखं दिक्चक्रमाक्रामति।। प्रसन्नरा. १/२

६. ना. शा. २१/३१

७. विश्वामित्रः अस्त्वेतत्, परन्तु—
पाणीञ्जनककन्यानां पीडयद्भिः सहानुजैः।
सीताया रामभद्रो मे पाणिपीडनमिच्छति।। वही, ३/५१
जनकः—(सहर्षम्) कथं माण्डवी—श्रुतकीर्त्तिभ्यां भरत शत्रुघ्नयोरपि परिणयमनुसन्धत्ते भगवान्? वही, ३/पृ. १६१

सप्तम अङ्क में जब मन्दोदरी चिन्ता करते हुये कहती है कि आज मैंने महाराज का शकुन जानने के लिये पर्वत की चोटी के वन के अभ्यन्तरस्थ शबरग्राम में दासी को भेजा था। उसने सिंहशावक को लालन करने वाली किसी शबरपत्नी का ऐसा वचन सुना-हे सिंह! तुम गजेन्द्र को जीतकर ही दर्पयुक्त मत बनो। शरभशावक, पर्वत से दुर्गम इस भूमि को प्राप्त हुआ है।[१] उपर्युक्त प्रसङ्ग में मन्दोदरी की चिन्ता द्वारा रावण वध की भावी सूचना प्राप्त होती है। अतः तृतीय प्रकार का पताकास्थानक है।[२]

चतुर्थ प्रकार

प्रथम अङ्क में नट कहता है कि तीन लोकों की परिपूर्णता में भी सूर्यकुल के भूषणभूत श्रीरामचन्द्र जी की कीर्ति नटी के नृत्य के अवसर में शब्द करने वाले वाद्य के प्रथम शब्द के समान वाल्मीकि मुनि अतिशय उत्कर्ष को प्राप्त करते हैं। जिनके मुख रूपी चन्द्रमण्डल से गिरते हुए काव्यामृतरूपी समुद्र की कुछ बिन्दु को पीकर भी कविरूपी नवीन मेघों की पङ्क्ति प्रलयकाल तक वृष्टि करती रहे।[३]

तृतीय अङ्क में विश्वामित्र कहते हैं कि उन महाराज दशरथ ने चन्द्र के सदृश सुन्दर शरीर वाले राम को और आपने कुमुदिनी के सदृश लोगों के नेत्रों को आकृष्ट करने वाली सीता को उत्पन्न किया।[४]

उपर्युक्त दोनों प्रसङ्गों में प्रकृति वर्णन के माध्यम से भावी कथानक की सूचना दी गई है। अतः चौथे प्रकार का पताकास्थानक है।[५]

---

१. मन्दोदरी—देव! अद्य हि मया देवस्य शकुननिरूपणार्थं गिरिशिखरगहनगर्भस्थितां शबरपल्लीं प्रस्थापिता निजपरिचारिका। तया च कस्या अपि शबरकुटुम्बिन्या निजगृहपर्यन्तवासिनं केसरिकिशोरकं लालयन्त्या ईदृशं वचनमाकर्णितम्—
मा भव नागपतेः परिभवमात्रेण गर्वनिर्व्यूढः।
वसुधामिमां गिरिसङ्कटां मृगेन्द्र! शरभस्य नन्दनः प्राप्तः।। प्रसन्नरा. ७/१७

२. ना. शा. २१/३२

३. नटः—त्रिभुवनाभोगेऽपि हि—
भास्वद्वंशवतंस-कीर्तिरमणी-रङ्गप्रसङ्गस्वनद्-
वादित्रप्रथमध्वनिर्विजयते वाल्मीकजन्मा मुनिः।
पीत्वा यद्वदनेन्दुमण्डलगलत्काव्यामृताब्धेः किम-
प्याकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षति।। वही, १/९

४. विश्वामित्रः—
जज्ञिवान् दशरथः स हि राजा
राममिन्दुमिव सुन्दरगात्रम्।
लोकलोचन विगाहनशीलां
त्वं पुनः कुमुदिनीमिव सीताम्।। वही, ३/२९

५. ना. शा. २१/३३

प्रसन्नराघव नाटक के वस्तु-विन्यास का सम्पूर्ण अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि जयदेव ने नाटककार के रूप में प्रसन्नराघव नाटक में सभी अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं, कार्यसन्धियों और पताकास्थानकों को शास्त्रीय दृष्टि से बहुत ही सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है।

साहित्य की समस्त विद्याओं के अनुशीलन के अनन्तर साहित्य समीक्षकों ने काव्येषु नाटकं रम्यम् की उद्घोषणा की है उनके अनुसार काव्य में रसाभिव्यक्ति प्रधान होती है, जैसा कि ध्वन्यालोक में कहा गया है कि काव्य का उपनिबन्धन करने वाले कवि को पूरी आत्मा से रस परतन्त्र होना चाहिये। उसमें यदि इतिवृत्त में रस के प्रतिकूल स्थिति देखे तो इसे तोड़कर भी स्वतन्त्र रूप में रस के अनुकूल दूसरी कथा का सृजन कर ले। केवल इतिवृत्त के निर्वाह से कवि का कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि उसकी सिद्धि इतिहास से ही हो जाती है।[१]

अतः काव्येषु नाटकं रम्यम् की उद्घोषणा निश्चित रूप से इस तथ्य का पोषक है कि नाटक की रचना अन्य विधाओं की तुलना में किसी विशेष प्रतिभा की अपेक्षा रखती है, जहाँ अन्य साहित्यकार सामाजिकों के श्रवणमात्र के लिये अपने साहित्यों का सृजन करते हैं, वहीं दूसरी ओर नाटककार को सामाजिकों की दर्शन् अभिलाषा को भी पूर्ण करना होता है।

बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों का कथावस्तु विषयक अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि यद्यपि दोनों ही नाटकों की कथावस्तु का मूल स्रोत वाल्मीकी रामायण ही है, तथापि दोनों ही नाटककारों ने नाटक की कथावस्तु में यथासम्भव परिवर्तन किये हैं, उन्होंने नवीन कल्पनाओं के द्वारा नाटक को सहृदय सामाजिक के लिये बोधगम्य बनाया है।

दोनों नाटकों की कथावस्तु में परस्पर साम्य होते हुये भी स्थान-स्थान पर वैषम्य दृष्टिगत होता है।

बालरामायण और प्रसन्नराघव का शास्त्रीय रीति से अध्ययन करने पर यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर और जयदेव ने वस्तु-विन्यास का वर्णन करने में सभी अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं, सन्धियों और पताकास्थानकों को ध्यान में रखते हुये मूलभूत परिवर्तनों के साथ सहृदय सामाजिक के लिये प्रस्तुत करने का प्रयास किया है और अन्ततः इस प्रयास में दोनों सफल भी हुये हैं।

---

१. कविना काव्यमुपनिबध्नता सर्वात्मना रसपरतन्त्रेण भवितव्यम्। तत्रेतिवृत्ते यदि रसाननुगुणां स्थितिं पश्येत्तदेमां भङ्क्त्वापि स्वतन्त्रतया रसानुगुणं कथान्तरमुत्पादयेत्। नहि कवेरितिवृत्तमात्रनिर्वाहेण किञ्चित्प्रयोजनम्, इतिहासादेव तत्सिद्धेः। ध्वन्या. ३/पृ. ७६६

(ग) विवेच्य नाटकों की कथावस्तु—साम्य तथा वैषम्य

राजशेखर विरचित बालरामायण तथा जयदेव विरचित प्रसन्नराघव नामक नाटकों का मूल स्रोत वाल्मीकीय रामायण है तथापि कालक्रम, व्यक्तिगत स्वभाव तथा मौलिक संवेदना शक्ति के कारण दोनों रचनाओं में तथा उसकी प्रस्तुति में पर्याप्त भिन्नता है। तुलनात्मक समीक्षा की पृष्ठभूमि की दृष्टि से यहाँ दोनों नाटकों का साम्य तथा वैषम्य विवेचित किया जा रहा है।

कथावस्तुगत—साम्य

सूत्रधार द्वारा मङ्गलाचरण

बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों की कथा का आरम्भ सूत्रधार द्वारा मङ्गलाचरण से होता है।[1]

दाक्षिणात्य नट की चर्चा

दोनों ही नाटककारों ने नाटक के आरम्भ में दाक्षिणात्य नट की चर्चा के माध्यम से काव्यार्थ को सूचित किया है।[2]

---

१. (क) प्रसत्तेर्यः पात्रं तिलकयति यं सूक्तिरचना
य आद्यः स्वादूनां श्रुतिचुलुकलेह्येन मधुना।
यदात्मानो विद्याः परिणमति यश्चार्थवपुषा
स गुम्फो वाणीनां कविवृषनिषेव्यो विजयते।। बालरा. १/१

(ख) चत्वारः प्रथयन्तु विद्रुमलतारक्ताङ्गुलिश्रेणयः
श्रेयः शोणसरोजकोरकरुचस्ते शार्ङ्गिणः पाणयः।
भालेष्वब्ज भुवो लिखन्ति युगपद्ये पुण्यवर्णावलीः
कस्तूरीमकरीः पयोधरयुगे गण्डद्वये च श्रियः।। प्रसन्नरा. १/१

अपि च—आकल्पं मुरजिन्मुखेन्द्रमधुरोन्मीलन्मरुन्माधुरी-
धीरोदात्तमनोहरः सुखयतु त्वां पाञ्चजन्य ध्वनिः।
लीलालङ्घितमेघनादविभवो यः कुम्भकर्णव्यथा-
दायी दानवदन्तिनां दशमुखं दिक्चक्रमाक्रामति।। वही, १/२

नाभीपद्मवसच्चतुर्मुखमुखोद्गीतस्तवाकर्णन-
प्रोन्मीलत्कमनीयलोचनकलाखेलन्मुखेन्दुद्युतिः।
सक्रोधं मधु-कैटभौ सकरुणस्नेहं सुतामम्बुधेः
सोत्प्रासप्रणयं सरोजवसतिं पश्यन् हरिः पातु वः।। वही, १/३

२. (क) तत्र दक्षिणापथादागतो रङ्गविद्याधरनामा भरतपुत्रो भवद्भिः परीक्षितो न च निर्व्यूढस्त-न्मामपि परीक्षध्वम्। तथाहि—नारीपरिभवं सोढुं दाक्षिणात्या न शिक्षिताः।
वही, १/३

(ख) केनापि दाक्षिणात्येन नटापसदेन ममैवेदं गुणारामेति नामेति वदता रङ्गविद्याधराख्यातिरपहता। प्रसन्नरा. १/पृ. ११

सीता स्वयंवर में रावण की उपस्थिति[1]

बालरामायण में रावण पुष्पक विमान से सीता स्वयंवर में चलने के लिये कहता है और प्रसन्नराघव में पुरुष वेषधारी रावण को पहचान लेने पर मञ्जीरक कहता है कि यह मनुष्य नहीं है, यह राक्षसराज रावण है।

रावण द्वारा शिवधनुष के साथ सीता को देखने की इच्छा व्यक्त करना।

दोनों ही नाटको में सीता स्वयवंर में रावण शिवधनु के साथ ही सीता को भी देखने की इच्छा व्यक्त करता है।[2]

सीता को देखकर रावण के मन में उत्पन्न भाव

स्वयंवर में सीता को देखकर जैसे भाव बालरामायण नाटक के रावण के हृदय में उत्पन्न होते हैं, वैसे ही भाव प्रसन्नराघव नाटक के रावण के हृदय में भी उत्पन्न होते हैं। दोनों ने ही सीता के अङ्गलावण्य की तुलना चन्द्रमा, मृग और स्वर्ग आदि से की है, सीता के सौन्दर्य के समक्ष सभी वस्तुएँ निस्सार कही गयी हैं।[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर जयदेव राजशेखर से पूर्णतया प्रभावित हैं, क्योंकि जैसा वर्णन राजशेखर ने किया है लगभग वैसा ही दृश्य जयदेव ने भी उपस्थित किया है।

---

१. (क) रावणः—(सौत्सुक्यं) हंहो नभस्तरुपुष्पपुष्पक किञ्चिदुच्यसे।
सेवागतामरविमानसहस्रसेनाः सीमन्तयन् मम मनोजयिना जवेन।
तां मैथिलस्य नृपतेर्व्रज राजधानीं यत्राद्भुतं हरधनुर्धरणीसुता च।। बालरा. १/३२
(ख) (ततः प्रविशति निजरूपेण दशकण्ठः)—
मञ्जीरकः—नैष मानुषः, राक्षसराजः खल्वसौ दशकण्ठः। प्रसन्नरा. १/पृ. ६५

२. (क) रावणः—यत् पार्वतीहठकुचग्रहणप्रवीणे पाणौ स्थितं पुरभिदः शरदां सहस्रम्।
गीर्वाणसारकणनिर्मितगात्रमत्र तन्मैथिलीक्रयधनं धनुराविरस्तु।। बालरा. १/३६
प्रहस्तः—आविरस्तु सममगर्भसम्भवया सीतया। वही, १/पृ. २०
रावणः—इदामाविर्भवति माहेश्वरंधनुः। न पुनरद्यापि मान्मथम्। वही, १/पृ. २०
(ख) पुरुषः—क्व तावत्कर्णान्तिनिशम्यगुणं कन्यारत्नं कार्मुकं च?
कन्यामेव प्रथमं प्रकटयन्ति चरमं धनुः। प्रसन्नरा. १/पृ. ५२

३. (क) रावणः—इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव
प्रम्लानारुणिमेव विद्रुमलताश्यामेव हेमद्युतिः।
पारुष्यं कलया च कोकिलवधूकण्ठेष्विवप्रस्तुतं
सीतायाः पुरतश्च हन्त शिखिनां वर्हाः सगर्हा इव।। बालरा. १/४२
(ख) पुरुषः—राजीव! जीवसि सुधा, न सुधाकर! त्वमस्याः समः पदनखस्य, कुतो मुखस्य?
अग्रे दृशोर्मृगदृशः कतमः कुरङ्गस्तत्खञ्जन! त्वमपि किं जनरञ्जनाय।।
प्रसन्नरा. १/३६

सीता का सौन्दर्य वर्णन

सीता के सौन्दर्य वर्णन में किसी-किसी स्थल पर दोनों ही नाटककारों में साम्यता प्रदर्शित होती है।[1] बालरामायण में रावण सीता को देखकर कहता है कि थोड़ा-सा अपना मुख ऊपर उठाओ जिससे कि आकाश दो चाँद वाला हो जाय, इसी भाव को प्रसन्नराघव में जयदेव ने राम के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि हे मृगलोचने! सुन्दरी, तुम कमल का अभिमान छुड़ा देने वाले अपने दोनों नेत्र ऊपर उठाओ जिससे कि आकाश, यमुनासदृश लहरों से युक्त हो जाय।

कामज्वर से पीड़ित रावण की स्थिति[2]

बालरामायण में राजशेखर ने राम के लिये रावण द्वारा शिथिलता तथा उपेक्षा दर्शाने का कारण बताया है कि रावण को सीता की कामना के अतिरिक्त और कुछ भी ध्यान नहीं है यही कारण है कि वह अपने पराभव की ओर ध्यान ही नहीं दे रहा है। राजशेखर कहते हैं कि वह अभिमानी दशानन भला यह अपमान कैसे सह सकता है? किन्तु इस समय उसे सीता के वियोग की बेचैनी है बिना हिम समूह के मार्तण्ड अपनी चण्डता नहीं छोड़ता। इसी कथन का अनुसरण करते हुये जयदेव प्रसन्नराघव में लिखते हैं कि सीता की कामना से शीतल लङ्केश्वर के चित्त पर यह कोप की गर्मी नहीं चढ़ पायी है।

परशुराम द्वारा कटूक्तियों का प्रयोग

बालरामायण और प्रसन्नराघव में परशुराम रावण द्वारा धनुर्भङ्ग की शङ्का करके कटूक्तियों का प्रयोग करते हैं।[3] बालरामायण में राजशेखर ने रावण के प्रति कटूक्ति का प्रयोग परशुराम द्वारा न करवाकर मायामय राक्षस द्वारा करवाया है, जबकि प्रसन्नराघव में रावण पर कटूक्ति का प्रयोग स्वयं परशुराम करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर अपने नाटक में रावण के धीरोद्धात रूप को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करना चाहते हैं। यहाँ पर परशुराम का वीररूप दबा हुआ प्रतीत होता है, जबकि जयदेव परशुराम के उपरोक्त रूप का प्रदर्शन सबके सामने करना चाहते हैं।

१. (क) रावणः—उदञ्चय मनाङ्मुखं भवतु च द्विचन्द्रं नभः। बालरा. ३/२५
(ख) रामः—उत्तरङ्गय कुरङ्गलोचने! लोचने कमलगर्वमोचने।
अस्तु सुन्दरि! कलिन्दनन्दिनीवीचिडम्बरगभीरमम्बरम्।। प्रसन्नरा. २/२२

२. (क) चित्रशिखण्डः—सर्वावमानी दशाननः कथमवमाननां सहते! किन्तु सीताविरह वैधुर्यमत्रापराद्धति। न विना हिमानीमचण्डो मार्तण्डः। बालरा. ३/पृ. ६६
(ख) भिक्षुः—सीताभिलाषशीतले लङ्केश्वरचेतसि नारूढ़ एव कोपपरितापः। प्रसन्नरा. २/पृ. ६३

३. (क) मायामयः—तव भुजतरुखण्डं मत्कुठारो नसोढा। वही, २/२२
(ख) जामदग्न्यः—कुठारस्य मे, का श्लाघा दशकण्ठ कण्ठकदलीकाण्डावलीखण्डने। प्रसन्नरा. ४/१०

राम द्वारा परशुराम का विद्रोह[1]

इस प्रसङ्ग में दोनों ही नाटककारों में समानता दिखाई पड़ती है, क्योंकि बालरामायण में जिस प्रकार परशुराम द्वारा दशरथ और विश्वामित्र की अवमानना करने पर राम विद्रोह कर देते हैं उसी प्रकार प्रसन्नराघव में भी राम परशुराम द्वारा गुरु का अपमान देखकर क्रोधित हो जाते हैं सम्भवतः राजशेखर से परवर्ती होने के कारण जयदेव बालरामायण के इस प्रसङ्ग से प्रभावित हुये हों और इसीलिये इस प्रसङ्ग को उन्होंने कुछ शब्द परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया है।

कमल या कुमुदों से युक्त पोखरों का उल्लेख[2]

राम के वनगमन के समय मार्गवर्णन की विधि में दोनों ही नाटककारों में कहीं-कहीं पर समानता दिखायी पड़ती है, यथा—कमल या कुमुदों से युक्त पोखरों का उल्लेख दोनों ने ही अपने नाटकों में किया है।

सीता द्वारा राम की सेवा[3]

बालरामायण नाटक में थके हुये राम के ऊपर सीता अपने वस्त्र के छोर से पंखा झलती हैं। इसी दृश्य से प्रभावित होकर जयदेव ने भी प्रसन्नराघव नाटक में इस दृश्य को उपस्थित किया है।

---

१. (क) रामः—सर्वत्यागी परिणतवयाः सप्तमः पद्मयोनेः शिष्य शम्भोरिति च यदि वः प्रश्रयी रामभद्रः।
तत्किं भीमा भ्रुकुटिघटना तामिमां नास्मि सोढा, वोढा वीरव्रतविधिमयं मद्गुरुर्व्रीडमेति।।
बालरा. ४/७१

(ख) तत्कोदण्डं कुलिशकठिनं भग्नमेतेन भग्नं, मग्नं शल्यं तव हृदि महन्मग्नमेतावता किम्।
त्रैयक्षं वा भवतु, यदि वा नाम नारायणीयं, नैतत किञ्चिद्गणयति स मे दुर्मदो दोर्विलासः।।
प्रसन्नरा.४/३६

२. (क) पुरः फुल्लाम्भोजातिलकयति वो वर्त्म सरसी। बालरा. ६/३७

(ख) अग्रे चकास्ति सरसी सुकुमुद्वतीयं, कादम्बकूजितकरम्बितहंसनादा। प्रसन्नरा. ५/२१

३. (क) उत्थाय सम्भ्रमवशस्खलितोत्तरीया, कृत्वा धनुर्निचुलके मृगयानिवृत्तौ।
सीताऽञ्चलेन तरलेन समुल्लसन्ती, रामाननान्नमितपक्ष्मरजःप्रमार्ष्टि।।
धरणितलनिषण्णं वत्सविश्रान्तिहेतोर्व्यजति जनकपुत्री वाससः पल्लवेन।
अगणितनिजखेदः पादसंवाहनाभिः, परिचरति स हृष्यंल्लक्ष्मणो रामभद्रम्।।
बालरा. ६/४२-४३

(ख) कान्तेनाथ प्रणयमधुरं किञ्चिदाचञ्चलेन, श्रान्ता श्रान्ता जनकतनया वल्कलस्याञ्चलेन।
चक्रे वीतश्रमजलकणस्निग्धमुग्धाननश्रीः, श्रान्तः श्रान्तः स पुनरनया लोचनस्याञ्चलेन।।
-प्रत्यासन्ने भवतिनिलये सम्प्रयाता पुरस्तात्तूर्णं क्षिप्तैः कतिपय पदैश्चापमादाय हस्तात्।
श्रान्तं कान्तं नवकिसलयैः सानुजं वीजयन्ती, जाता सीता समुचितविधिप्रक्रिया वैजयन्ती।।
प्रसन्नरा. ५/२८-२९

रावण के विनोदार्थ कठपुतली सीता और सीता के चित्र का निर्माण

बालरामायण में कामपीड़ित रावण के मनोविनोदार्थ कठपुतली सीता का निर्माण करवाया गया है, जबकि प्रसन्नराघव में उसके मनोविनोदार्थ सीता के चित्र का निर्माण किया गया है।[1]

कथावस्तुगत—वैषम्य

(अ) प्रसङ्ग की दृष्टि से

जिस प्रकार पुरुष के साथ प्रकृति, जीव के साथ ब्रह्म, दिवस के साथ निशा और प्रभात के साथ सन्ध्या का सम्बन्ध होता है उसी प्रकार रामायण की कथा के साथ बालरामायण और प्रसन्नराघव की कथा का साम्य है।

बालरामायण के रचयिता राजशेखर और प्रसन्नराघव के रचयिता जयदेव इन दोनों ने ही रामकथा से प्रभावित होकर अपने-अपने नाटकों की रचना की है, परन्तु दोनों नाटकों की कथावस्तु में परस्पर वैषम्य भी दिखलायी पड़ता है। सम्भवतः उन्होंने अपने-अपने समय की सामाजिक स्थिति को देखकर नूतन कल्पनाओं का समावेश अपने नाटक में किया है, क्योंकि दोनों ने अपने नाटकों की कथा में मूलभूत परिवर्तन किये हैं जो इस प्रकार हैं—

नाटक के अङ्कों की संख्या

बालरामायण की कथावस्तु दस अङ्कों में वर्णित है, जबकि प्रसन्नराघव की कथावस्तु सात अङ्कों में ही प्राप्त होती है।

प्रत्येक अङ्क का नामकरण

राजशेखर ने दस अङ्कों के नाटक बालरामायण के प्रत्येक अङ्क का उसकी कथा के आधार पर शीर्षक दिया है। सम्भवतः इससे उनका उद्देश्य यह रहा हो कि शीर्षक को पढ़कर ही पाठक को उस अङ्क की कथा का संक्षिप्त ज्ञान हो जाये।

परन्तु जयदेव ने सात अङ्कों के नाटक प्रसन्नराघव के किसी भी अङ्क का शीर्षक नहीं दिया है।

---

१. (क) माल्यवान्—ततश्च मया मन्दोदरीपितुर्मायागुरोर्मयस्य प्रथमशिष्यो विशारदनामा यन्त्रकारः सबहुमानं नियुक्तः सीताप्रतिकृतिकरणाय विरचिता च सा तेन रावणोपच्छन्दनार्थमभिहितं च।
सूत्रधारचलद्दारुगात्रेयं यन्त्रजानकी।
वक्त्रस्थसारिकालापा लङ्केन्द्रं वञ्चयिष्यति।। बालरा. ५/६

(ख) करालकः—अहमादिष्टोऽस्मि माल्यवता जानकीविरहविह्वलहृदयस्य लङ्केश्वरस्य मनोविनोदनाय केनापि चित्रप्रकारेण विरचितं चित्रमिदं दृग्गोचरीकरणीयमिति।
प्रसन्नरा. ७/पृ. ३६२

मङ्गलाचरण में भिन्नता[1]

बालरामायण में राजशेखर ने वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण की एक श्लोक के माध्यम से प्रस्तुत किया है और उसको शिखरिणी वृत्त में निबद्ध किया है, जबकि प्रसन्नराघव में जयदेव ने तीन श्लोकों में मङ्गलाचरण किया है। प्रथम श्लोक नमस्क्रियात्मक तथा अन्तिम दोनों श्लोक आशीर्वादात्मक रूप से शार्दूलविक्रीड़ित छन्द में निबद्ध हैं।

कथानक का आरम्भ[2]

बालरामायण की कथा का आरम्भ विश्वामित्र द्वारा राक्षसों से रक्षा के लिये रामचन्द्र को लाने के लिये अयोध्या जाने से होता है, जबकि प्रसन्नराघव की कथा का आरम्भ राजा जनक द्वारा सीता के विवाह की चिन्ता करने से होता है।

ताटङ्कयुगल की कथा

प्रसन्नराघव नाटक में कौशिक मुनि प्रसन्न होकर रानी कौशल्या के लिये राजा दशरथ को एक ताटङ्कयुगल पुरस्कार स्वरूप प्रदान करते हैं।[3] जयदेव द्वारा नाटक की

१. (क) प्रसत्तेर्यः पात्रं तिलकयति यं सूक्तिरचना य आद्यः स्वादूनां श्रुतिचुलुकलेह्येन मधुना।
यदात्मानो विद्याः परिणमति यश्चार्थवपुषा स गुम्फो वाणीनां कविवृषनिषेव्यो विजयते।।
बालरा. १/१

(ख) चत्वारः प्रथयन्तु विद्रुमलतारक्ताङ्गुलिश्रेणयः
श्रेयः शोणसरोजकोरकरुचरते शार्ङ्गिणः पाणयः।
भालेष्वब्जभुवो लिखन्तियुगपद्ये पुण्यवर्णावलीः
कस्तूरीमकरीः पयोधरयुगे गण्डद्वये च श्रियः।। प्रसन्नरा. १/१

अपि च—

(ग) आकल्पं मुरजिन्मुखेन्दुमधुरोन्मीलन्मरुन्माधुरी-
धीरोदात्तमनोहरः सुखयतु त्वां पाञ्चजन्यध्वनिः।
लीलालङ्घितमेघनादविभवो यः कुम्भकर्णव्यथा-
दायी दानवदन्तिनां दशमुखं दिक्चक्रमाक्रामति।। वही, १/२

(घ) नाभीपद्मवसचतुर्मुखोद्गीतस्तवाकर्णन-
प्रोन्मीलत्कमनीयलोचनकलाखेलन्मुखेन्दुद्युतिः।
सक्रोधं मधुकैटभौ सकरुणस्नेहं सुतामम्बुधेः
सोत्प्रासप्रणयं सरोजवसतिं पश्यन् हरिः पातु वः।। वही, १/३

२. (क) राक्षरक्षौषधं रामभद्रमानेतुं सिद्धाश्रमादयोध्यां गच्छता। बालरा. १/पृ. १०
(ख) भूपतिरयं जनकोऽपि सकललोकलोचनारविन्दे क्वचिदपिपुरूषप्रकाण्डे निजां कन्यां समर्पयितु कामोऽस्मद्गुरुपदिष्टायां ब्रह्मविद्यायां कुलक्रमागतायां राजलक्ष्म्यां च शिथिलादरः संवृत्तः।
प्रसन्नरा. १/पृ. ३४

३. ततस्तेन मुनिना पारितोषिकं ताटङ्कयुगमर्पितं तस्य राज्ञः। उक्तं च, राजन्! दिव्यमिदं ताटङ्कयुगम्। वही, २/पृ. ८६

कथा में इस प्रसङ्ग का समावेश सम्भवतः कथा में नवीनता लाने के लिये किया गया है, जबकि बालरामायण नाटक में यह प्रसङ्ग नहीं प्राप्त होता है।

स्वयंवर में रावण के आगमन की सूचना[1]

बालरामायण में रावण के सीता-स्वयंवर में उपस्थित होने की सूचना राक्षस तपस्वी और शुनःशेप के परस्पर संवाद के माध्यम से प्राप्त होती है, जबकि प्रसन्नराघव नाटक में स्वयंवर में रावण के आगमन की सूचना नन्दनवन के पुष्पों को तोड़ने के सङ्केत द्वारा दी गयी है।

बालरामायण में तो राक्षस तपस्वी और शुनःशेप के वार्तालाप द्वारा स्पष्ट रूप से रावण के आगमन की सूचना मिलती है, किन्तु प्रसन्नराघव में सर्वप्रथम फूल तोड़ने के सङ्केत से रावण को सूचित किया जाता है कि सीता स्वयंवर का आयोजन हो रहा है। तत्पश्चात् रावण का स्वयंवर में आगमन होता है।

सीता-स्वयंवर में रावण की उपस्थिति में अन्तर[2]

बालरामायण नाटक में रावण सीता-स्वयंवर के समय साक्षात् असुरवेष में उपस्थित होता है, किन्तु प्रसन्नराघव में सीता-स्वयंवर के समय रावण छद्मवेष (मानववेष) में उपस्थित होता है।

बालरामायण में तो राजशेखर ने रावण के धीरोद्धात रूप को प्रदर्शित किया है, किन्तु प्रसन्नराघव में जयदेव ने रावण का जो छद्मरूप प्रकट किया है। इसमें सम्भवतः उनका उद्देश्य राम के चरित को प्रमुखता देकर रावण के चरित को गौणरूप प्रदान करना रहा हो।

---

१. (क) शुनःशेप—लङ्कोपकण्ठवर्तिनि तत्राश्रमपदे कश्चिदस्ति दशकण्ठोदन्तः।
राक्षसः—यत्किल स्थाणवीयधनुरारोपणपणेन रावणः सीतां परिणेष्यतीति तत्र कश्चदेवंविधः।
बालरा. १/पृ. १५

शुनःशेप—युक्तियुक्तं चैतत्—
अगर्भसम्भवां कन्यां दशकण्ठो जगज्जयी।
आरोप्य हरकोदण्ड कथं न परिणेष्यति।। वही, १/२६

(ख) आः कथं रे नन्दनवनस्य रक्षिणः। अनर्चितचन्द्रचूड एव निशाचरचक्रवर्त्तिनि लूनसकल-प्रसूनं नन्दनवनमिति। अद्य हि जनकराजकन्यकावीरस्वयंवर विलोकनकुतुकितसकलसुरलोक विमानमण्डनाय महान् कुसुमोपयोगः। तदाकर्ण्य चेममेव वृत्तान्तमुपायनीकरोमि लङ्केश्वर-स्येति प्रचलितो निशाचरः। प्रसन्नरा. १/पृ. ३७-३८

२. (क) जनकः—(पुरोऽवलोक्य) दिष्टया दृष्टपुलस्त्यप्रसवाः प्रमोदामहे। लङ्केश्वर! इत इतो भवानिदमासनमास्यताम्। बालरा. १/पृ. १६

(ख) नूपुरकः—वयस्य! पश्य पश्य कौतूहलं यदेकस्यापिमानुषस्य दशमस्तकानि।
मञ्जीरकः-नैष मानुषः, राक्षसराजः खल्वसौ दशकण्ठः। प्रसन्नरा. १/पृ. ६५

यन्त्र जानकी का निर्माण[1]

बालरामायण नाटक में राजशेखर ने रावण के कामज्वर को शान्त करने के लिये सीता की प्रतिकृति के रूप में यन्त्र जानकी की कल्पना की है, किन्तु प्रसन्नराघव में यह वर्णन नहीं प्राप्त होता है।

सीता अपहरण की सूचना[2]

बालरामायण नाटक में रावण द्वारा सीता के अपहरण की सूचना गृधराज जटायु के दूत रत्नशिखण्ड के द्वारा प्राप्त होती है, जबकि प्रसन्नराघव में रावण द्वारा सीता के अपहरण की सूचना गङ्गा, यमुना, सरयू, गोदावरी, तुङ्गभद्रा नदियों और समुद्र के मध्य परस्पर वार्तालाप द्वारा प्राप्त होती है।

राम वनवास प्रसङ्ग में छद्म कैकेयी और दशरथ की कल्पना

बालरामायण में राजशेखर ने राम को वनवास दिलाने के प्रसङ्ग में छद्मरूपधारी मायामय और शूर्पणखा की कैकेयी और दशरथ के रूप में कल्पना की है, उन्होंने उस समय असली कैकेयी और दशरथ की अयोध्या में अनुपस्थिति दर्शायी है। यहाँ छद्म कैकेयी छद्म दशरथ से राम के वनवास की याचना करती है।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर यहाँ पर राम के मातृपितृ प्रेम को दर्शाना चाहते हैं, राम के लिये माता और पिता की आज्ञा सर्वोपरि है, चाहे वे छद्म रूप में ही क्यों न हो? जयदेव ने प्रसन्नराघव में ऐसी कोई कल्पना न करके साक्षात् कैकेयी और दशरथ को उपस्थित किया है, यहाँ पर यह सूचना सरयू और गङ्गा नदियों के परस्पर वार्तालाप द्वारा सूचित होती है।[4]

रावण वधोपरान्त अयोध्या गमन के समय मार्गवर्णन

बालरामायण में रावण वधोपरान्त जब श्रीराम, सीता और अन्य बान्धवों के

---

१. माल्यवान्—सूत्रधारचलद्दारुगात्रेयं यन्त्रजानकी।
वक्त्रस्थसारिकालापा लङ्केन्द्रं वञ्चयिष्यति।। बालरा. ५/६

२. (क) रत्नशिखण्डः—
आकर्णाकृष्टचापार्पित विशिख भृतानुद्रुतश्चाणीयान्
माणिक्याङ्गः कुरङ्गः सपदि धृतजवो जानकी वल्लभेन।
सीतां चाधाय मध्ये मणिवलभि बली रावणः पुष्पकेण
स्वां गन्तुं राजधानीं सकलसुरवधू चण्डवृतः प्रवृत्तः।। वही, ६/६२

(ख) गोदावरी—
हा राम! हा रमण! हा जगदेकवीर! हा नाथ! हा रघुपते! किमुपेक्षसे माम्!
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्ती-मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम।। प्रसन्नरा. ५.४५

३. वरेणैकेन लभतां रघुराज्यं सुतोमम। चतुर्दश समा रामो वने वन्येन तिष्ठतु।। बालरा. ६/७

४. सरयू-त्वया देयं यन्मे द्वयमभिहितं, देहि तदिदं-
वनं कौशल्येयो विशतु, युवराजोऽस्तु भरतः। प्रसन्नरा. ५/४

साथ अयोध्या आते हैं तब मार्ग में हिमालय[1], मन्दर[2], कैलास[3], मेरु[4] इत्यादि और द्रविड़[5], आन्ध्र[6], कावेरी[7], महाराष्ट्र[8], नर्मदा[9] लाट[10], उज्जयिनी[11], पाञ्चाल[12],

१. रत्नशेखरः—हिमालयः खल्वयम्! स एवायम्।
श्रीकण्ठश्वशुरः स एष भगवान् मेनापतिः पर्वतः
पुत्रीवानुमयापुरः किमपरं हेरम्बमातामहः।
यस्यायं महिमा यदत्र शमिनः श्यामाकमुष्टिंपचाः
स्वास्वेवाश्रमभूषु दिव्यवपुषः क्रीडन्ति कामाज्ञया।। बालरा. १०/२७

२. रत्नशेखरः—नेत्रं वासुकिरत्र केशवभुजैः संदानितोऽयम्पूरा
चक्रुर्बल्लवतां परिभ्रम विधावेतस्य देवासुराः।
मन्थाः सोऽयमभूत्समुद्रकलशे तन्नीयतां कौतुका-
देष श्रोत्रपरम्परापरिचितो दृग्गोचरं मन्दरः।। वही, १०/३६

३. रत्नशेखरः—यथावगतं ताडकाताडनेन-
कैलासः स्फटिकाद्रिरेष भगवानेनं भवानीसखः
सख्या दैलबिलस्य भक्तिजनितान्नित्यंशिवः सेवते।
किञ्चास्मिन्ननुमेखलं नखमुखच्छेदैः समावेद्यते
हेलोत्पाटनपूर्वकालनिहितैर्लङ्कापतेर्विक्रमः।। वही, १०/३३

४. यं नित्यं भगवान् प्रदक्षिणयति भ्राम्यत्प्रभाग्रेसर-
ध्वान्तश्रेणिविभक्तवासर निशाविन्यासरेखं रविः।
धत्ते कांचन काञ्चनश्रियमसौ मेरुर्गिरीणां गुरु-
र्देवैः सार्द्धमधित्यकामधिवसत्यस्यामरग्रामणीः।। वही, १०/३८

५. रामः—तत्रापि द्रविडाः। बालरा. १०/पृ. ३५८

६. रामः—वाङ्मत्वाङ्गसमुद्भवैरभिनयैर्नित्यं रसोल्लासतो
वामाङ्गयः प्रणयन्ति यत्र मदनक्रीडामहानाटकम्।
अत्रान्ध्रास्तव दक्षिणेन त इमे गोदावरीस्रोतसां
सप्तानामपि वार्निधिप्रणयिनां द्वीपान्तराणि श्रिताः।। वही, १०/७०

७. रामः—कावेरी कबरीव भामिनि भुवो देव्याः पुरोदृश्यतां
पूगैर्नागलताश्रितैरूपदिशत्याश्लेषविद्यामिव।
कर्णाटीजनमज्जनेषु जघनैर्यस्याः पयः प्लावितं
पीत्वा नाभिगुहाभिरात्तरूचिभिः प्राचीं दिशं नीयते।। वही, १०/७२

८. सुग्रीवः—भरताग्रजायमग्रे महाराष्ट्र विषयः। वही, १०/पृ. ३६०

९. त्रिजटा—इयं नर्मदा दृश्यते। वही, १०/पृ. ३६१

१०. रामः—यद्योनिः किल संस्कृतस्य सुदृशां जिह्वासु यन्मोदते
यत्र श्रोत्रपथावतारिणि कटुर्भाषाक्षराणां रसः।
गद्यं चूर्णपदं पदं रतिपतेस्तत्प्राकृतं यद्वच-
स्तांल्लाटांल्ललिताङ्गि पश्य सुदती दृष्टेर्निमेषव्रतम्।। वही, १०/७८

११. सुग्रीवः—अयमुज्जयिनीनिवासो भगवान् महाकालनाथः। वही, १०/पृ. ३६२

१२. रामः—(सीतांप्रति) यत्रार्थे न तथानुरज्यति कविर्ग्रामीणगीर्गुम्फने
शास्त्रीयासु च लौकिकीषु च यथा भव्यासु न व्योक्तिषु।

कान्यकुब्ज[1], प्रयाग[2], वाराणसी[3], मिथिला[4] का वर्णन सभी के द्वारा किया जाता है जबकि प्रसन्नराघव नाटक में रावण वध के पश्चात् जब श्रीराम, सीता और अन्य बान्धवों सहित अयोध्या आते हैं तब मार्ग में समुद्र, दण्डकारण्य, नर्मदा, यमुना[5], भरद्वाजाश्रम[6], सूर्योदय[7] और चन्द्र[8] का ही वर्णन सभी लोग करते हैं।

इस प्रकार बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों की कथावस्तु में प्रसङ्गानुसार परिवर्तन किये गये हैं। राजशेखर और जयदेव इन दोनों नाटककारों ने नाटक की कथा को सहृदय सामाजिक के लिये अधिक रोचक बनाने हेतु सम्भवतः नूतन प्रसङ्गों का प्रयोग किया है।

पाञ्चालास्तव पश्चिमेन त इमे वामा गिरां भाजना-
स्त्वद्दृष्टेरतिथीभवन्तु यमुनां त्रिस्रोतसं चान्तरा।। बालरा. १०/८६

१. रामः—इदं द्वयं सर्वमहापवित्रं परस्परालंकरणैकहेतुः।
पुरं च हे जानकि कान्यकुब्जं सरिच्च गौरीपतिमौलिमाला।। वही, १०/८६

२. रामः—(सीतां प्रति) न्यग्रोधोऽयं वन्द्यतां श्यामनामा शम्भोर्भ्रष्टा शेखराज्जाह्नवीयम्।
कालिन्दी च प्लाविता तत्पयोभिस्तीर्थं ह्येतत् स्वर्गमार्गः प्रयागः।। वही १०/९१

३. लक्ष्मणः—इयमितो भगवतो भर्गस्य केलिवासो वाराणसी-
यद्वाचंयमवृत्तयः किमपरं नीवारमुष्टिंपचाः
सत्यं ज्योतिरुपासते सुकृतिनो द्राक् संवदन्ते च नः।
नित्यासन्नतयाऽत्र खण्डपरशोर्वाराणसीवासिनः
सम्भोगैरपि सुभ्रुवां तदजरं विन्दन्ति नन्दन्ति च।। वही, १०/९२

४. रामः—अन्तेवासी यदधिवसति स्वर्मणेर्याज्ञवल्क्यो
यत्रायन्ते निमिकुलभुवः प्रत्यहं भूमिपालाः।
तत्ते चक्षुर्विशतु मिथिला मण्डलं जन्मभूमिं
यत्रोढासि त्रिनयनधनुः खण्डनाडम्बरेण।। वही, १०/९३

५. रामः—उल्लङ्घय नीरधिमतीत्य च दण्डकानि
नद्यौ च मेकलकलिन्दसुते व्यतीत्य।
प्राप्ताः शिखण्डिशतखण्डितशाखिखण्ड
मेते वयं शिखरिणं ननु चित्रकूटम्।। प्रसन्नरा. ७/७८

६. रामः—अयि! तदिदं निर्मुक्तविरोधश्वापदं भगवतो भारद्वाजस्याश्रमपदम्। वही, ७/पृ. ४३३

७. लक्ष्मणः—सद्यः संघटमानकोकमिथुनत्याजेन पीनस्तन-
द्वन्द्वव्यञ्जित यौवनीज्ज्वलरुचो निर्माय दिक्कन्यकाः।
दुर्दैवाक्षरमालिकामिव झगित्याकृष्य भृङ्गावलीं
लक्ष्मीमम्बुजिनीजनस्य तनुते देवस्त्विषामीश्वरः।। वही, ७/८२

८. रामः—तन्वि! त्वद्वदनस्य विभ्रमलवं लावण्यवारांनिधे-
रिन्दुः सुन्दरि! दुग्धसिन्धुलहरीबिन्दुः कथं विन्दतु?
उत्कल्लोलविलोचने! क्षणमयं शीतांशुरालम्बता-
मुन्मीलन्नवनीलनीरजवनीखेलन्मरालश्रियम्।। वही, ७/६५

रचना-विधान की दृष्टि से

बालरामायण तथा प्रसन्नराघव दोनों नाटक हैं। अतः दोनों में पाँचों नाट्य सन्धियों का प्रयोग हुआ है। यद्यपि रस और कथानक की दृष्टि से यथावसर सन्ध्यङ्गों का भी परिपाक इसमें दृष्टिगत है तथापि कलेवर की दृष्टि से दोनों नाटकों में भिन्नता है। बालराायण दशाङ्कपर्यवसायी नाटक है तो प्रसन्नराघव सप्ताङ्कपर्यवसायी। अतः दोनों नाटकों में घटनाक्रम के अनुरूप सन्धि-सन्ध्यङ्गों की दृष्टि से वैषम्य प्राप्त होता है।

पञ्च अर्थप्रकृतिगत और पञ्चकार्यावस्थाओं के संयोग से निर्मित मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण सन्धियों के माध्यम से यहाँ दोनों नाटकों में वैषम्य प्रस्तुत किया जा रहा है।

रचना विधान की दृष्टि से बालरामायण नाटक में मुख सन्धि प्रतिज्ञापौलस्त्यो नामक प्रथम अङ्क[1] में शुनःशेप के कथन[2] से आरम्भ होकर परशुरामरावणीयो नामक द्वितीय अङ्क[3] में रावण द्वारा सीता को देखने के समय[4] तक प्राप्त होती है।

प्रसन्नराघव नाटक के अन्तर्गत मुख सन्धि प्रथम अङ्क में सूत्रधार के कथन[5] से प्रारम्भ होकर द्वितीय अङ्क में महर्षि विश्वामित्र द्वारा यज्ञ रक्षार्थ राजा दशरथ से उनके पुत्रों राम और लक्ष्मण को माँगने तक[6] प्राप्त होती है।

बालरामायण नाटक के अन्तर्गत प्रतिमुख सन्धि विलक्षलङ्केश्वरो नामक तृतीय अङ्क७ में राम के सीता से प्रभावित८ होने से आरम्भ होकर भार्गवभङ्गो नामक

१. इति प्रतिज्ञापौलस्त्यो नाम प्रथमोऽङ्कः। बालरा./पृ. ३२

२. संप्रत्येव राक्षसभयात् सत्रे दीक्षिष्यमाणः स भगवान् रक्षितारं रामभद्रं वरीतुमयोध्यां गतः। वही, १/पृ.१३

३. इति परशुरामरावणीयो नाम द्वितीयोऽङ्कः। वही, पृ. ६०

४. रावणः—हन्त हन्त नैकप्रकारो मदनव्यापारः। यतो मम वैदेही दर्शनतः प्रभृति।
न्यञ्चत्कुञ्चितमुन्मुखं हसितवत्साकूतमाकेकरं
त्यावृत्तं प्रसरत्प्रसादि मुकुलं सत्प्रेम कम्पं स्थिरम्।
उद्भ्रूभ्रान्तमपाङ्गवृत्तिविकचं मज्जत्तरङ्गाकुलं
चक्षुः साश्रु च वर्त्तते रसवशादेकैकमन्यक्रियम्।। वही, २/१६

५. कीर्त्तिं मृणालकमनीय भुजामनिद्रचन्द्राननां स्मितसरोरुहचारुनेत्राम्।
ज्योत्स्नास्मितामपहृतां दयितामिव स्वां लब्धुं न कः परमुपक्रममातनोति।। प्रसन्नरा. १/६

६. तापसः—कौशिको नाम मुनी राजानमयोध्याधिपतिमेत्य स्वमखरक्षणाय तस्य रामनामानं तनयं सानुजं याचितवान्। तेन चावश्यं माननीयो मुनिरिति निजनयनाभ्यामपि प्रियतमौ निजतनयौ तस्य समर्पितौ। वही, २/पृ. ८८-८९

७. इति विलक्षलङ्केश्वरो नामक तृतीयोऽङ्कः। बालरा. २/पृ. १००

८. (क) समन्तात् साभोगं न च कुचविभागाञ्चितमुरो
नितम्बः स्वां लक्ष्मीमभिलषति नाद्यापि लभते।

चतुर्थ अङ्क[1] में लक्ष्मण द्वारा वैष्णव धनुष को चढ़ाने[2] के प्रसङ्ग तक प्राप्त होती है। जबकि प्रसन्नराघव नाटक के अन्तर्गत द्वितीय अङ्क में सीता द्वारा राम में आसक्ति[3] को प्रकट करने से आरम्भ होकर तृतीय अङ्क में भार्गव मुनि द्वारा जनक के प्रति कही गयी उक्ति[4] तक प्रतिमुख सन्धि का समावेश है।

नाट्य सन्धि की दृष्टि से बालरामायण नाटक में गर्भ सन्धि उन्मत्तदशाननो नामक पाँचवें अङ्क[5] में रावण के मन्त्री माल्यवान् द्वारा कठपुतली सीता के निर्माण[6] से प्रारम्भ होकर असम पराक्रमो नामक सप्तम अङ्क[7] में राम द्वारा रावण के वध पर्यन्त अपनी प्रशंसा न करने की आज्ञा देने[8] तक प्राप्त होती है जबकि प्रसन्नराघव

दृशो लीलामुद्रा स्फुरति च न चातिस्थितिमती
तदस्यास्तारूण्यं प्रथममवतीर्णं विजयते।। वालरा. ३/२१

(ख) वहतु धनुरसङ्गादैक्षवं वैणवं वा प्रहरतु च पृषत्कैः कौसुमैरायसैर्वा।
तदपि मकरकेतुर्मूर्ध्नि धन्वीश्वराणामियमिह युवभावं यावदङ्गीकरोति।। वही, ३/२२

(ग) उत्तालालकभञ्जनानि कवरीपाशेषु शिक्षारसो
दन्तानां परिकर्म नीविनहनं भ्रूलास्ययोग्याग्रहः।
तिर्यग्लोचनवर्तितानि वचसां छेकोक्तिसङ्क्रान्तयः
स्त्रीणां म्लायति शैशवे प्रतिपलं कोऽप्येष केलिक्रमः।। वही, ३/२३

१. इति भार्गवभङ्गो नाम चतुर्थोऽङ्कः। वही, ४/पृ. १३७

२. दोर्दण्डन्यासलीलानमदटनि तडत्कारि नारायणीयं
सद्यः सज्जीकृतज्यं विरचयति धनुर्लक्ष्मणे स्थामलक्ष्म।
रामस्याद्यस्य दत्तं मुखशशिनि पदं कालिकालाञ्छनेन
न्यस्तं नव्यस्य भव्ये कुमुदवनभुवा द्राक्स्मितज्योत्स्नया च।। वही, ४/७४

३. विकसितपेशलोत्पलोत्पलाशपुञ्जश्यामलो
महेशसौम्यशेखरस्फुरत्सोमकोमलः।
लतागृहे कोऽयमनङ्गरूपखण्डनो
विलोचनयोर्ददाति मे सुखं शिखण्डमण्डनः।। प्रसन्नरा. २/२१

४. कस्मैचिद्देहि कन्यां नरपतिशिशवे दीर्घमायुर्लभस्व
व्यावर्तस्वाप्रियान्नः पुरमथधनुःकर्षणालापपापात्।
नो चेदन्योऽस्त्युपायस्तव कलुषमषीपङ्कसंक्षालनाया-
मस्मद्विस्तारिधाराञ्चलबहलपयः पूरदूरावगाहः।। वही, ३/३८

५. उन्मत्तदशाननो नाम पञ्चमोऽङ्कः। बालरा. ५/पृ. १७३

६. सूत्रधारचलद्दारुगात्रेयं यन्त्रजानकी।
वक्त्रस्थसारिकालापा लङ्केन्द्रं वञ्चयिष्यति।। वही, ५/६

७. इति असमपराक्रमो नाम सप्तमोऽङ्कः। वही, ७/पृ. २५५

८. ननु रामदेवेन निषिद्धमात्मोपवर्णनमादशरथस्वर्गारोहणश्रुतेरादशकण्ठबन्धम्।
वही, ७/पृ. २१८

नाटक में गर्भ सन्धि चतुर्थ अङ्क के अन्तर्गत लक्ष्मण द्वारा परशुराम के विषय में अनुमान लगाने[1] से प्रारम्भ होकर पाँचवें अङ्क में सागर द्वारा अपने ऊपर हनुमान को देखे जाने[2] के प्रसङ्ग तक दिखायी पड़ती है।

रचना विधान की दृष्टि से बालरामायण नाटक के अन्तर्गत विमर्श सन्धि असमपराक्रमो नामक सप्तम अङ्क[3] में राम द्वारा समुद्र की उपासना किये जाने से प्रारम्भ होकर[4] वीरविलासो नामक अष्टम अङ्क[5] में रावण के विलाप[6] तक दिखायी पड़ती है। जबकि प्रसन्नराघव नाटक में यह सन्धि छठे अङ्क में राम के कथन से आरम्भ होकर[7] सातवें अङ्क में विद्याधर के कथन[8] तक प्राप्त होती है।

---

१. मौर्वी धनुस्तनुरियं च बिभर्ति मौञ्जीं बाणाः कुशाश्च विलसन्ति करे सितायाः।
धारोज्ज्वलः परशुरेष कमण्डलुश्च तद्वीरशान्तरसयोः किमयं विकारः।। प्रसन्नरा. ४/१५

२. विलासैर्दम्भोलेर्दलितगरुतः सर्वगिरयः स चैको मैनाकः पयसि मम मग्नो निवसति।
अये कोऽयं शैलः स्फुरदमितगव्यूतिमहिमा हिमाद्रिर्विन्ध्यो वा लघुतरगतिर्लङ्घयति माम्।।
बालरा. ५/३३

३. इति असमपराक्रमो नाम सप्तमोऽङ्कः। वही, ७/पृ. २५५

४. सुग्रीवे प्रणयोल्लसाः शशधरे बद्धाभ्यसूयाश्चिरं
साश्चर्याः पवनात्मजे धृतरुषः पौलस्त्यवत्पांदिशि।
सोत्साहाश्च शरासने जलनिधौ क्षुब्धाश्च कृत्स्नां निशां
रामस्याद्य नियन्तुमेव न गता नानारसा दृष्टयः।। वही, ७/१७

५. इति वीरविलासो नामाष्टमोऽङ्कः। वही, ८/पृ. ३०२

६. (क) शेषः सोढ्याऽपि शङ्कां त्यजति न भवता कण्ठसूत्रार्धकृष्टो
गौरीसिंहेन्द्रदन्तिद्वितयरणविधिं त्वत्प्रणीतं स्मरामि।
तच्चास्ते त्वच्चरित्रं लिखितमिव पुरो मद्दृशां यत्सुमेरु-
र्वत्सेनोदस्यमानो रचितचटुशतं मोचितः स्वर्गिवर्गैः।। वही, ८/८४

(ख) आकर्णाकृष्टचापोन्मुखविशिखशिखाशेखरः शूलपाणि-
र्बिभ्राणो भैरवत्वं बहलकहकहारावरौद्राट्टहासः।
ध्यातः सौमित्रिणाऽथ प्रसरदुरुतरोत्तालवेतालताल-
स्तद्वक्त्रादुद्भवद्भिः समजनि शिखिभिर्भस्मसादिन्द्रजिच्च।। वही, ८/८५

(ग) शेतां सम्प्रति वासवश्चिरभवन्निद्राजडैर्लोचनै-
र्जायन्ता विबुधोपयोग्यकुसुमाः सर्वेऽपि दिव्यद्रुमाः।
बन्धाः स्वर्गसदां च सन्त्वनिगडाः प्राप्तोऽसि तं गोचरं
मद्वक्त्रैरपि वत्स नाम दशभिर्वक्तुं न यः शक्यते।।

७. यां वै गर्भे त्रिजगदबलारत्नभूतां दधाना लब्धार्थत्वाज्जगति भवती रत्नगर्भा बभूव।
तामुत्सङ्गे तव विलुलितां वीक्षमाणा च सीतां द्राग्दीर्णासीन्न कथमथवा देवि सर्वं सहासि।।
प्रसन्नरा. ६/१७

८. येयं विभीषणे शक्तिर्मुक्ता क्रूरेण रक्षसा।
लक्ष्मणेन गृहीतेयं प्रियेव निजवक्षसा।। वही, ७/२८

नाट्य सन्धि की दृष्टि से बालरामायण नाटक में निर्वहण सन्धि का समावेश रावण वध नामक नवम अङ्क[1] के अन्तर्गत इन्द्र द्वारा यमराज से जिज्ञासा करने से[2] प्रारम्भ होकर राघवानन्द नामक दसवें अङ्क[3] में राम द्वारा सत्काव्यों के निर्माण और उनके समाज की शुभाशंसा[4] तक प्राप्त होता है।

जबकि प्रसन्नराघव में यह सन्धि सप्तम अङ्क में रावण वधऽनन्तर विद्याधरी के कथन[5] से प्रारम्भ होकर सप्तम अङ्क के अन्त में राम और सुग्रीव द्वारा भरत वाक्य[6] तक दिखायी पड़ती है।

उपर्युक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि बालरामायण और प्रसन्नराघव दोनों ही नाटकों में कथा का प्रवाह ऐसा है कि स्वतः ये सन्धियाँ आकर कथा को प्रवाहित कर गयी हैं इसलिये पञ्चसन्धियों का प्रयोग विवेच्य नाटकों में निहित कथा को उनके अङ्गों की दृष्टि से सजीव तथा अभिनेय बनाने में पर्याप्त सफल हुआ है।

अर्थोपक्षेपक की दृष्टि से

आचार्य धनञ्जय और धनिक के अनुसार—समस्त कथावस्तु का फिर से दो तरह का विभाजन होता है। इस वस्तु के कुछ अंश केवल सूच्य होते हैं अर्थात् उनकी केवल सूचना दी जाती है, उन्हें मञ्च पर दिखाया नहीं जाता। दूसरे अंश दृश्य तथा

---

१. रावणवधो नाम नवमोऽङ्कः। बालरा. ९/पृ. ३३०

२. कदा केषां च केभ्यश्च क्षयो लङ्कानिवासिनाम्।
रामत्तु दशकण्ठस्य किंविधो भविता वधः।। वही, ९/२

३. राघवानन्दो नाम दशमोऽङ्कः। वही, १०/पृ. ३७२

४. सम्यक्संसारविद्याविषदमुपनिषद् भूतमर्थाद्भुतानां
ग्रन्थन्तु ग्रन्थिबन्धं वचनमनुपतत्सूक्तिमुक्ताः सुयुक्ताः।
सन्तः सन्तर्पितान्तःकरणमनुगुणं ब्रह्मणः काव्यमूर्ते-
स्तत्तत्वं सात्विकैश्च प्रथमपिशुनितं भावयन्तोऽर्चयन्तु।। वही, १०/१०५

५. पश्य पश्य, अयमसमसमरकदर्थितं प्रदेशमवतरति रामचन्द्रः। प्रसन्नरा. ७/पृ. ४१०

६. (क) आ बालाद् वदनाम्बुजे तनुभृतां सारस्वतं जृम्भतां
देवे कौस्तुभधाम्नि चन्द्रमुकुटेऽद्वैता मतिः खेलतु।
वाग्देव्या सह मुक्तवैशसरसा देवीव दीव्यादियं
शेषस्येव फणाञ्चलेषु सततं लक्ष्मीः सतां सद्मसु।। वही, ७/६४

(ख) जायन्तामविरामरामचरितक्रीडाभिरामाः सता-
मुन्मीलन्नवमल्लिकाविरचितस्रग्दामरम्या गिरः।
याः कण्ठेऽपि निवेश्य पेशलधियो रोमाञ्चलीलाञ्चिताः
कान्ताबाहुलताविलास महिमा श्लेषांस्तृणं मन्वते।। वही, ७/६५

श्रव्य दोनों होते हैं, उन्हें मञ्च पर दिखाया जाता है, वे सुने भी जाते हैं।[1]

दशरूपककार ने सूच्य कथावस्तु का अर्थोपक्षेपक के रूप में पाँच प्रकार से प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार सूच्य वस्त्वंशों की सूचना पाँच प्रकार के अर्थोपक्षेपकों के द्वारा की जाती है। वे अर्थोपक्षेपक हैं—विष्कम्भ (विष्कम्भक), चूलिका, अंकास्य, अंकावतार तथा प्रवेशक।[2]

बालरामायण तथा प्रसन्नराघव नाटकों की कथावस्तु के अन्तर्गत अर्थोपक्षेपक की दृष्टि से वैषम्य प्रस्तुत किया जा रहा है—

विष्कम्भक

दशरूपककार ने विष्कम्भक की परिभाषा देते हुये कहा है कि विष्कम्भक नाटक में घटित घटनाओं या भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का वह सूचक है, जिसमें मध्यमपात्रों के द्वारा संक्षेप में इन कथांशों की सूचना दी जाय।[3]

यह विष्कम्भक शुद्ध तथा संकीर्ण दो तरह का होता है।[4]

बालरामायण नाटक में प्रथम अङ्क में विष्कम्भक रावण की सीता के प्रति कही गयी उक्ति से[5] आरम्भ होकर द्वितीय अङ्क में भृङ्गिरिटि नामक पात्र के संवाद से समाप्त होता है।[6]

इसी प्रकार तृतीय अङ्क में रावण के संवाद[7] से प्रारम्भ होकर चतुर्थ अङ्क में उपाध्याय नामक पात्र के संवाद तर्क[8] और पञ्चम अङ्क में रावण की सीता को देखने

१. द्वेधा विभागः कर्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः।
सूच्यमेव भवेत् किञ्चिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्।। द. रू. १/५६
२. अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत्।
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतार प्रवेशकैः।। वही, १/५८
३. वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
सङ्क्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।। वही, १/५६
४. एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः। वही, १/६०
५. यस्यारोपणकर्मणाऽपि बहवो वीरव्रतं त्याजिताः
कार्यं सज्जितबाणमीश्वरधनुस्तद्दोर्भिरेभिर्मया।
स्त्रीरत्नं तदगर्भसम्भवमितो लभ्यं च लीलायिता
तेनैषा मम फुल्लपङ्कजवनी जाता दृशां विंशतिः।। बालरा. १/३०
६. भृङ्गिरिटि—अहमपि प्रस्तुतकार्यसिद्धयै (इति निष्क्रान्तौ) वही, २/पृ. ३६
७. रावणः—(मदनाकूतमभिनीय) हृदयदिष्टया वर्द्धसे सीताप्रतिकृतिदर्शनेन। वही, ३/पृ. ६७
८. उपाध्यायः—वत्स भवभूते! कलहकुतूहलीनारदमुनिर्महर्षीन् देवानप्सरसो विद्याधरान् सिद्धांश्च हठप्रसादाभ्यामभिधत्ते तदेह्यावमपि तत्समरोपस्थानेन कमलसम्भवसम्भवमुनिमनुवतमिहे।
वही, ४/पृ.१०५

की उत्कण्ठा[1] से मायामय नामक पात्र के कथन[2] इत्यादि अनेक प्रसङ्गों में विष्कम्भक का प्रयोग दिखलायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में दाल्भ्यायन नामक पात्र का कथन विष्कम्भक के अन्तर्गत आता है।[3] इसके अतिरिक्त द्वितीय अङ्क में भिक्षु नामक पात्र का कथन[4] और सातवें अङ्क में करालक नामक पात्र का कथन[5] इत्यादि प्रसङ्ग विष्कम्भक के लिये प्रयुक्त हुये हैं।

प्रवेशक

दशरूपक धनञ्जय कहते हैं कि प्रवेशक अतीत और भावी कथांशों की सूचना देता है। इसमें प्रयोग की गयी उक्ति उदात्त नहीं होती, इसकी भाषा सदा प्राकृत होगी और यह प्राकृत भी शिष्ट (शौरसेनी) प्राकृत न होकर मागधी, शकारी आदि अशिष्ट प्राकृत होगी, इसमें नीच पात्रों का प्रयोग होता है। प्रवेशक की योजना दो अङ्कों के बीच ही की जाती है, यह शेष अर्थों का सूचक है।[6]

बालरामायण नाटक में प्रवेशक अर्थोपक्षेपक का प्रयोग नहीं प्राप्त होता है, जबकि प्रसन्नराघव नाटक के तृतीय अङ्क में प्रवेशक का प्रयोग वामनक और कुब्जक के परस्पर वार्तालाप द्वारा प्राकृत भाषा में किया गया है। तृतीय अङ्क में वामनक कहता है कि ये कौशिक मुनि, कर्णभूषण धारण किये हुये, ताटका को शीघ्र मारने वाले कमल

---

१. रावणः—न प्रीते परमेश्वरेऽपि शिरसां छेदेन होमेन वा
ज्यावल्लीनहनेन चामरपतौ द्वारार्गलासङ्गिनि।
संयत्यैलविलात्तथा न च हते विश्वातिथौ पुष्पके
द्रष्टव्या जनकात्मजेत्यथ यथा लङ्केश्वरो मोदते।। बालरा. ५/८

२. मायामयः—मया मूर्ध्नि प्रह्वे पितुरिति धृतं शासनमिदं
स यक्षो रक्षो वा भवतु भगवान् वा रघुपतिः।
निवर्तिष्ये सोऽहं भरतकृतरक्षां निजपुरीं
समाः सम्यङ्नीत्वा वनभुवि चतस्रश्चदश च।। वही, ६/११

३. अहो! घुणाक्षरन्यायोयदिदं भ्रमरद्वयं प्रतिमयोक्तं वन्दिद्वयं प्रतिफलितं वचः।
भवतु! तदिमं भ्रमरवृत्तान्तमस्मद्गुरवे निवेदयामि।। प्रसन्नरा. १/पृ. ४५

४. भिक्षुः—श्रुतं मया कौशिकानुपदं तदाश्रमान्मिथिलां प्रति प्रचलिता विति।
(विलोक्य) (सत्रासम्) कथमिमौ तावित एवाभिवर्त्तेते। तदस्य निशाचरवैरिणो रामस्य पुरतः स्थातुमनुचितमावयोः। वही, २/पृ. १०५

५. करालकः—कथमयं प्रहस्तो राजद्वारमुपसर्पति? तदस्य हस्ते चित्रपटमर्पयिष्ये। भवानपि समीहितं साधयतु। वही, २७/पृ. ४२०

६. तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।। द. रू. १/६०-६१

के समान सुन्दर नेत्र वाले, मनोरञ्जन के लिये मयूरपङ्ख को धारण करने वाले लक्ष्मण सहित राम के साथ इधर आ रहे हैं।[1]

वामनक कहता है कि (हर्ष और आश्चर्य के साथ) आश्चर्य है, जो सभी लोकों को भयभीत करने वाली ताड़का नाम की राक्षसी सुनी जाती है, उसे यदि इन्होंने मारा है तो इनमें शिवधनुष के चढ़ाने की सम्भावना की जा सकती है। तो आओ, इस कर्णामृतरस को रानियों से कहें।[2]

यहाँ वामनक ने चतुर्थ अङ्क में घटित होने वाली धनुर्भङ्ग की घटना का सङ्केत दे दिया है, अतः यहाँ प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपक है।

चूलिका

दशरूपककार कहते हैं कि जहाँ अर्थ की सूचना जवनिका के उस ओर अन्दर बैठे पात्रों के द्वारा दी जाय, वहाँ चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक होता है।[3]

बालरामायायण नाटक की कथा में अनेक स्थलों पर चूलिका अर्थोपक्षेपक का वर्णन मिलता है। प्रथम अङ्क में प्रस्तावना के समय राजशेखर की प्रशंसा के सन्दर्भ में नेपथ्य में गाया जाता है कि शशाङ्कमण्डल का परित्याग करने वाले देवगण राहु से व्याकुल चन्द्रमा का उल्लेख कर रहे हैं।[4] इसी प्रकार रावण से युद्ध करने के लिये परशुराम का आना[5], रावण की जयजयकार[6], नारद द्वारा सभी देवताओं को युद्ध देखने के लिये कहना[7], प्रहस्त नामक पात्र द्वारा सभी देवताओं, ऋतुओं और नदियों को

---

१. ताटङ्किना झटिति ताडितताटकेन रामेण पद्मरमणीय - विलोचनेन।
क्रीडाशिखण्डकधरेण स-लक्ष्मणेन साकं मुनिः कुशिकसूनुरितोऽयमेति।। प्रसन्नरा. ३/१

२. वामनक.—(सहर्षविस्मयम्) अहो! या किल सकललोक भीषणा राक्षसी ताटकेति श्रूयते साऽनेन यदि ताडिता तदस्मिन्हरचापारोपणमपि सम्भाव्यते। तदेहि! इमं कर्णसुधारसं भट्टिनीभ्यः समर्पयामः। वही, ३/पृ. १५७

३. अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना। द. रू. १/६१

४. (नेपथ्ये गीयते)—
मुक्तहरिणाङ्कमण्डलपार्श्वप्रसरो बुधो विबुध वर्गः।
अवतीर्य राहुविधुरं नलिनीनाथं समुल्लिखति।। बालरा. १/१६

५. (नेपथ्ये)—
स एव भृगुपुङ्गवो गिरिशबालशिष्यो मुनिः परश्वधशिखाशुशुक्षणिहुताखिलक्षत्रियः।
उपैति धृतमत्सरो गुरुशरासनन्यक्कृतेः क्व नाम दशकन्धरो वहतु चन्द्रहासं करे।।
वही, २/२४

६. (नेपथ्ये) जयजय त्रिजगत्पते पौलस्त्य सुखाय सायंतनी सन्ध्या भवतु देवस्य। वही ३/पृ. ६७

७. (नेपथ्ये)—
अत्रे पुलस्त्य पुलह प्रतिथे सुगीथ शाण्डिल्य कुण्डिनविभाण्डक याज्ञवल्क्य।
काव्ये वसिष्ठ यम दत्त पदं रणाय शापेन निर्दहति नारद एष नो चेत्।। वही, ४/४

रावण की कामशान्ति के उपाय करने के लिये कहना[1], इत्यादि अनेक प्रसङ्गों में चूलिका का प्रयोग दिखलायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में भी चूलिका अर्थोपेक्षक का सुन्दर परिपाक दिखलायी पड़ता है। प्रथम अङ्क में सूत्रधार के कथन में चूलिका के दर्शन होते हैं।[2]

इसके अतिरिक्त सखी द्वारा सीता के लिये कहे गये कथन में[3], शतानन्द ऋषि द्वारा नगर की सजावट का आदेश देने पर[4] राम से युद्ध के लिये परशुराम के आने[5] की सूचना में यमुना और गोदावरी नदियों के परस्पर वार्तालाप में[6], लक्ष्मण और उनके मित्र रत्नशेखर के परस्पर वार्तालाप[7] में और रावण को मेघनाद तथा कुम्भकर्ण की मृत्यु की सूचना मिलने[8] इत्यादि अनेक प्रसङ्गों में चूलिका का प्रयोग किया गया है।

---

१. (नेपथ्ये)—
राहो तर्जय भास्करं वरुण हे निर्वाप्यतां पावकः
सर्वे वारिमुचः समेत्य कुरुत ग्रीष्मस्य दर्पच्छिदम्।
प्रालेयाचल चन्द्र दुग्धजलधे हेमन्त मन्दाकिनि
द्राग्देवस्य गृहानुपेत भवतां सेवाक्षणो वर्त्तते।। बालरा. ५/२२

२. (नेपथ्ये)—
साधु भोः! कुशीलवोत्तंस! साधु। प्रसन्नरा. १/पृ. ३७

३. (नेपथ्ये)—
भर्तृदारिके! इतः इतः। प्रसन्नरा. २/पृ. ११२

४. (नेपथ्ये)—
पयोभिः सिच्यन्तां बहलविलसत्कुङ्कुमरसैः
प्रसूनैः कीर्यन्तां परिमलमिलल्लोलमधुपैः।
चतुष्कैः पूर्यन्तामविरललसन्मौक्तिकगणै-
र्मुदा पौरस्त्रीभिर्नगरपथरथ्याङ्गणभुवः।। वही, ३/६

५. (पुनर्नेपथ्ये)—
अरे क्षत्रियाः। अपसरत लोचनपथात्। नन्वयम्—
कुर्वन कोपादुदञ्चद्रविकिरणसटापाटलैर्दृष्टिपातै-
रद्यापि क्षत्रकण्ठच्युतरुधिरसरित्सिक्तधारं कुठारम्।
तीव्रैर्निःश्वासपातैः पुनरपि भुवनोत्पातमासूचयद्भि-
र्गर्जन्मौर्वीकचापस्त्रिभुवनविजयी जामदग्न्यः समेति।। वही, ४/२

६. (नेपथ्ये)—
सखि! कालिन्दि! वर्धसे। वही, ५/पृ. ३४०

७. (नेपथ्ये)—
सखे! रत्नशेखर! चिराद् दृश्यसे। वही, ६/पृ. ३५७

८. (पुनर्नेपथ्ये)—
हा! पतङ्गौ दशरथसुतयोर्दारुणे बाणवह्नौ। वही, ७/पृ. ४४०

अङ्कावतार

दशरूपककार कहते हैं कि जहाँ प्रथम अङ्क की वस्तु का विच्छेद किये बिना दूसरे अङ्क की वस्तु चले, वहाँ अङ्कावतार नामक अर्थोपक्षेपक होता है।[1]

राजशेखरविरचित बालरामायण नाटक में पञ्चम अङ्क की समाप्ति पर शूर्पणखा नाक कटाकर लौटती है उसको देखकर रावण क्रोध से प्रज्वलित हो उठता है और कहता है कि अरे राम के विनाश के लिये दो कारण हो गये सीता और शूर्पणखा।[2] षष्ठ अङ्क के आरम्भ में शूर्पणखा के अपमान से क्रुद्ध रावण प्रतिशोध लेना चाहता है। शूर्पणखा मायामय से कहती है कि आर्य! तुमने मातामह की उस समय की मन्त्रणा जान ली कि राम के प्रति वैर वाली शूर्पणखा तथा कुलपुत्र मायामय ये दोनों कार्यसिद्धि में कारण हैं।[3]

यहाँ पञ्चम अङ्क में जिस प्रसङ्ग से कथा समाप्त होती है, छठे अङ्क में उसी प्रसङ्ग से प्रारम्भ होती है, अतः अङ्कावतार नामक अर्थोपक्षेपक है।

जयदेव विरचित प्रसन्नराघव नाटक में अङ्कावतार नामक अर्थोपक्षेपक का प्रयोग नहीं दिखायी पड़ता है।

अङ्कास्य

दशरूपककार कहते हैं कि जहाँ एक अङ्ग की समाप्ति के समय उस अङ्क में प्रयुक्त पात्रों के द्वारा किसी छूटे हुये अर्थ की सूचना दी जाती है वहाँ अङ्कास्य नामक अर्थोपक्षेपक होता है।[4]

बालरामायण नाटक में चतुर्थ अङ्क की समाप्ति पर राम द्वारा भार्गव के प्रति कहे गये कथन द्वारा अगले अङ्क में परशुराम और राम के मध्य युद्ध की सूचना मिलती है, राम कहते हैं कि भगवन् भार्गव! हाथ में धनुष और तरकस में तीर रहते हुये अपने यश का पराक्रम दिखाइये। वीर की बकवाद (आत्मश्लाघा) व्यर्थ है[5] तत्पश्चात् पञ्चम अङ्क में माल्यवान् और मायामय के वार्तालाप से पता चलता है कि

---

१. अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः। द. रू. १/६२

२. रावणः—(स्वगतम्) अये दाशरथिविनाशाय कारणद्वयी संपन्ना सीता शूर्पणखा च। बालरा. ५/पृ. १७३

३. शूर्पणखा—आर्य अभिज्ञातं त्वया मातामहस्य तत्कालमन्त्रितं यथा किल रामे सुबद्धवैरा शूर्पणखा कुलपुत्रको मायामयस्तौ द्वावप्येतौ कार्यसिद्धेः कारणे इतिनियुक्तौ। वही, ६/पृ. १७४

४. अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्। द. रू. १/६२

५. रामः—भगवन् भार्गव!
करस्थे सति कोदण्डे तूणीरस्थेषु पत्रिषु।
विधत्स्व स्वयशोवीर्यं किं वीरस्य विकत्थया।। बालरा. ४/८३

राम और परशुराम के युद्ध में राम ने परशुराम पर विजय प्राप्त कर ली है, माल्यवान् कहता है कि क्षत्रियों के नाशकर्ता, च्यवन के वंशज, शम्भु के शिष्य तथा वृद्ध परशुराम को विश्वामित्र से प्राप्त विद्योपदेश, दशरथ से उत्पन्न क्षत्रियों में ज्येष्ठ, बालक सूर्यवंशीराम ने गतिभेदी बाण से जीत लिया।[1]

यहाँ पर चतुर्थ अङ्क में छूटी हुयी कथा की सूचना पञ्चम अङ्क के आरम्भ में माल्यवान् और मायामय नामक पात्रों के परस्पर वार्तालाप के माध्यम से दी गयी है। अतः अङ्कास्य अर्थोपक्षेपक दिखायी पड़ता है। इसी प्रकार सातवें अङ्क की समाप्ति सिंहनाद और राम के मध्य परस्पर युद्ध के वार्तालाप[2] से होती है और अष्टम अङ्क का आरम्भ सुमुख और दुर्मुख नामक पात्रों के परस्पर वार्तालाप से होता है जिसमें सिंहनाद के वध की सूचना[3] प्राप्त होती है, उपर्युक्त प्रसङ्गों में अङ्कास्य अर्थोपक्षेपक दिखायी पड़ता है। इस प्रकार बालरामायण में अङ्कास्य का प्रयोग दो स्थलों पर हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में एक ही स्थान पर अङ्कास्य अर्थोपक्षेपक का प्रयोग हुआ है। द्वितीय अङ्क की समाप्ति पर राम और लक्ष्मण के परस्पर वार्तालाप द्वारा ज्ञात होता है कि राम, महाराज जनक, मिथिला और सीता को देखने के लिये उत्सुक हैं। राम कहते हैं कि वत्स! अधिक वर्णन बन्द करो। आओ, सायङ्कालीन देवपूजन योग्य पुष्पों के उपहार से भगवान् विश्वामित्र की सेवा करें[4] तत्पश्चात् तृतीय अङ्क का प्रारम्भ वामनक और कुब्जक नामक पात्रों के परस्पर वार्तालाप से होता है, वे दोनों भी सीता विषयक वार्तालाप करते हैं। कुब्जक कहता है कि अरे! नहीं जानते हो। इनके भी दो कुमार हैं और हमारे भी दो कुमारिकायें हैं, इसलिये मैं सोचता हूँ कि ये हमारे सम्बन्धी होगें।[5] यहाँ द्वितीय अङ्क में सीता-स्वयंवर की छूटी हुयी कथा की सूचना तृतीय अङ्क के आरम्भ में वामनक और कुब्जक नामक पात्रों के माध्यम से प्राप्त होती है। अतः यहाँ अङ्कास्य नामक अर्थोपक्षेपक है।

---

१. माल्यवान्—शम्भोः शिष्यं कुशिकमुनितः प्राप्तविद्योपविद्यः
क्षुण्णक्षत्रं दशरथ भुवामग्रणीः क्षत्रियाणाम्।
वृद्धं बालश्च्यवनकुलजं भास्वतो वंशजन्मा
रामं रामो व्यजयत गतिच्छेदिना सायकेन।। बालरा. ५/५

२. रामः—(धनुरुद्यम्य) रे रे राक्षसपोत! त्वमपि प्रत्यवकोर्यसे। किन्तुलङ्कापुरीगोपुरपरिसरवसुन्धरासु शरविक्षेपाद्दिदृक्षुपौरजना उद्विजिता भवन्ति तत् किञ्चिदुपसृत्य समरसंरम्भमारभामहे। वही, ७/पृ. २५५

३. (सुमुखः) एकः—सखे दुर्मुख! किमपि महान् सत्त्वभ्रंशो रावणस्य यत्कुमारसिंहनादवधमत्याकर्ण्य न शोकः कृतो नाप्यमर्षः। वही, ८/पृ. २५६

४. रामः—वत्स! अलमतिप्रसङ्गेन! तदेहि, सायन्तनत्रिदशार्चनोचितकुसुमोपायनेन भगवन्तं गाधिनन्दनमुपास्महे। प्रसन्नरा. २/पृ. १४८

५. कुब्जकः—अरे! न जानासि। अस्यापि द्वौ कुमारौ। अस्माकमपि द्वे कुमारिके। तत्तर्कयामि सम्बन्धिजनो भविष्यतीति। वही, ३/पृ. १५६

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों में पञ्च अर्थोपक्षेपकों विष्कम्भक, चूलिका, अङ्कास्य, अङ्कावतार और प्रवेशक का प्रयोग किया गया है।

परन्तु जहाँ एक ओर बालरामायण में प्रवेशक का प्रयोग राजशेखर ने नहीं किया है तो दूसरी ओर प्रसन्नराघव में अङ्कावतार का प्रयोग दृष्टिगत नहीं होता है।

(नाट्यधर्म की दृष्टि से) संवाद की दृष्टि से

नाट्यधर्म से तात्पर्य है—नाटक का स्वभाव अर्थात् नाट्यशास्त्र की मर्यादा। नाट्यधर्म की दृष्टि से दशरूपककार ने कथावस्तु के तीन भेद किये हैं।[1] उनके अनुसार—कुछ सबके लिये सुनने लायक (सर्वश्राव्य) होता है, कुछ परिमित लोगों के लिये सुनने लायक नहीं (अश्राव्य) होता है।[2]

बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों में सर्वश्राव्य, नियतश्राव्य और अश्राव्य इन तीनों भेदों का प्रयोग दिखायी पड़ता है।

सर्वश्राव्य

दशरूपककार कहते है कि सर्वश्राव्य कथनोपकथन प्रकाश कहलाता है।[3]

बालरामायण नाटक की कथा दस अङ्कों में विभक्त है, इसमें प्रथम अङ्क से दशवें अङ्क तक सर्वश्राव्य घटनाओं का बहुलता से प्रयोग हुआ है। प्रथम अङ्क में सूत्रधार कहता है कि (प्रकाश में) मारिष! रसान्तर के कारण मेरा मन स्थिर नहीं है।[4] इसी प्रकार कथावस्तु की आवश्यकतानुसार अनेक स्थलों पर सर्वश्राव्य भेद दिखायी पड़ता है। जैसे—नारद द्वारा राम और रावण के मध्य युद्ध की योजना करने में[5], प्रतीहारी नामक पात्र द्वारा हैहयकुमार की गर्व गरिमा को बताते समय[6], रावण द्वारा सीता के प्रति कहे गये कथन[7] इत्यादि।

---

१. नाट्यधर्ममपेक्ष्यैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते। द. रू. १/६३

२. सर्वेषां नियतस्यैव श्राव्यमश्राव्यमेव च। वही, १/६४

३. सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्। वही, १/६४

४. सूत्रधारः—(प्रकाशम्) मारिष। रसान्तरेण नावहितं मे चेतः। तद्भवानेव वाचयतु। बालरा. १/पृ.३

५. नारदः—(प्रकाशम्) भूभुर्वः स्वस्त्रितयवासिभिरप्यनुल्लङ्घनीयो देवादेशः। तदहं ब्रह्मणः सदनं प्रति तावद्यास्यामि। वही, २/३८

६. प्रतीहारी—(प्रकाशम्) त्रैयम्बकेऽपि कोदण्डे दोर्दण्डमदडामरः।
अयमाद्रियते वीरो नारोपणपणक्रियाम्।। वही, ३/३७

७. रावणः—(प्रकाशम्) ननुजानकीदयितदर्शनेनेति सम्प्रति वक्तव्यं भवति सहर्षम्। वही, ५/पृ. १४६

प्रसन्नराघव नाटक सात अङ्कों में विभक्त है। प्रथम अङ्क में मञ्जीरक नामक पात्र पुरुष से कहता है कि (प्रकट रूप में) इतने वीरों के समुदाय में तुम्हीं नक्षत्रविद्या में कुशल हो।[१] इसी प्रकार सखी द्वारा सीता के प्रति कहे गये वचन[२], विश्वामित्र द्वारा जनक के प्रति कही गयी उक्ति[३] और भार्गव के राम के प्रति कहे गये वचनों[४] इत्यादि प्रसङ्गों में सर्वश्राव्य भेद दिखायी पड़ता है।

नियतश्राव्य

दशरूपककार कहते हैं कि नियतश्राव्य वस्तु दो प्रकार की होती है—

१. जनान्तिक तथा २. अपवारित[५]

जनान्तिक

आचार्य धनञ्जय कहते हैं कि जहाँ दूसरे पात्रों के विद्यमान रहते हुये भी दो पात्र आपस में इस तरह मन्त्रणा करें कि उसे दूसरों को न सुनाना अभीष्ट हो तथा दूसरे पात्रों की ओर त्रिपताकाकर के द्वारा हाथ से सङ्केत कर इस बात की सूचना दी जाय कि उनका वारण किया जा रहा है। वहाँ जनान्तिक नामक नियतश्राव्य होता है।[६]

बालरामायण नाटक के अन्तर्गत जनान्तिक का प्रयोग आठवें अङ्क में प्राप्त होता है। करङ्क कहता है कि (जनान्तिक) मित्र कङ्कालक! स्वामी कुम्भकर्ण को जगा रहे हैं, क्योंकि प्रयत्न से जगाये जाने पर भी ये राम के द्वारा दीर्घनिद्रा को प्राप्त करेंगे।[७] एक अन्य स्थल पर सुमुख तथा दुर्गुण नामक पात्रों के परस्पर संवाद के मध्य जनान्तिक का प्रयोग दिखलायी पड़ता है।[८]

प्रसन्नराघव नाटक के प्रथम अङ्क से सप्तम अङ्क तक जनान्तिक संवाद नहीं प्रयुक्त हुआ है।

---

१. मञ्जीरकः—(प्रकाशम्) अये! एतावति वीरमण्डले त्वमेव नक्षत्रविद्याकुशलः। प्रसन्नरा. १/पृ. ५३

२. सखी—(प्रकाशम्) कथमद्यापि हृदयं न मुञ्चति ते प्रणयकोपः? वही, २/पृ. १३२

३. विश्वामित्रः—(प्रकाशम्) राजर्षे! स एष सौन्दर्यातिशयस्य महिमा। वही, ३/१८०

४. भार्गवः—(प्रकाशम्) दाशरथे। इयमसौ मे त्वयि सदाचारानुसारिणी वागृवृत्तिरेव। वही, ४/पृ. २३७

५. द्विधाऽन्यत्राट्यधर्माख्यं जनान्तमपवारितम्। द. रू. १/६५

६. त्रिपताककरेणान्या नवार्यान्तरा कथाम्। वही, १/६५
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्। वही, १/६६

७. करङ्ककः—(जनान्तिकं) सखे कङ्कालक। देवः कुम्भकर्णं प्रबोधयति न पुनरात्मानं किं च प्रयत्नप्रबोधितोऽप्यसौ रामेण दीर्घं शाययितव्य एव। बालरा. ८/पृ. २६६

८. सुमुखः—(जनान्तिकं) सखे दुर्मुख! किमपि शौर्यातिरेको रामानुजस्य यदमुना निकुम्भिलां प्रति प्रस्थितस्य कुमारमेघनादस्य सन्दिष्टं यदुत। वही, ८/पृ. २६७

अपवारित

आचार्य धनञ्जय कहते हैं कि जहाँ मुँह को दूसरी ओर कर कोई पात्र दूसरे व्यक्ति की गुप्त बात कहता है, उसे अपवारित कहते हैं।[1]

बालरामायण नाटक के अन्तर्गत अपवार्य संवाद का प्रयोग अनेक स्थलों पर राजशेखर ने किया है। प्रथम अङ्क में शतानन्द कहते हैं कि (हटकर) अहा! रावण की अपूर्व गर्वगरिमा है कि मुझ शतानन्द का भी चित्त निश्चय नहीं कर पा रहा है कि क्या होने वाला है। शिव के धनुष का आरोपण कठिन है और रावण की भुजायें भी दुर्निवर हैं।[2]

इसी प्रकार स्वयंवर के समय रावण के प्रति सीता की सखियों के कहे गये वचन[3] और भय के कारण सीता के परशुराम के प्रति कहे गये वचन[4] इत्यादि प्रसङ्गों में अपवारित का प्रयोग दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में भी अपवार्य संवाद का प्रयोग यत्र-तत्र दिखायी पड़ता है। प्रथम अङ्क में नूपुरक नामक पात्र मञ्जीरक नामक पात्र से कहता है कि (मुँह फेरकर) दुःख करने की आवश्यकता नहीं, क्या इतने बड़े वीर-समूह में एक भी नहीं है जो हठ में प्रवृत्त इसके सामने हो सके।[5] इसी प्रकार वस्तु में आवश्यक कथा के प्रवाह के लिये अनेक स्थलों पर अपवारित का प्रयोग हुआ है जैसे-लक्ष्मण और राम के परस्पर वार्तालाप में[6] और राम के सीता के प्रति कहे गये वचन[7] इत्यादि।

---

१. रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितम्।। द.रू. १/६६

२. शतानन्दः—(अपवार्य) अहो लङ्कापतेरपूर्वो गर्वगरिमा यन्ममापि शतानन्दस्य न निश्चिनुते चेतः किं भवितेति। दुरारोपमैन्दुशेखरं धनुर्दुर्निवारा रावण भुजदण्डाः। बालरा. १/पृ. २४

३. सख्यौ—(अपवार्य) हताश ते वचनं जनककुलदेवताः प्रतिघ्नन्तु। वही, १/पृ. ३०

४. सीता—(अपवार्य) प्रियसखि हेमप्रभे चण्डीशिष्यः क्षत्रियान्तकरश्च परशुराम इति श्रुत्वा पल्लवितकौतूहलवल्ली प्रज्ज्वलितसाध्वसरसपरवशा वर्ते। वही, ४/पृ. १२४

५. नूपुरकः—(अपवार्य) अलं तापेन। कथमेतावन्मात्रे वीरमण्डले कोऽपि नास्ति योऽस्य हठप्रवृत्तस्य पुरतो भवति। प्रसन्नरा. १/पृ. ७८

६. लक्ष्मणः—(अपवार्य) आर्य! राजानोऽप्यमी ब्रह्मविद्याचतुरा इति चित्रीयते मे चेतः। वही, ३/पृ. १६६

७. (पुनः सीतां प्रत्यपवार्य)—
तन्वि! त्वद्वदनस्य विभ्रमलवं लावण्यवारांनिध-
रिन्दुः सुन्दरि। दुग्धसिन्धुलहरीबिन्दुः कथं विन्दतु?
उत्कल्लोलविलोचने क्षणमयं शीतांशुरालम्बता-
मुन्मीलन्नवनीलनीरजवनीखेलन्मरालश्रियम्।। वही, ७/६५

अश्राव्य

दशरूपककार कहते हैं कि अश्राव्य को स्वगत कहते हैं।[1]

बालरामायण नाटक में अश्राव्य संवाद का प्रयोग बहुलता से हुआ है। प्रथम अङ्क में बालरामायण के विषय में सूत्रधार कहता है कि कैसे भाषाचित्रक यह एकालापक है। (स्वगत) सूचना-क्रम भी।[2] इसी प्रकार प्रतीहारी की रावण के प्रति कही गयी उक्ति[3] और राम के सीता प्रति कहे गये वचन[4] इत्यादि अनेक प्रसङ्गों में अश्राव्य संवाद का प्रयोग कथा के प्रवाह के लिये किया गया है।

प्रसन्नराघव नाटक के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में स्वयंवर के समय पुरुष मञ्जीरक से कहता है कि कैसे मुझ दश (ऐसा आधा कहने पर मन ही मन) कैसे गोपनीय वात को मैं प्रकाशित करने लगा? अच्छा तो इसका ही निर्वाह करूँगा।[5] इसी प्रकार सीता की सखी के प्रति कही गयी उक्ति[6], और सरयू तथा गङ्गा नदियों के परस्पर वार्तालाप[7] इत्यादि अनेक प्रसङ्गों में अश्राव्य का प्रयोग हुआ है।

यद्यपि इन प्रसङ्गों का प्रयोग नाटक में दृश्यता के अन्तर्गत नीरसता उत्पन्न करता तथापि कथा प्रवाह में तारतम्य लाने के लिये इनका प्रयोग सूच्य के रूप में किया गया है।

इस प्रकार विवेच्य नाटको में साम्य तथा वैषम्य की दृष्टि से प्रसङ्गानुसार, रचना-विधान, अर्थोपक्षेपक और संवाद इत्यादि विषयो का विवेचन किया गया है।

❋

---

१. अश्राव्यं स्वगतं मतम्। द. रू. १/६४

२. सूत्रधारः—कथं भाषाचित्रकमेकालापकं चैतत् (स्वगतं) सूचनाक्रमोऽपि। बालरा. १/पृ. ३

३. प्रतीहारी—(स्वगतम्) कथमद्यापि सैव चित्रभित्तिस्तदेव चित्रकर्म तद्गाढम भिनिविष्टो दशानने कामस्तन्मन्ये शतमन्युपक्षपातोऽत्र विस्तार्यते। वही, २/पृ. ३९

४. रामः—(स्वगतम्) अये इयमसौ सीता यस्याः स्वयं भगवती वसुमती माता यागभूमिर्जन्ममन्दिरं इन्दुशेखरकार्मुकारोपणं च जामातृगुणः। वही, ३/पृ. ७३

५. पुरुषः—कथं मामपि दश (इत्यर्धोक्ते स्वगतम्) कथं संवरणीय विवरितुमुपक्रान्तोऽस्मि। भवतु। इदमेव तावन्निवहियामि। प्रसन्नरा. १/पृ. ५८

६. सीता—(स्वगतम्) कथमवगतास्म्यनया। वही, २/पृ. १३२

७. सरयूः—(स्वगतम्) अहो!
न ज्ञातुं नाप्यनुज्ञातुं नेक्षितुं नाप्युपेक्षितम्।
सुजनः स्वजने जातं विपत्पातं समीहते।। वही, ५/२

चतुर्थ अध्याय

बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—रसपरिपाक

रस काव्य की आत्मा है। रस ही वह तत्त्व है जो सहृदय के अन्तस्तल को आन्दोलित कर देता है जिसमें आप्लावित होकर सहृदय परमानन्द की स्थिति को प्राप्त करते हैं।

रस का अर्थ है—**आस्वाद! रस्यते आस्वाद्यते इति रसः** इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो आस्वादन योग्य है वही रस है। इसीलिये रीति, गुण और अलङ्कार आदि सभी साधनों को रस का अनुचर बताया गया है। रूपकों के भेदक तत्त्व में वस्तु तथा नेता के अतिरिक्त रस भी महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जैसे प्राण के बिना जीवन की कल्पना व्यर्थ होती है वैसे ही रस के बिना काव्य अस्तित्त्वहीन है।

नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि का कथन है कि जैसे बीज से वृक्ष और फिर क्रमशः उससे पुष्प तथा फल उत्पन्न होते हैं वैसे ही रस मूल है, उसी पर भावों की स्थिति अवस्थित है[१] उन्होंने शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स तथा अद्भुत इत्यादि आठ रसों को स्वीकार किया है।[२]

परवर्ती आचार्यों ने रस के नौ भेद स्वीकार किये हैं। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ रस होते हैं।[३]

दशरूपककार धनञ्जय और धनिक ने दशविध रूपक को रसों पर आश्रित बतलाया है।[४] रूपक के भेदक तत्त्वों में वस्तु और नेता की भाँति एक तत्त्व रस भी है।[५] उनके अनुसार नाटक में रस का परिपाक पूर्ण रूप से तथा अनेक रूप से पाया जाता है।[६] उसमें शृङ्गार या वीर कोई भी अङ्गी रस हो सकता है तथा अन्य सभी रस अङ्ग रूप में निबद्ध किये जा सकते हैं।

---

१. यथा बीजाद्भवेद् वृक्षो वृक्षात् पुष्पं फलं यथा।
तथा मूलं रसाः सर्वे तेभ्यो भावा व्यवस्थिताः।। — ना. शा. ६/३८

२. शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्येरसाः स्मृताः।। — वही, ६/१६

३. शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्सोऽद्भुतइत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः।। — सा. द. ३/१८२

४. दशधैव रसाश्रयम्। — द. रू. १/७

५. वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः। — वही, १/११

६. प्रकृतित्वादथान्येषां भूयोरसपरिग्रहात्।
सम्पूर्णलक्षणत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते।। — वही, ३/१

विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारी भावों के संयोग से रस निष्पन्न होता है।[1]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार सहृदय के हृदय में विद्यमान रति आदि स्थायीभाव ही विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर रस के स्वरूप को प्राप्त होते हैं।[2]

आचार्य धनञ्जय के अनुसार विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव और व्यभिचारि भावों के द्वारा जब रति आदि स्थायी भावों को आस्वाद योग्य बना दिया जाता है वही रस कहलाता है।[3]

रस सर्वदा आनन्दस्वरूप है जिस प्रकार आकाश एक है अतः उसके भेद नहीं किये जा सकते उसी प्रकार रस भी आस्वाद की दृष्टि से एक घनसंवित् रूप है। इस प्रकार वस्तुतः यदि रस का मूल्याङ्कन आनन्दमयता की दृष्टि से किया जाय तो सभी रसों के आनन्दमय होने से रस की एकता ही सिद्ध होती है।

बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों में कथा के अनुरूप वीर, शृङ्गार, करुण, बीभत्स, अद्भुत, भयानक, रौद्र, हास्य और शान्त इत्यादि रसों का समावेश हुआ है।

बालरामायण नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है कि वीराद्भुतप्रायरसे प्रबन्धे[4] इस वाक्य द्वारा नाटक में वीर और अद्भुत रस की प्राथमिकता का ज्ञान होता है जबकि कथा में प्रसङ्गानुसार शृङ्गार, करुण, हास्य इत्यादि अन्य रसों का प्रयोग भी हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक की प्रस्तावना में स्वयं जयदेव ने लिखा है कि मृदुल काव्य के प्रणयन में जिसकी वाणी विलास कर रही है।[5] इस वाक्य में प्रयुक्त मृदुल के द्वारा पता चलता है कि इस नाटक में शृङ्गार रस प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुआ है तथा उसके अङ्ग रूप में वीर, हास्य, करुण, रौद्र इत्यादि रसों का प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत अध्याय में सर्वप्रथम दोनों नाटकों के अङ्गीरसों का वर्णन किया जा रहा है तत्पश्चात् उनके अङ्गभूत रसों को वर्णित किया गया है।

---

१. तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसं योगाद्रसनिष्पत्तिः। — ना. शा. ६/पृ. २२८

२. विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम्।। — सा. द. ३/१

३. विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः।। — द. रू. ४/१

४. वीराद्भुतप्रायरसे प्रबन्धे लोकोत्तरं कौशलमस्ति यस्य। — बालरा. १/२

५. येषां कोमलकाव्यकौशलकलीलावती भारती। — प्रसन्नरा. १/१८

(क) बालरामायणम् तथा अङ्गीरस—वीर

वीर रस

वीरः प्रतापविनयाध्यवसायसत्त्वमोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः।
उत्साह भूः स च दयारणदानयोगात् त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षाः।।[१]

अर्थात् प्रताप, विनय, कार्यकुशलता, बल, मोह, अविषाद, नय, विस्मय तथा शौर्य आदि विभावों से वीर रस की पुष्टि होती है। यह वीर रस उत्साह नामक स्थायी भाव द्वारा अभिव्यक्त होता है। दशरूपककार के अनुसार यह दयावीर, रणवीर तथा दानवीर तीन प्रकार का होता है। इसमें मति, गर्व, धृति तथा प्रहर्ष आदि सञ्चारी भाव विशेष रूप से पाये जाते हैं।

आचार्य विश्वनाथ वीर रस के चार प्रकार मानते हैं—दानवीर, धर्मवीर दयावीर और युद्धवीर।[२]

बालरामायण नाटक में राजशेखर ने कथानक के अनुरूप वीर रस का परिपाक किया है। नाटक में वीर रस के उपर्युक्त चारों प्रकार दिखायी पड़ते हैं।

युद्धवीर

बालरामायण के प्रथम अङ्क में सीता स्वयंवर के समय मिथिला की ओर आता हुआ रावण कहता है—

यस्यारोपणकर्मणाऽपि बहवो वीरव्रतं त्याजिताः
कार्यं सज्जितबाणमीश्वरधनुस्तद्दोर्भिर्मया।
स्त्रीरत्नं तदगर्भसम्भवमितो लभ्यं च लीलायिता
तेनैषा मम फुल्लपङ्कजवनी जाता दृशां विंशतिः।।[३]

अर्थात् जिसके आरोपण से बहुतों ने वीरव्रत को छोड़ दिया उस शिव धनुष पर मुझे भुजाओं द्वारा बाण चढ़ाना है जिससे अगर्भसम्भूत वह स्त्रीरत्न प्राप्त होगा इसीलिये फूले हुये कमल वन के समान मेरी बीस आँखें प्रसन्न हो गयी हैं।

यहाँ स्मृति तथा हर्ष आदि व्यभिचारी भावों द्वारा नेत्र के विकास रूप में अनुभाव का संयोग पाकर उत्साह भाव वीर रस में परिणत हो रहा है। अतः युद्धवीर रस है। इसके अतिरिक्त रावण द्वारा शिव धनुष को तिरस्कारपूर्वक फेंकना[४] और परशुराम द्वारा

---

१. द. रू. ४/७२

२. सञ्चारिणस्तु धृतिमतिगर्वस्मृतितर्क रोमाञ्चाः।
स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धास्यात्।। सा. द. ३/२३४

३. बालरा. १/३०

४. रुद्राद्रेस्तुलनं स्वकण्ठविपिनच्छेदो हरेर्वासनं
कारावेश्मनि पुष्पकापहरणं यस्येदृशाः केलयः।

रावण के लिये सन्देश भेजना[1] इत्यादि प्रसङ्गों में युद्धवीर रस दिखायी पड़ता है।

धर्मवीर

बालरामायण के चतुर्थ अङ्क में परशुराम की प्रशंसा करते हुये दशरथ कहते हैं—

> **दृष्ट्वा रामः किसलयसमं पाणिमुद्यम्य सम्यङ्-**
> **मध्ये भूतां गिरिदुहितरं षण्मुखस्यात्मनश्च।**
> **संहृत्यास्त्रं विधृतशरधिर्मुक्तकोदण्डदण्डः**
> **पादौ मार्जन्नमति नमता प्राग्जटामण्डलेन।।**[2]

अर्थात् परशुराम अपने और षड्मुख कार्तिकेय के मध्य किसलय के समान हाथों को उठाये हुये पार्वती को खड़ी देखकर शस्त्र वापस कर और धनुष छोड़कर अपनी झुकी हुयी जटाओं द्वारा पार्वती के पैरों को पोंछते हुये प्रणाम कर रहे हैं।

इस पद्य में परशुराम जैसे स्वभाव से क्रुद्ध व्यक्ति का भी गुरुपत्नी को देखकर अचानक विनम्र हो जाने के कारण मर्यादा पालन का उत्साह होने से यहाँ धर्मवीर रस है। इसके अतिरिक्त वामदेव नामक पात्र की लक्ष्मण के प्रति कही गयी उक्ति[3] इत्यादि प्रसङ्गों में धर्मवीरता के उदाहरण दिखायी पड़ते हैं।

दयावीर

बालरामायण में परशुराम द्वारा पृथ्वी को निःक्षत्र किये जाने के समय हारने वाले राजाओं की दशा का वर्णन करते हुये दशरथ कहते हैं—

> **याचन्ते गृहिणीमुखैर्नृपतयः स्वप्राण भिक्षामिमे**
> **बन्धन्तश्चरणाग्रयोनिपतिताः कण्ठे कुठारान् परे।**
> **लीलादर्पणपाणयो विरचितस्त्रीवेशमेते नताः**
> **किञ्चान्ये विगलन्ति चीवरभृतो द्वार्वेदिकाशायिनः।।**[4]

अर्थात् ये राजा स्त्रियों के मुख से अपने प्राणों की भिक्षा माँग रहे हैं तथा ये दूसरे कण्ठ से कुठार मारते समय चरणों में गिर पड़े। दूसरे विनम्र होकर स्त्रीवेश

सोऽहं दुर्मदबाहुदण्डसचिवो लङ्केश्वरस्तस्य मे
का श्लाघा घुणजर्जरेण धनुषा कृष्टेन भग्नेन वा।। बालरा. १/५१

१. परशुमिममदेयं याचते युद्धहेतो र्गिरिशधनुरधिज्यं कर्तुमुत्कण्ठते च।
तदिदमभिदधीथास्तंप्रवाचं पिशाचं तव भुजतरुखण्डं मत्कुठारो न सोढा।। वही, २/२२

२. वही, ४/२६

३. निष्कर्णिकाऽस्तवलयोज्झितहारयष्टिर्निर्नूपुराप्यपहृताङ्गदमेखला च।
त्वत्कः प्रसाद इति केवलमेव वेणौ चूडामणिं निदधती चलिता वधूस्ते।। वही, ६/२६

४. बालरा. ४/४०

धारणकर हावभाव के लिये हाथों में दर्पण लिये हैं और दूसरे चीवर लेकर दरवाजे पर सोने वाले बनकर भाग रहे हैं।

यहाँ दया माँगने वाले राजा आलम्बन और परशुराम की वीरता उद्दीपन है, इनके साथ अन्य भाव सहज रूप में आकर दयावीर की अनुभूति कराते हैं।

दानवीर

बालरामायण के चतुर्थ अङ्क में विष्णु धनुष को आरोपित कर दिये जाने पर उर्मिला प्रदान के प्रसङ्ग में जनक कहते हैं—

हरधनुषि हठाधिरोपणेन क्षितितनयापरिभाषितः पणोऽभूत्।
विहितमपरिपरिभाषितं पणत्वं पुनरिदमूर्मिलया मुरारिचापे।।[1]

(हस्तमुद्यम्य) भोः संबन्धिन् दशरथ! साऽपि वत्सा ममोर्मिला पारितोषिकं लक्ष्मणस्यास्तु।[2]

अर्थात् शिवधनुष का आरोपण करने से पृथ्वी-पुत्री सीता का पण लगा हुआ था और जब विष्णु धनुष पर न कहते हुये उर्मिला को पग लगाया गया है।

(हाथ उठाकर) हे सम्बन्धी दशरथ! वह मेरी पुत्री उर्मिला लक्ष्मण के लिये पुरस्कार स्वरूप हो।

इस पद्य में जनक आश्रय हैं। लक्ष्मण और दशरथ आदि आलम्बन हैं। लक्ष्मण की वीरता उद्दीपन, जनक का हाथ उठाना आदि अनुभाव और मति तथा हर्ष इत्यादि सञ्चारी भाव हैं अतः दानवीर है। इसके अतिरिक्त रावण और परशुराम के परस्पर वार्तालाप[3] और परशुराम द्वारा स्वय को पृथ्वी की नूतन भिक्षा देने वाला कहने[4] इत्यादि प्रसङ्गों में दानवीर का प्रयोग दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार बालरामायण में वीर रस का प्रयोग अङ्गीरूप में हुआ है सम्पूर्ण नाटक में वीर रस छाया हुआ है।

---

१. बालरा. ४/८०

२. वही, ४/पृ. १८४

३. चापाचार्यस्त्रिपुरविजयी कार्त्तिकेयो विजेयः शस्त्रव्यस्तः सदनमुदधिर्भूरियं हन्तकारः।
अस्त्येवैतत् किमु कृतवता रेणुकाकण्ठबाधां बद्धस्पर्द्धस्तव परशुना लज्जते चन्द्रहासः।।
बालरा. २/३७

४. रुद्राणी धर्मसूनुर्विशिखविलिखनच्छिन्नक्रौञ्चाद्रिकुञ्जः
स्कन्दावस्कन्ददायी कृतरणसिकक्षत्रियक्षोदकेलिः।
दत्तोर्वीनव्यभिक्षः शरविधुतपयोराशिबद्धाश्रमोऽहं
श्रेष्ठः श्रीकण्ठशिष्यो धनुषि धृतरतिर्ब्राह्मणो रैणुकेयः।। वही, ४/६४

(ख) प्रसन्नराघवम् तथा अङ्गीरस—शृङ्गार

शृङ्गाररस

रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनैः
प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः।
प्रहृष्यमाणा शृङ्गारो मधुराङ्गविचेष्टितैः।।[1]

अर्थात् परस्पर अनुरक्त नायक और नायिका के हृदय में रम्य, देश, काल, कला, वेष, भोग आदि के द्वारा आत्मा का प्रसन्न होना रति नामक स्थायी भाव है। यही रति नामक स्थायी भाव दोनों के अङ्गों की मधुर चेष्टाओं द्वारा एक दूसरे के हृदय में समाहित होकर शृङ्गार रस कहलाता है।

आचार्य विश्वनाथ ने शृङ्गार रस के दो भेद किये हैं—विप्रलम्भ और सम्भोग।[2]

विप्रलम्भ में प्रिय के अभाव में हृदय तीव्र वेदना से संतप्त रहता है जबकि सम्भोग में नायक और नायिका का मिलन सुखात्मक अनुभूति प्रदान करता है।

प्रसन्नराघव नाटक में सर्वत्र शृङ्गाररस ही छाया हुआ है। यहाँ नायक-नायिका राम और सीता का परस्पर अनुरक्त होना सम्भोग और तत्पश्चात् अलग होना विप्रलम्भ शृङ्गार का बोध कराता है। रसाभाव के रूप में प्रतिनायक रावण की चेष्टायें दिखायी पड़ती हैं।

द्वितीय अङ्क में राम सीता का प्रथम दर्शन करते ही उन पर अनुरक्त हो जाते हैं और सीता के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहते हैं—

पदाभ्यामुन्निद्रामधरयति शोणाम्बुजरुचिं
कराभ्यामादत्ते नवकिसलयानामरुणताम्।
प्रवालस्यच्छायां दशनवसनाग्रेण पिबति
स्मितज्योत्स्नापूरैरुपहसतिकान्तिं हिमरुचेः।।[3]

अर्थात् पैरों से, प्रफुल्ल रक्तकमलों की कान्ति को पराजित करती है। करों से नूतन किसलयों की लालिमा को ग्रहण करती है। ओठों के अग्रभाग से मूँगे की कान्ति को पीती है तथा मन्दमुस्कान के कान्तिप्रवाहों द्वारा चन्द्रमा की कान्ति का उपहास करती है।

इस पद्य में राम आश्रय हैं। सीता के अङ्ग आलम्बन हैं तथा रक्तकमल, नूतनकिसलय, चन्द्रमा इत्यादि उद्दीपन हैं। ये आलम्बन और उद्दीपन मिलकर राम के हृदय में सीता के प्रति अनुराग उत्पन्न करते हैं जो अनुभाव है और सम्भोग शृङ्गार की प्रतीति करा रहा है।

---

१. द. रू. ४/४८

२. विप्रलम्भोऽथ संभोग इत्येष द्विविधो मतः। सा. द. ३/१८६

३. प्रसन्नरा. २/६

इसी प्रकार नायक द्वारा नायिका वर्णन[1] और नायिका द्वारा नायक वर्णन[2] के प्रसङ्गों में संयोग शृङ्गार दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव में नायक और नायिका के मध्य विप्रलम्भ शृङ्गार के भी अनेक प्रसङ्ग दिखायी पड़ते हैं। छठे अङ्क में सीता अपहरण के पश्चात् राम प्रकृति के प्रत्येक चेतन और अचेतन पदार्थ से अपनी प्रिया सीता के विषय में पूछते हुये कहते हैं—

रजनिकर! करास्ते बान्धवाः कैरवाणां
सकलभुवनचेष्टाजागरुका जयन्ति।
कथयसि न कथं तत्कुत्र सा जानकी मे
त्वमसि मृगसहायः किन्तु नक्तञ्चरोऽसि।।[3]

अर्थात् चन्द्र! सम्पूर्ण संसार की प्रवृत्तियों को जानने वाली तुम्हारी किरणें सर्वोत्कृष्ट हैं तो वह मेरी प्राणप्रिया सीता कहाँ है? यह तुम क्यों नहीं बताते हो? तुम मृग साथ में लिये हो अतः क्या तुम भी राक्षस हो?

इस पद्य में सीता आलम्बन हैं और राम के हृदय में उत्पन्न दुःख का असहनीय होना उद्दीपन है। अतः यहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार है।

इसी प्रकार नायक और नायिका के परस्पर वियोग के प्रसङ्गों[4] में विप्रलम्भ शृङ्गार दिखायी पड़ता है।

इसके अतिरिक्त प्रतिनायक के रूप में रावण का सीता के प्रति प्रेम[5] शृङ्गार रसाभास के अन्तर्गत आता है। प्रसन्नराघव नाटक में शृङ्गाररस अङ्गी के रूप में प्रयुक्त हुआ है इसमें शृङ्गार रस का प्रयोग दोनों पक्षों सम्भोग और विप्रलम्भ में किया गया है।

---

१. बन्धूकबन्धुरधरः सितकेतकाभं चक्षुर्मधूककलिकामधुरः कपोलः।
दन्तावली विजितदाडिमबीजराजिरास्यं पुनर्विकचपङ्कजदत्तदास्यम्।। प्रसन्नरा. २/८

२. विकसितपेशलोत्पलपलाशपुञ्जश्यामलो महेशसौम्यशेखरस्फुरत्सोम कोमलः।
लतागृहे कोऽयमनङ्गरूप खण्डनो विलोचनयोर्ददाति मे सुखं शिखण्डमण्डनः।।
वही, २/२१

३. वही, ६/२

४. (क) तन्मेविदेहतनयावदनं निवेद्य भ्रातश्चकोर! कुरु मां चरितार्थवृत्तिम्।
पीता यदीयकमनीयकपोलकान्तिः कान्तासखेन भवता शशिनं विहाय।। प्रसन्नरा.६/३

(ख) कुरु सकरुणं चेतः श्रीमन्नशोकवनस्पते दहनकणिकामेकां तावन्मम प्रकटीकुरु।
ननु विरहिणां सन्तापाय स्फुटीकुरुते भवान् नवकिसलयश्रेणीव्याजात्कृशानुशिखावलिम्।।
वही, ६/३५

५. राजल्ललाटफलका कमनीय कूजत्काञ्चीगुणप्रणयिनी धृतकेशपक्षा।
हा! किं करोमि मम सा हृदयं प्रविष्टा नाराचयष्टिरिव पुष्पशिलीमुखस्य।। वही, ७/८

(ग) विवेच्य नाटकों में अङ्गभूत रस

दोनों नाटकों में जिन-जिन रसों को अङ्गी रस के रूप में प्रयुक्त किया गया है वह परस्पर विपरीत अवस्था में है। बालरामायण में वीररस अङ्गी के रूप में प्रयुक्त हुआ है जबकि प्रसन्नराघव में वीररस अङ्ग रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार प्रसन्नराघव में शृङ्गाररस अङ्गी रूप में प्रयुक्त हुआ है जबकि बालरामायण में शृङ्गार रस अङ्ग रूप में प्रयुक्त हुआ है।

यहाँ सर्वप्रथम बालरामायण में अङ्ग रूप में प्रयुक्त शृङ्गार रस तत्पश्चात् प्रसन्नराघव में अङ्ग रूप में प्रयुक्त वीररस को वर्णित किया गया है फिर दोनों नाटकों में अङ्गभूत रूप में प्रयोग किये गये हास्य, करुण, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, शान्त और वात्सल्य रसों का प्रयोग दिखाया गया है।

शृङ्गार रस

बालरामायण में शृङ्गार रस का प्रयोग यत्र-तत्र दिखायी पड़ता है। संयोग शृङ्गार का वर्णन बालरामायण में नही प्राप्त होता है जबकि विप्रलम्भ शृङ्गार एक-दो स्थलों पर दिखायी पड़ता है। तृतीय अङ्क में स्वयंवर में सीता को देखकर राम कहते हैं—

उत्तालालकभञ्जनानि कबरीपाशेषु शिक्षारसो
दन्तानां परिकर्म नीविनहनं भ्रूलास्ययोग्याग्रहः।
तिर्यग्लोचनवर्तितानि वचसां छेकोक्तिसंक्रान्तयः
स्त्रीणां म्लायति शैशवे प्रतिपलं कोऽप्येव केलिक्रमः।।[१]

अर्थात् चोटी में ऊँचे मोड़, महावर, दाँतों का संस्कार, नीवी बाँधना, भौहों को नचाने के अभ्यास में यत्न, आँखों को तिरछा घुमाना और बातों में विदग्धता का समावेश, यह सब स्त्रियों का शैशव समाप्त होते ही प्रारम्भ हो जाता है।

इस पद्य में राम सीता के प्रथम दर्शन से ही उनके प्रति उत्पन्न अनुराग को सामान्य स्त्रियों के युवावस्थागत शरीरज भाव तथा स्वाभाविक परिवर्तन के माध्यम से प्रकट कर रहे हैं। अतः यहाँ पूर्वराग नामक विप्रलम्भ शृङ्गार है।

साहित्यदर्पणकार ने विप्रलम्भ शृङ्गार के इस भेद को पूर्वराग नाम से बताया है,[२] जबकि काव्यप्रकाशकार ने इसको अभिलाष नाम से बताया है।[३]

बालरामायण नाटक में विप्रलम्भ शृङ्गार के अतिरिक्त प्रतिनायक रावण की चेष्टायें शृङ्गार रसाभास के रूप में आरम्भ से लेकर अन्त तक वर्णित है। सीता के

१. बालरा. ३/२३

२. श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः।
दशाविशेषो योऽप्राप्तो पूर्वरागः स उच्यते।। सा. द. ३/१८८

३. अपरस्तु अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति पञ्चविधः। का. प्र. ४/२६

प्रथम दर्शन से ही वह काम पीड़ित हो उठता है। पञ्चम अङ्क में रावण कठपुतली रूपी सीता से वार्तालाप करता हुआ कहता है—

प्रेम रम्यमुभयोः समं दिशोः कामिनां यदिह चाषपिच्छवत्।
एकतस्तु न चकास्ति साध्वपि श्यामपृष्ठमिव वर्हिणच्छदम्।।[1]

अर्थात् नीलकण्ठ के पंखों की तरह, कामिनियों का दोनों ओर बराबर प्रेम अच्छा होता है। पीछे की ओर काले मयूरपंख की तरह एक ओर कितना भी तीव्र हो वह प्रेम शोभित नहीं होता।

यहाँ पर गुणसङ्कीर्तनावस्था दिखायी पड़ती है। रावण और कठपुतली सीता का परस्पर वार्तालाप यद्यपि संयोग शृङ्गार की प्रतीति कराता है तथापि यह रसाभास के अन्तर्गत आयेगा इसी प्रकार सीता की स्मृति करके रावण के हृदय में तरह-तरह के भावों का आना[2] और रावण द्वारा मायामय नामक पात्र को अयोध्या भेजने[3] इत्यादि प्रसङ्गों में शृङ्गाररसाभास का प्रयोग हुआ है।

वीर रस

प्रसन्नराघव नाटक में यत्र-तत्र वीर रस का प्रयोग दिखायी पड़ता है। पञ्चम अङ्क में सीता अपहरण के समय जटायु रावण का मार्ग रोकते हुये कहता है—

आः पापिन्! पश्यतो मे, रघुतिलकवधूं चोरवृत्त्याऽपहर्तुं
सीतां शीतांशुलेखामिव गिरिशशिरः शयिनीमुद्यतोऽसि।
एष च्छित्वा शिरांसि प्रखरनखमुखर्दीप्तचूडामणीनि
त्वामद्याहं गरुत्मानुरगमिव सुधाकाङ्क्षिणं संहरामि।।[4]

अर्थात् आहपापी! मेरे सामने, शिव के शिर पर निवास करने वाली चन्द्रकला के समान राम की पत्नी सीता का अपहरण करने के लिये तुम उद्यत हो तो मैं तीक्ष्ण लखों के अग्रभाग से चमचमाती चूड़ामणियों वाले तेरे शिरों को छिन्न-भिन्न करता हूँ। जैसे गरुड़ ने अमृत चाहने वाले सर्प को मारा था वैसे ही मै तेरा संहार करता हूँ।

---

१. बालरा. ५/१३

२. प्रसन्नरा. ५/४६

३. हेलास्फालितरामलक्ष्मणधनुर्ज्यावल्लरीझल्लरी-
झाङ्कारप्रसरप्ररुढ़पुलकप्राग्भारनीरन्ध्रिताः।
व्यावल्गत्कपिकण्ठकाण्डकदनक्रीडत्कृपाणाञ्चल-
स्फूर्जद्दुर्जयदोर्बलैकचपलाश्चञ्चन्ति रात्रिञ्चराः।। वही, ७/२०

४. न्यञ्चत्कुञ्चितमुन्मुखं हसितवत्साकूतमाकेकरं
व्यावृत्तं प्रसरत्प्रसादि मुकुलं सत्प्रेम कम्पं स्थिरम्।
उद्भ्रूभ्रान्तमपाङ्गवृत्तिविकचं मज्जंत्तरङ्गाकुलं
चक्षुः साश्रु च वर्त्तते रसवशादेकैकमन्यक्रियम्।। बालरा. २/१६

इस पद्य में रावण आलम्बन और उद्दीपन रूप में जटायु की वीरता तथा उसकी युद्धकला के प्रदर्शन द्वारा उत्साह भाव परिपुष्ट होने से वीर रस है।

इसी प्रकार राम और रावण के युद्ध[1] इत्यादि प्रसङ्गों में वीर रस का प्रयोग हुआ है।

हास्य रस

विकृताकृतिवाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा।
हासः स्यात्परिपोषोऽस्य।।[2]

अर्थात् स्वयं या दूसरे के आकार, वाणी तथा वेष में विकार देखकर हास की उत्पत्ति होती है। यह हास स्थायी भाव का परिपोष हास्य रस कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है—आत्मसमुत्थ तथा परसमुत्थ।[3]

राजशेखर विरचित बालरामायण नाटक में सीता स्वयंवर में रावण जब शिवधनुष को तिरस्कारपूर्वक फेंक देता है तब जनक क्रुद्ध हो उठते हैं उस समय क्रुद्ध जनक को देखकर रावण उनका उपहास उड़ाते हुये कहता है—

हस्तालम्बितमक्षसूत्रवलयं कर्णावतंसीकृतं
स्रस्तं भ्रूयुगमुच्चमय्य रचितं यज्ञोपवीतेन च।
संनद्धा जघने च वल्कलपटी पाणिश्च धत्ते धनु-
र्दृष्टं भो जनकस्य योगिन इदं दान्तं विरक्तं मनः।।[4]

अर्थात् हाथ में लटकती हुयी जपमाला को कर्णावतंस बना लिया, बुढ़ापे के कारण ढीली भौहों को चढ़ा लिया है और यज्ञोपवीत द्वारा वल्कलवस्त्र को कमर में बाँध लिया है तथा हाथ में धनुष है। अहा! योगी जनक का योगी मन भी दान्त देखा गया।

इस पद्य में रावण आश्रय है, जनक आलम्बन तथा उनकी चेष्टायें उद्दीपन हैं। प्रकृति के अनुकूल हँसना अनुभाव है। इस हास्य को आत्मस्थ तथा परस्थ दोनों कोटियों में रखा जा सकता है क्योंकि जनक के वेष को देखकर रावण स्वयं हँसता है और दूसरों को भी हँसाना चाहता है। अतः यहाँ हास्य रस है।

---

१. (क) मैथिली यदि धनुर्ग्लहो भवेत्तद्गुणात् प्रथमतस्तदीशिनः।
राम विद्धि तव मोहमित्यमुं विष्टपत्रयपतेर्ममास्तु सा।। बालरा. ५/१

(ख) अस्मद्विक्रमचेष्टितानि निखिलत्रैलोक्यहेलाजय-
प्रह्वीभूतसुरासुराणि भवतो भूमेः सुता शृण्वती।
पत्यौ द्वेषकषायितेन मनसास्निग्धा मयि स्थास्यति
स्त्रीणां प्रेम युदुत्तरोत्तरगुणग्रामस्पृहाचञ्चलम्।। वही, ५/२

२. द. रू. ४/७५

३. इत्येष स्वसमुत्थस्तथा परसमुत्थश्च विज्ञेयः। ना. शा. ६/६२

४. बालरा. १/५३

इसके अतिरिक्त युद्ध के समय सिंहनाद के विचित्र रूप को देखकर राम की उक्ति[1] और गणेश के युद्ध वर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में हास्य रस दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक के सप्तम अङ्क में मन्दोदरी राम की वानरसेना के समुद्र के पास पहुँचने का समाचार सुनकर चिन्ताग्रस्त होती है तब रावण इस वृत्तान्त को जानकर उसका उपहास करते हुये कहता है—

इयं लीलालोङ्गदभुजलता नीलचिकुरा
समुन्मीलत्तारा कुमुदहसिता चारुनयना।
प्लवङ्गानां सेना युवतिरिव तारापतिमुखी
ममाऽग्रे कन्दर्पं प्रकटयितुमद्य प्रभवति।।[3]

अर्थात् लीलापूर्वक चञ्चल अङ्गद रूपी भुजाओं वाली, नील नामक वानर रूपी केशकलाप से सम्पन्न, तार नामक वानर से प्रकाशित, कुमुद नामक वानरूपी हास्य से सम्पन्न, चारु नामक वानर रूपी नेत्र वाली, सुग्रीव द्वारा सञ्चालित, वानरों की यह सेना, युवती के समान, आज मेरे सामने किस अभिमान को प्रकट करने में समर्थ है?

इस पद्य में अङ्गद, नील, तार, कुमुद और चारू इत्यादि वानर आलम्बन और उनकी आकृति, वेष तथा चेष्टायें इत्यादी उद्दीपन विभाव होने के कारण यहाँ हास्यरस है।

इसके अतिरिक्त वामनक और कुब्जक नामक पात्रों के परस्पर वार्तालाप[4] इत्यादि प्रसङ्गों में हास्य रस का प्रयोग हुआ है।

---

१. धिग्धिङ्निशाचरपतिं शुकसारणौ धिङ्-
धिङ्मेघनादमथ धिग्दशराजपुत्रान्।
यैस्त्वं विचिचत्रपुषा चिरमीक्षणीयः
क्रूराशयैरूपहतो रणदेवतायै।। बालरा. ७/८७

२. (क) दोर्दण्डद्वितयाञ्चितोन्नतधनुर्यन्त्रप्रसूतेषवः
शुण्डोद्दण्डपरश्वधाः परिणमद्दन्तार्गलाकोटयः।
एताः कर्णविकीर्णवक्त्रकवचाः संरम्भिणः सङ्गरे
हेरम्बस्य हरन्ति हन्त हृदयं प्राक्रोपविक्रान्तयः।। वही, ४/२०

(ख) नरनागक्रियामिश्रा हतरुद्राम्बकक्रियाः।
दुर्धरा हन्त हेरम्बरणव्यापारकेलयः।। वही, ४/२१

३. प्रसन्नरा. ७/१६

४. वामनकः—नन्वनेनैवदृप्तवृषभककुदसदृशेन पृष्ठस्थितेन मांसस्तबकेनोद्वाहितेन।
कुब्जकः—(विहस्य) अयेमतिशून्य, कथमयं मांसस्तबकोऽपि पुनः सौभाग्यलक्ष्म्या उपधानगेन्दुकः। वही, ३/पृ. १५०-१५१

बालरामायण में प्रसन्नराघव की अपेक्षा अधिक प्रसङ्गों में हास्यरस प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि बालरामायण में प्रमुख रूप से वीर रस होने के कारण वेशभूषा, आकृति इत्यादि के वर्णन में हास्यरस का प्रयोग हुआ है जबकि प्रसन्नराघव में शृङ्गाररस प्रधान होने के कारण कतिपय स्थलों पर ही हास्यरस की व्यञ्जना हुयी है।

करुणरस

इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्माकरुणोऽनुतम्।
निश्वासोच्छ्वासरुदितस्तम्भप्रलपितादयः।।
स्वापापस्मारदैन्याधिमरणालस्यसम्भ्रमाः
विषादजडतोन्मादचिन्ताघा व्यभिचारिणः।।[1]

अर्थात् इष्ट वस्तु के नाश पर या अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति होने से उत्पन्न शोक नामक स्थायी भाव ही करुण रस कहलाता है। निःश्वास, उच्छ्वास, रुदित, स्तम्भ, प्रलपित आदि इसके अनुभाव है। करुणरस के अन्तर्गत स्वाप, अपस्मार, दैन्य, आधि, मरण, आलस्य, सम्भ्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिन्ता आदि व्यभिचारी भाव पाये जाते हैं।

राजशेखर विरचित बालरामायण नाटक में शिव-धनुष को राम द्वारा टूटा हुआ देखकर परशुराम कहते हैं—

हा शंकरकरान्दोलनदुर्ललित! हा त्रिपुरदहनडम्बरहठकर्मकर्मठ! हा गीर्वाण-सारपरमाणुनिर्माण! हा दुर्जनजनकसदनदुर्निक्षेप! हा नतसकलनाक पिनाक! त्वमपीदृशं दृश्यसे तदिदमापतितं! लूतातन्तुना गन्धगजालानसंदानं सूची तुण्डेन वज्रमणि भेदः। तथाहि—

पार्वत्या निजभर्तुरायुधमिति प्रेम्णा यदभ्यर्चितं
निर्मोकेण च वासुकेर्निचुलितं यत् सादरं नन्दिना।
निर्दग्धत्रिपुरेन्धनं धनुरिदं तन् मन्मथोन्माथिनः।[2]

अर्थात् हाय! शङ्कर के हाथों में झूले का दुलार पाने वाले! हा त्रिपुरदहन के दुराग्रही कर्मठ! हा देवतत्त्व के परमाणुओं द्वारा निर्मित! हाय दुष्ट जनक के घर की धरोहर! हा स्वर्ग को झुकाने वाले शिव धनुष तुम भी ऐसे दिखलायी पड़ रहे हो! यह तो वही हुआ जैसे मकड़ी के जाले से मदमत्त हाथी बंध गया और सुई की नोक से वज्रमणि फूट गया। वही तो—

अपने स्वामी का अस्त्र है—इस प्रेम से पार्वती द्वारा जिसकी पूजा की जाती थी, शेषनाग की केचुली से नन्दी द्वारा जो आदरपूर्वक आवेष्टित किया जाता था, वही

१. द. रू. ४/८१-८२
२. बालरा. ४/५३

त्रिपुररूपी ईंधन जलाने वाला, कामविजयी यह धनुष मुझ रामनामधारी शिष्य के रहते हुये दो टुकड़ों में दिखलायी पड़ता है।

यहाँ धनुष आलम्बन तथा उसके पूर्व प्रतिमानों का स्मरण उद्दीपन है। परशुराम द्वारा जनक को कोसना और विलाप करना आदि अनुभाव हैं तथा ग्लानि, विषाद आदि सञ्चारी भाव हैं जो करुण रस के पोषक हैं।

इसी प्रकार राम के वनवास गमन के समय अयोध्या के नागरिकों की विकलता[1] और मेघनाद-कुम्भकर्ण की मृत्यु से रावण का दुःखी होना[2] इत्यादि प्रसङ्गों में करुण रस दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में अङ्गीरस शृङ्गार के साथ अङ्ग रूप में सर्वाधिक करुण रस का प्रयोग जयदेव ने किया है। पञ्चम अङ्क में सागर और गोदावरी नदी के परस्पर वार्तालाप में गोदावरी रावण द्वारा अपहरण करके ले जाती हुई सीता का वर्णन करते हुये कहती है—

हा राम! हा रमण! हा जगदेकवीर! हा नाथ! हा रघुपते! किमुपेक्षसेमाम्।
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्तीमादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम।।[3]

अर्थात् हा राम! हा रमण! हा जगत् में अद्वितीय वीर! हा नाथ! हा रघुपते! मेरी क्यों उपेक्षा कर रहे हैं। इस प्रकार बारंबार विलाप करती हुयी सीता को लेकर रावण आकाशमार्ग से चला गया।

इस पद्य में राम आलम्बन हैं और सीता द्वारा दुःखी होकर उनके लिये प्रयुक्त किये गये अनेक नाम उद्दीपन हैं तथा सीता का राम के लिये करुण विलाप करना अनुभाव है।

इसी प्रकार दशरथ के निधन पर रोती हुयी पुराङ्गनाओं[4] इत्यादि के प्रसङ्गों में करुण रस का प्रयोग हुआ है।

१. गाढोरः स्थलताडनत्रुटिधृतैर्हारावलीमौक्तिकैः सन्दिग्धीकृतबाष्पबिन्दुरुदितं पौराङ्गनाभिस्तथा।
आमूलश्लाथपक्षतिस्थितिनतग्रीवाग्रतुण्डं यथा वीथीपञ्जरवर्तिभिः शुककुलैरप्युत्कमुत्कूजितम्।।
बालरा. ६/३१

२. शेतां सम्प्रति वासवश्चिरभवन्निद्राजडैर्लोचनै-
र्जायन्तां विबुधोपयोग्यकुसुमाः सर्वेऽपि दिव्यद्रुमाः।
बन्धाः स्वर्गसदां च सन्त्वनिगडाः प्राप्तोऽसि तं गोचरं
मद्वक्त्रैरपि वत्स नाम दशभिर्वक्तुं न यः शक्यते।। वही, ८/८६

३. प्रसन्नरा. ५/४५

४. बहलगलितैः सन्तापोष्णैस्तटान्तविहारिभिर्दशरथपुरीपौरस्त्रीणां विलोचनवारिभिः।
उपचयवतीं सन्तापोष्णां निजां दधती तनूमिह मुहुरहं मातर्लज्जां वहामि जहामि च।।
वही, ५/१

रौद्ररस

> क्रोधोमत्सरवैरिवैकृतमयैः पोषोऽस्यरौद्रोऽनुजः
> क्षोभः स्वाधरदंशकम्पभृकुटिस्वेदास्यरागैर्युतः।
> शस्त्रोल्लासविकत्थनांसधरणीघातप्रतिज्ञाग्रहै-
> रत्रामर्षमदौ स्मृतिश्चपलतासूयौग्रयवेगादयः।।[१]

अर्थात् वैरी के द्वारा किये गये अपकार आदि विभावों से क्रोध उत्पन्न होता है यही क्रोध नामक स्थायी भाव रौद्र रस कहलाता है। शस्त्र को बार-बार चमकाना, बड़ी डींगें मारना, जमीन पर चोट मारना, प्रतिज्ञा करना आदि इसके अनुभाव हैं। रौद्ररस में अमर्ष, मद, स्मृति, चपलता, असूया, औग्रय, वेग इत्यादि सञ्चारी भाव पाये जाते हैं।

बालरामायण के प्रथम अङ्क में स्वयंवर के समय रावण क्रोध के साथ शिवधनुष पकड़कर कहता है—

> अस्मद्दोर्दण्डषण्डाञ्चितनिबिडगुणग्रन्थिभुग्नोभयाश्रे-
> र्मिश्रीभूतोर्ध्वपृष्ठत्रुटदनणुपरुर्मर्मणः कार्मुकस्य।
> कल्पान्तोद्भ्रान्तभर्गप्रहतडमरूकोड्डामरध्वानधीर-
> ष्ठात्कार स्तारतारस्त्रिदशनिशमितो व्योमरन्ध्रंरुणद्धु।।[२]

अर्थात् जिसके दोनों किनारे हमारी बलिष्ठ भुजाओं के समूह से प्रत्यञ्चा के चढ़ाने पर टेढ़े हों और मिले हुये दोनों ऊपरी भागों के कारण बड़ी-बड़ी पोरों की सन्धियाँ टूटने लगें, ऐसे धनुष का, प्रलयकाल के आवेश में शिव द्वारा बजाये गये डमरू के निनाद जैसा गम्भीर देवताओं द्वारा सुना गया जोरों का ठा शब्द आकाश में भर जाय।

इस पद्य में शिवधनुष आलम्बन है उसकी सम्भावित जर्जरता उद्दीपन है। आरोपण के स्थान पर तोड़ने की बात कहना अनुभाव है। अस्मद् आदि शब्दों से गर्व नामक व्यभिचारी भाव व्यक्त हो रहा है। अतः रौद्र रस है। इसके अतिरिक्त रावण द्वारा सीता के भावीपति को मारने के प्रण[३] और शिवधनुष टूटने के बाद परशुराम द्वारा कहे गये वचन[४] इत्यादि प्रसङ्गों में यह रस दिखायी पड़ता है।

---

१. द. रू. ४/७४

२. बालरा. १/४६

३. कुर्वन् मौर्वीनिवेशक्रमनमदटनि स्पष्टटङ्कारटङ्कं
शम्भोः कोदण्डदण्डं बधिरितभुवनं भूर्भुवः स्वस्त्रयेऽपि।
यस्तामेनां वरीता रसयति तदसृक् चन्द्रहासो ममासिः
कण्ठास्थिग्रन्थिशक्लीकरण भवरणत्कास्वाचालधारः।। वही, १/६१

४. यः कर्त्ता हरचापदण्डदलने यश्चानुमन्ता ननु

प्रसन्नराघव नाटक के चतुर्थ अङ्क में परशुराम क्रोधपूर्वक परशु को देखकर कहते हैं—

सकलनृपकठोरकण्ठपीठी-बहलगलद्रुधिरौघधौतधारः।
तदिदमजनकं जगद्विधत्ते परशुरयं जमदग्निनन्दनस्य।।[1]

अर्थात् सभी क्षत्रिय राजाओं के कठोर कण्ठ से अत्यधिक बहते हुये रक्त से धुली हुयी धार वाला, यह परशुराम का परशु अभी-अभी इस जगत् को जनक विहीन (१. राजा जनक से विहीन, २. पिता से विहीन अर्थात् अनाथ) बना देता है।

इस पद्य में परशु आलम्बन और परशु द्वारा सम्भावित जनक का वध उद्दीपन है। परशु को रक्त से धुली हुयी धार वाला कहना अनुभाव है। यहाँ गर्व इत्यादि सञ्चारी भाव होने के कारण रौद्र रस दिखायी पड़ता है।

इसी प्रकार परशुराम के कोप[2] इत्यादि प्रसङ्गों में इस रस का प्रयोग हुआ है।

भयानक रस

विकृतस्वरसत्त्वादेर्भयभावो भयानकः।
सर्वाङ्गवेपथुस्वेदशोषवैचित्त्यलक्षणः।।
दैन्यसम्भ्रमसम्मोहत्रासादिस्तत्सहोदरः।।[3]

अर्थात् किसी व्यक्ति के स्वर, शरीर आदि का डरावनापन देखकर भय नामक स्थायी भाव होता है, जो भयानक रस कहलाता है। इसके अनुभाव हैं सारे शरीर का काँपना, पसीना छूटना, मुँह सूखना, मुँह का पीला पड़ना, चिन्ता होना इत्यादि। इसमें दैन्य, सम्भ्रम, सम्मोह, त्रास आदि व्यभिचारी भाव पाये जाते हैं।

बालरामायण नाटक के प्रथम अङ्क में सीता-स्वयंवर के समय अपने सामने रावण को देखकर सीता भयभीत होकर सखी से कहती हैं—

द्रष्टा यश्च परीक्षिता च य इह श्रोता च वक्ता च यः।
सद्यः खण्डितकण्ठपीठवलयः केलिं करिष्यत्ययं
कीलालार्णसि तस्य तस्य परशुर्भर्गप्रसादीकृतः।। बालरा. ४/५७

१. प्रसन्नरा. ४/३

२. (क) येनाबध्यत नर्मदाम्बुनिवहः सङ्ख्ये च लङ्केश्वर-
स्तद्यस्मिन्निरमज्जदर्जुनभुजक्षोणीरुहां मण्डलम्।
क्षत्रस्त्रीनयनाम्बुपूरमिषतः खेलन्ति यत्कीर्तय
स्तत्तादृकपरशुर्ममायधुना धाराजलं मुञ्चति।। वही, ४/६

(ख) दुर्धर्षाः सुरसिद्धकिन्नरनरैस्त्यक्तक्रमं वक्रतां
प्राप्ते यत्र विधातरीव तरसा तिस्रोऽपि दग्धाः पुरः।
तद्भग्नं यदि राघवेण शिशुना चण्डीपतेः कार्मकं
तन्मग्नं कुलमेव तर्कय रघोर्मच्छस्त्र धाराम्भसि।। वही, ४/१३

३. द. रू. ४/८०

सीता—(पुरोऽवलोक्य) एकासनोपवेशिनः कतिपुनरेते जनाः।
सख्यौ—नन्वेक एवेष दशमुखो विंशतिभुजदण्डश्च।
सीता—तातशतानन्दमिश्राणामन्तर उपवेक्ष्यामि।[1]

अर्थात् एक आसन पर बैठे ये कितने लोग हैं? सखी कहती है कि यह एक ही दशमुख और बीस भुजाओं वाला है। जिसको सुनकर सीता भयभीत होकर कहती है कि पिताजी और शतानन्द के मध्य वैठूँगी।

इस पद्य में सीता आश्रय हैं। रावण आलम्बन है तथा उसके दशमुख और विंशतिभुजायें उद्‌दीपन हैं। सीता का भयवश स्वपक्षीयों मे बैठने को कहना आदि अनुभाव हैं। जुगुप्सा, आवेग और शङ्का आदि सञ्चारी भाव हैं। अतः भयानक रस है।

इसी प्रकार सेतुबन्ध के समय जलचरों का अस्त व्यस्त होना[2] और कुम्भकर्ण की रौद्रता देखकर वानरों की व्याकुलता[3] इत्यादि भय भाव की अनुभूति करवाते हैं।

प्रसन्नराघव नाटक के पञ्चम अङ्क में जब रावण सीता का अपहरण करता है तो सीता उसके विकराल रूप को देखकर भयभीत हो जाती हैं इसी प्रसङ्ग को गोदावरी नदी सागर से इस प्रकार कहती है—

रजनिचरकराग्रस्पर्श सम्पात विघ्नं
रचयितुमनसूयाहस्तदत्ताङ्गरागाम्।
वहलमनलपुञ्जः पिञ्जरज्योतिरुधन्
कुवलयदलशीतां संवृणोति स्म सीताम्।।[4]

अर्थात् रावण के हाथ के अग्रभाग से होने वाले स्पर्श रूपी शरीर संयोग में विघ्न उत्पन्न करने के लिये, अनसूया के हाथों द्वारा लगाये गये अङ्गरागों से सम्पन्न और भय से नीलकमल की पङ्खुड़ी के समान शीतल सीता को अधिकता के कारण पीले प्रकाश वाले अग्निपुञ्ज ने परिवेष्टित कर लिया।

१. बालरा. १/पृ. २२

२. गुरुगुहाकुहरप्रविष्टदुष्टमकरास्तरूस्कन्धनिषण्णशङ्खिनीलक्षका विषमशिलातलोज्झितस्फुटित-शुक्तिसम्पुटमुक्तमौक्तिककरम्बितनितम्बास्तलप्ररूढशैवालजटिलबन्ध जलनिबिडपक्षपालिमन्द-सञ्चरणाश्चिरविश्रम्भप्रसूतकमलनाभमत्स्यकुलतिमिङ्गिलारब्धकन्दरध्वान्ता उपरिनिपतन् महीधरप्राग्भारोल्लोडनभयेन किं किं न कुर्वन्ति शिलोच्चयसचयाः। वही, ७/पृ. २३४

३. अथ तत्र केऽपि कपयः कुम्भकर्णस्य चण्डिलनखशिखरैः खण्डितकचा वराहा इव पादयोः पतन्ति उपनिमन्त्रिता इव जङ्घासु लगन्ति पुरुषकटिलग्नपटा इवोर्वीर्मर्त्वन्ति अश्ववारकर-वाला इव नितम्बबिम्बे दोलन्ति सुजना इव मध्यस्था भवन्ति विधुरकुटुम्बा इव पार्श्वयोस्ति-ष्ठन्ति तरुणोस्तना इव वक्षःस्थले विस्तरन्ति वेणीदण्डा इव पृष्ठस्थाने घूर्णन्ति चिरमिलित-बन्धव इव कण्ठे लगन्ति। वही, ८/पृ. २८५

४. प्रसन्नरा. ५/४४

इस पद्य में सीता आश्रय हैं। रावण आलम्बन है और उसका सीता को छूने का प्रयास उद्दीपन है। रावण को देखकर सीता का भयभीत होना अनुभाव है। जुगुप्सा आदि सञ्चारी भाव होने के कारण भयानक रस है।

बालरामायण में प्रसन्नराघव की अपेक्षा भयानक रस अधिक प्रसङ्गों में प्रयुक्त हुआ है।

बीभत्स रस

बीभत्सः कृमिपूतिगन्धिवमथुप्रायैर्जुगुप्सैकभू-
रुद्वेगी रुधिरान्त्रकीकसवसामांसादिभिः क्षोभणः।
वैराग्याज्जघनस्तनादिषु घृणाशुद्धोऽनुभावैर्वृतो
नासावक्रविकूणनादिभिरिहावेगार्तिशङ्कादयः।।[1]

अर्थात् कृमि, बुरी दुर्गन्ध, वमन आदि विभावों से जुगुप्सा नामक स्थायी भाव से उत्पन्न होने वाला बीभत्स रस कहलाता है। खून, अन्तड़ियाँ, हड्डियाँ तथा चर्बी और मांस आदि विभावों के क्षोभण से बीभत्स उत्पन्न होता है। जघन, स्तन आदि के प्रति वैराग्य के कारण उत्पन्न घृणा से शुद्ध बीभत्स होता है। बीभत्स रस के अनुभाव नाक को टेढ़ा करना, सिकोड़ना आदि हैं तथा सञ्चारी भाव आवेग, अर्ति, शङ्का आदि है।

बालरामायण नाटक में चित्रशिखण्ड गृध्र नामक पात्र ताड़कावध का वर्णन करते हुये कहता है—

विध्वस्तहस्तयुगलं ललितान्त्रतन्त्रमुन्मुक्तरक्ततति खण्डितकालखण्डम्।
उत्कृत्तकृत्ति रचितं च शरैः शरीरमार्येऽखिलाङ्गपरिताडिनि ताडकायाः।।[2]

अर्थात् राम के बाणों द्वारा प्रहार होने पर ताड़का का समस्त शरीर ऐसा हो गया जिसमें दोनों हाथ विध्वस्त हो गये, अँतड़ियाँ बिखर गयीं रक्त की धारा बह चली, यकृत कट गया तथा चमड़ी उधड़ गयी।

इस पद्य में राम आश्रय हैं। ताड़का आलम्बन है तथा अन्तड़ियाँ बिखरना, रक्त की धारा का बहना और चमड़ी उधड़ना इत्यादि उद्दीपन हैं। राम का ताड़का के शरीर के प्रति वैराग्य होना अनुभाव है। मरण आदि व्यभिचारी भाव और आवेग इत्यादि सञ्चारी भाव होने के कारण बीभत्स रस है।

इसी प्रकार जटायु रावण युद्ध[3] और अग्निबाण फेंकने पर समुद्र में सर्पादि जीवों

१. द. रू. ४/७३
२. बालरा. ३/६
३. चित्रे तत्र पतत्रिशाचररणे नाङ्गं जटायोरभू-
न्नो कृत्तं दशकन्धरेण कणशो यच्चन्द्रहासासिना।
लङ्काभर्तुरपि प्रचण्डकुलिशव्यापारनीराजितं
यत्तुण्डेन न खण्डितं खगपतेर्यद्वा न लूनं नखैः।। वही, ६/६८

के जलने की दुर्गन्ध[1] इत्यादि प्रसङ्गों में जुगुप्सा का भाव बीभत्स रस की पुष्टि करता है।

प्रसन्नराघव नाटक में वनवास के समय लक्ष्मण द्वारा रावण की बहन शूर्पणखा के नासिका, कर्ण इत्यादि के काटने का वर्णन करता हुआ हंस कहता है—

नक्तञ्चरेन्द्रभगिनीसुकुमारनासानिर्मुक्तरक्तलवलिप्तशितैकधारः।
उत्कण्ठते कठिनराक्षसकण्ठजानां पानाय कर्दमसृजामसृजां कृपाणः।।[2]

अर्थात् राक्षसेन्द्र रावण की भगिनी शूर्पणखा की कोमल नाक से निकले रक्त की बूँदों से व्याप्त तेज धारा वाला खड्ग तथा राक्षसों के कठोर कण्ठों से निकली रक्त की बूँदों से व्याप्त तेज धारा वाला खड्ग, राक्षसों के कण्ठों से प्रवाह रूप में बहते हुये रुधिर को पीने के लिये उत्सुक हो रहा है।

इस पद्य में हंस आश्रय है। खड्ग आलम्बन है तथा उसका रक्तरञ्जित होना उद्दीपन है। हंस द्वारा किया गया वर्णन अनुभाव है। दैन्य, विषाद आदि व्यभिचारी भाव हैं। अतः यहाँ बीभत्स रस है।

इसके अतिरिक्त परशुराम और लक्ष्मण के परस्पर वार्तालाप[3] और परशुराम तथा राम के परस्पर वार्तालाप[4] इत्यादि प्रसङ्गों में बीभत्स रस दिखायी पड़ता है।

यद्यपि बालरामायण तथा प्रसन्नराघव दोनों ही नाटकों में बीभत्स रस का प्रयोग किया गया है तथापि बालरामायण में वीर रस की प्रधानता होने के कारण अपेक्षाकृत अधिक स्थलों पर इसका प्रयोग हुआ है।

अद्भुत रस

अतिलोकैः पदार्थैः स्याद्विस्मयात्मा रसोऽद्भुतः।
कर्मास्य साधुवादाश्रुवेपथुस्वेदगद्गदाः।
हर्षावेगधृतिप्राया भवन्ति व्यभिचारिणः।।[5]

---

१. अन्योन्याश्लेषरक्षाविधिवलितवपुर्यष्टि तुष्टं भुजङ्ग-
द्वन्द्वैरुद्दामदाहस्रुतसलिलमहागर्भमभ्रैर्व्यलायि।
सर्वत्रावर्तमुद्रां विदधति जलधौ सायकैः पावकीयै-
रुत्तापाद्यादसां च त्रिजगदभिभवन्निः सृतो विस्रगन्धः।। बालरा. ७/३३

२. प्रसन्नरा. ५/३४

३. क्रीडाविनिर्मितसुदुर्मददोर्विलासनिःशेषराजकवधस्य परश्वधस्य।
कीलालकीकसकचैः परितो विचित्य येन द्विधापि विदधे पृथिवी त्रिवर्णा।। प्रसन्नरा. ४/२३८

४. क्षण्णक्षत्रकठोरकण्ठविगलत्कीलालधारासरि-
न्निर्वृत्ताभिषवस्य कृत्तशिरसां केशान्कुशानकुर्वतः।
गृह्णन् रक्तजलाञ्जलीन् पितृगणो यस्य क्षणं विस्मितः
सन्तोषेण जुगुप्सया करुणया त्रासेन हासेन च।। वही, ४/३३

५. द. रू. ४/७८-७६

अर्थात् अलौकिक पदार्थों के दर्शन-श्रवणादि से विस्मय नामक स्थायी भाव अद्भुत रस कहलाता है। साधुवाद अर्थात् किसी की प्रशंसा करना, आँसू आना, काँपना, गद्गद हो आना इसके अनुभाव हैं। अद्भुत रस में हर्ष, आवेग, धृति आदि व्यभिचारी भाव पाये जाते हैं।

बालरामायण नाटक के तृतीय अङ्क में सीता स्वयंवर में शिव धनुष के टूटने पर प्रतीहार कहता है—

संस्पर्शादपि मन्थरस्य मरुतः सिञ्जानसिञ्जालतं
सार्द्धं क्षत्रवधव्रतैकगुरुणा क्रौञ्चाचलद्वेषिणा।
दोर्दण्डाञ्चलमण्डलीकृतमिदं रामेण राज्ञां पुरः
प्रागप्राप्तपराभवं भवधनुष्टङ्कारवत् त्रुट्यति।।[1]

अर्थात् मन्दपवन के स्पर्श से शब्दायमान प्रत्यञ्चा वाला तथा इसके पूर्व किसी से भी पराजित न होने वाला यह शिव धनुष राम द्वारा क्षत्रियों के वध की प्रतिज्ञा से प्रचण्ड तथा क्रौञ्चपर्वत के विदारक परशुराम तथा राजाओं के सामने बाहुदण्ड के आकर्षण से मण्डलाकार होकर टङ्कार के साथ टूट रहा है।

इस पद्य में राम आश्रय हैं। शिव धनुष आलम्बन है तथा उसका टूटना उद्दीपन है। सहसा मनोरथ की पूर्ति विभाव और प्रतीहार का उस ओर देखकर जोरों से श्लोक का कहना अनुभाव है तथा हर्ष इत्यादि व्यभिचारी भावों के होने के कारण अद्भुत रस दिखायी पड़ता है। इसके अतिरिक्त मारीच मृग[2] और सेतुबन्ध के समय[3] इत्यादि प्रसङ्गों में अद्भुत रस दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक के सप्तम अङ्क में राम और रावण के युद्ध के समय राम द्वारा रावण का शिरच्छेद करने पर पुनः उसके शिर के प्रकट होने पर राम कौतुक से आनन्दित हो रहे हैं, विद्याधर नामक पात्र इसका वर्णन करता हुआ कहता है—

एतान्यस्य यथायथा सुविशिखैः कृत्तानि रक्षःपते-
रूद्गच्छन्ति शिरांसि भीतिपुलकैः साकं दिवौकः पतेः।

---

१. बालरा. ३/७७

२. अपुच्छादाचतुण्डान्मरकतरचितां पृष्ठपीठीं दधानो
नीरन्ध्रासक्तमुक्ताफलपटलचयापाण्डुरां क्रोडपालीम्।
पादैर्वालप्रवालच्छदपुटघटितैरच्छवैदूर्यमय्या
दृष्ट्याऽयं दण्डकायां भुवि वनहरिणोऽभ्येति विस्मापयन्नः।। वही, ६/६१

३. वहति भुवनश्रेणीं शेषः फणाफलकस्थितां
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स च धार्यते।
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-
दहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः।। वही, ७/४०

उन्मीलन्ति तथातथा रघुपतेरन्तः प्रमोदोर्मयः
कण्ठच्छेदविनोदकौतुकभरव्यग्रीभवच्चेतसः।।[1]

अर्थात् तीक्ष्ण शरों से काटे गये रावण के ये शिर इन्द्र के भयजनित रोमाञ्चों के साथ ज्यों-ज्यों निकल रहे हैं, त्यों-त्यों रावण के शिरों को काटने की प्रसन्नता से होने वाले कौतुक की अधिकता से उतावले चित्त वाले राम के हृदय में आनन्द की लहरें उठ रही हैं।

इस पद्य में राम आश्रय हैं। रावण आलम्बन है और उसके शिरों का कटकर बार-बार पुनः निकलना उद्दीपन है। राम के हृदय में आश्चर्य के साथ आनन्द की लहरों का उठना अनुभाव तथा हर्ष आदि व्यभिचारी भाव होने के कारण अद्भुत रस है।

इसके अतिरिक्त शिव धनुष के टूटने पर जनक की उक्ति[2] और विष्णु धनुष के चढ़ने पर लक्ष्मण की उक्ति[3] इत्यादि प्रसङ्गों में अद्भुत का प्रयोग दिखायी पड़ता है।

बालरामायण और प्रसन्नराघव दोनों ही नाटकों में प्रसङ्गानुरूप अनेक स्थलों पर अद्भुत रस का प्रयोग हुआ है।

शान्त रस

शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः।।
कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवतः।
अनित्यत्वादिनाऽशेषवस्तुनिः सारता तुया।।
परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते।
पुन्याश्रमहरिक्षेत्रतीर्थरम्यवनादयः।।
महापुरुषसङ्गाद्यास्तस्योद्दीपनरुपिणः।
रोमाञ्चाद्याश्चानुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः।।
निर्वेदहर्षस्मरणमतिभूतदयादयः।[4]

---

१. प्रसन्नरा. ७/४७

२. आः! किमुच्यते, दिशः पूर्णा इति? ननु—
एतैः श्रीकण्ठकोदण्डचञ्चन्मौर्वीभवै रवैः।
चिरात् प्रतिज्ञया साकं पूर्णो मम मनोरथः।। वही, ३/४३

३. (विलोक्य सहर्षं सकौतुकञ्च)—
मा शाम्भवं धनुरिवेदमपि प्रयातु
भङ्गप्रसङ्गमिति मन्दचलद्भुजेन।
आर्येण कार्मुकमपीदमहो! सहेलं
चक्रीकृतं भगवतो गरुडध्वजस्य।। वही, ४/४२

४. सा. द. ३/२४५-२४६

अर्थात् शान्त रस का स्थायीभाव शम, आश्रय उत्तमपात्र, वर्ण कुन्दपुष्प तथा चन्द्रमा आदि के समान सुन्दर शुक्ल और देवता भगवान् लक्ष्मीनारायण हैं। अनित्यत्व दुःखमयत्व आदि रूप से संसार की असारता का ज्ञान अथवा परमात्मा का स्वरूप इस रस में आलम्बन होता है और ऋषि आदि का पवित्र आश्रम, हरिद्वार आदि पवित्र तीर्थ, रमणीय एकान्तवन तथा महात्माओं का संग आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। रोमाञ्च आदि इसके अनुभाव होते हैं। निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, प्राणियों पर दया आदि इसके सञ्चारी भाव होते हैं।

बालरामायण में विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को जनक का परिचय देते हुये कहते हैं—

स्थितिः पुण्येऽरण्ये सह परिचयो हन्त हरिणैः
फलैर्मेध्या वृत्तिः प्रतिदिनं च तल्पानि दृषदः।
इतीयं सामग्री फलति हि विरक्त्यै स्पृहयतां
वनं वा गेहं वा सदृशमुपशान्तस्य मनसः।।[1]

अर्थात् पावन वन में निवास, हरिणों से परिचय, प्रतिदिन फलों से पवित्र जीवन-यापन तथा पत्थरों की शय्या—यह सामग्री विरक्ति की कामना वालों के लिये सिद्धि-दायक है पर जिसका मन शान्त हो चुका है उसके लिये वन और घर दोनों समान हैं।

इस पद्य में जनक आश्रय हैं। जनक को सम्पूर्ण संसार की असारता का ज्ञान आलम्बन और उनके जैसे महात्मा का साथ उद्दीपन है। जनक का चरित सुनकर राम और लक्ष्मण के हृदय में उत्पन्न रोमाञ्च आदि अनुभाव हैं और निर्वेद, हर्ष इत्यादि सञ्चारी भावों के होने के कारण यहाँ शान्त रस है।

इसके अतिरिक्त अगस्त्याश्रम वर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में शान्त रस का परिपाक हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक के सप्तम अङ्क में भरद्वाजाश्रम का वर्णन करते हुये लक्ष्मण कहते हैं-

व्याजृम्भमाणवदनस्य हरेः करेण
कर्षन्ति केसरसटाः कलभाः किलैके।
अन्ये च केसरिकिशोरकपोतमुक्तं
दुग्धं मृगेन्द्रवनितास्तनजं पिबन्ति।।[3]

---

१. बालरा. ३/१७

२. होमोह्यमानहुतवहा विक्रियमाणकथामुक्ताः पठ्यमानबटुचरणा वर्ण्यमानधर्मशास्त्रा उपदिश्यमानसमाधिमार्गा वरिवस्यभानातिथिवर्गाः पर्णशालासंनिवेशमस्मादृशानामपि संसारग्रन्थिनिष्टपनाः। वही, १०/पृ. ३५६

३. प्रसन्नरा. ७/७६

अर्थात् कतिपय करिशावक जम्हायी लेते हुये सिंह की गरदन के बालों को अपनी सूँड से खींच रहे हैं और दूसरे करिशावक सिंहों के बच्चों से पीकर छोड़े गये सिंहिनियों के स्तन का दुग्धपान कर रहे हैं।

इस पद्य में भारद्वाज आश्रय हैं। उनमें स्थित परमात्मा का स्वरूप आलम्बन है। भारद्वाज ऋषि के आश्रम का वर्णन इत्यादि उद्दीपन है। जङ्गली हिंसक पशुओं का परस्पर प्रेम होने के कारण रोमाञ्च आदि अनुभाव है तथा निर्वेद, हर्ष इत्यादि सञ्चारी भाव होने के कारण शान्त रस है। इसके अतिरिक्त इसी प्रसङ्ग में अन्यत्र[1] भी शान्त रस दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार बालरामायण और प्रसन्नराघव दोनों ही नाटकों में कतिपय स्थलों पर शान्त रस का प्रयोग हुआ है।

वात्सल्य रस

कुछ विद्वान् वात्सल्य रस को दसवें रस के रूप में मानते हैं—

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।
स्थायी वत्सलतास्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम्।।
उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादयः।
आलिङ्गनाङ्गसंस्पर्शशिरश्चुम्बनमीक्षणम्।।
पुलकानन्दबाष्पाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः।
सञ्चारिणोऽनिष्टशङ्काहर्षगर्वादियो मताः।।[2]

अर्थात् वात्सल्य स्नेह स्थायी होता है। पुत्रादि इसका आलम्बन और उसकी चेष्टा, विद्या, शूरता, दया आदि उद्दीपन होते हैं। आलिङ्गन, अङ्गस्पर्श, सिर चूमना, देखना, रोमाञ्च, आनन्दाश्रु आदि इसके अनुभाव होते हैं। अनिष्ट की आशङ्का, हर्ष, गर्व आदि सञ्चारी भाव होते हैं।

बालरामायण नाटक के चतुर्थ अङ्क में भगवान शिव के परशुराम के प्रति शिष्य प्रेम को बताते हुये मातलि नामक पात्र कहता है—

बर्हिध्वजेऽपि सति सत्यपि दन्तिवक्त्रे प्रेमोपधानमवधूय पिनाकपाणिः।
हस्तेन नित्यधृतवासुकिकङ्कणेन प्राज्ञप्रियः स्पृशति भार्गवमेव पृष्ठे।।[3]

---

१. क्रीडन्माणवकाङ्घ्रिताडनशतैरुज्जागरस्य क्षणं
शार्दूलस्य नखाङ्कुरेषु कुरुते कण्डूविनोदं मृगाः।
चञ्चच्चन्द्रशिखण्डितुण्डघटनानिर्मोकनिर्मोचितः
किं चाऽयं पिबति प्रसुप्त न कुलश्वासानिलं पन्नगः।। प्रसन्नरा. ७/८०

२. सा. द. ३/२५१-२५३

३. बालरा. ४/१६

अर्थात् कार्तिकेय और गणेश के रहने पर भी उनके प्रेम रूपीबन्धन का त्याग करके बुद्धिमन्तप्रिय भगवान शङ्कर प्रतिदिन वासुकि नाग के कङ्कणयुक्त हाथ से परशुराम की पीठ सहलाते हैं।

इस पद्य में शिव आश्रय हैं। परशुराम आलम्बन तथा उनकी विद्या और शौर्य आदि उद्दीपन हैं। शिव का परशुराम की पीठ सहलाना इत्यादि अनुभाव है। हर्ष इत्यादि सञ्चारी भाव है। अतः वात्सल्य रस है।

इसी प्रकार शिव के परशुराम के प्रति शिष्य प्रेम[1] और लोपामुद्रा के राम के प्रति स्नेह[2] इत्यादि प्रसङ्गों में वात्सल्य रस दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक के द्वितीय अङ्क में लक्ष्मण को देखकर सीता के हृदय में वात्सल्य उत्पन्न होता है। सीता सखी से कहती हैं—

सीता—हला! कोऽयं कनकवर्णः शिखण्डिपिच्छमण्डितकर्णपूरो मुग्धत्वविमुक्तलोचननविकारः कुमारो दृश्यते? इमं पश्यन्त्या मम निजवत्स इव वात्सल्यप्रक्षालितं हृदयं वर्त्तते।

लक्ष्मणः—अये! केयमस्यां सुमित्रायामिव मे सुचिरप्रवृत्ता चित्तवृत्तिः।[3]

अर्थात् सखि सुनहरे वर्ण वाला, मयूर के पङ्ख द्वारा अलङ्कृत कान के आभूषण वाला, भोलेपन के कारण आँख की चञ्चलता से रहित यह कौन कुमार दिखलायी पड़ रहा है? इसको देखकर मेरा हृदय उसी तरह स्नेह से युक्त हो रहा है जैसे अपने बच्चे के विषय में होता है।

लक्ष्मण—अरे! यह कौन हैं? जैसे मेरा अन्तःकरण माँ सुमित्रा की ओर स्वभावतः आकृष्ट होता है वैसे ही इनकी ओर भी आकृष्ट हो रहा है।

इस प्रसङ्ग में सीता आश्रय है। लक्ष्मण आलम्बन है और उनका सुनहरा वर्ण, भोलापन इत्यादि उद्दीपन है। सीता के हृदय में लक्ष्मण के प्रति पुत्र के समान स्नेह उत्पन्न होना अनुभाव है तथा हर्ष इत्यादि सञ्चारी भाव हैं। अतः वात्सल्यरस है। इसी प्रकार परशुराम द्वारा राम को आशीर्वाद दिये जाने[4] इत्यादि प्रसङ्गों में वात्सल्य रस दिखायी पड़ता है।

---

१. सम्यक्कोदण्डविद्या विनयचतुरता कुत्र सोल्लेखरेखा
पुत्रान्तेवासिनोर्मे सपदि परिणतेत्येष वेत्तुं विशेषम्।
देवः श्रीचन्द्रचूडामणिरचलसुतापाणिपद्मावलम्बी
स्थित्वोद्ग्रीवं विटङ्कात् स्फटिकशिखरिणो वीक्षतेनिश्चलातः।। बालरा. ४/१८

२. एह्येहि वत्स रघुनन्दन रामचन्द्र चुम्बामि तेऽद्य वदनं करचूचुकेन।
सोढाः कथं कथय ते दशकण्ठबाणाश्छिन्नानि रावणशिरांसि कथं च तानि।। वही, १०/६५

३. प्रसन्नरा. २/पृ. १२१-१२२

४. यशः पूरं दूरं तनु सुतनुनेत्रोत्पलवनी-
तमस्तन्द्राचण्डातप! तप सहस्राणि शरदाम्।

इस प्रकार बालरामायण तथा प्रसन्नराघव नाटकों में वात्सल्य रस के भी प्रसङ्ग दिखायी पड़ते हैं।

बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों में सभी रसों की अभिव्यञ्जना हुई है। राजशेखर और जयदेव ने एक ही कथा को आधार मानकर विवेच्य नाटकों की रचना की है। कथा में समानता होते हुये भी उन्होंने अपने-अपने नाटक में पृथक्-पृथक् अङ्गी रस माना है।

बालरामायण नाटक की सम्पूर्ण कथा में राजशेखर ने वीर रस को अङ्गी रूप में स्वीकार किया है। इस नाटक में लगभग सभी अङ्कों में वीररस के चारों प्रकार युद्धवीर, धर्मवीर, दयावीर और दानवीर का समावेश हुआ है। नायक श्रीराम में वीर रस के उपर्युक्त चारों प्रकार दिखायी पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त रावण, लक्ष्मण, परशुराम इत्यादि धीरोद्धत पात्रों के सन्दर्भ में भी यथावसर वीर रस व्यक्त हुआ है जो कभी क्रोध इत्यादि से सम्बद्ध दिखायी पड़ता है। प्रसन्नराघव गें वीर रस अङ्गीरस के रूप में प्रयुक्त न होकर अङ्ग रूप में प्रयुक्त हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में जयदेव ने शृङ्गार रस को अङ्गी रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने शृङ्गार के सम्भोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त प्रतिनायक के रूप में रावण की सीता के प्रति व्याकुलता को विप्रलम्भ शृङ्गार के माध्यम से प्रकट करके प्रसन्नराघव नाटक को जयदेव ने शृङ्गारमय बना दिया है।

यद्यपि दोनों नाटकों में शृङ्गाररस का परिपोष हुआ है तथापि इस रस की प्रधानता तथा अप्रधानता की दृष्टि से प्रस्तुति में पर्याप्त भिन्नता है।

बालरामायण में अङ्गभूत होने के कारण शृङ्गार रस अप्रधान है तथा अङ्गीरस वीर का पोषक है जबकि प्रसन्नराघव नाटक में शृङ्गार रस अङ्गी होने के कारण प्रधान है और वीर रस अङ्ग रूप में प्रयुक्त होने के कारण अप्रधान है तथा अन्य हास्य, करुण, अद्भुत, भयानक, रौद्र, शान्त, वात्सल्य इत्यादि इनके पोषक के रूप में प्रयुक्त हुये हैं।

❊

इयं चास्तां युष्मच्छरशमितलङ्केश्वरशिरः
श्रितोत्सङ्गा नन्दतुसुरनरभुजङ्गा त्रिजगती।। प्रसन्नरा. ४/४८

बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—वृत्ति तथा रीति योजना

(क) विवेच्य नाटकों में वृत्ति योजना

नायक का व्यापार ही वृत्ति कहलाता है।[1] आचार्य धनञ्जय का मत है कि नायक का प्रवृत्तिरूप व्यापार ही वृत्ति है।[2] प्रवृत्ति का अर्थ है मानसिक, वाचिक तथा कायिक चेष्टा। इन वृत्तियों को भरतमुनि ने 'काव्यानां मातृका वृत्तयः' कहा है[3] तथा साहित्य-दर्पणकार ने 'नाट्यस्य मातृकाः'[4] कहकर वृत्ति के महत्त्व को स्पष्ट किया है। तात्पर्य यह है कि कवि पात्र, नायक इत्यादि के कायिक, वाचिक तथा मानसिक व्यापारों को वर्णनीय रूप से काव्य में प्रस्तुत करता है। इसी कारण से वृत्तियों को काव्य की जननी स्वीकार किया गया है।

वृत्तियाँ चार प्रकार की मानी गयी हैं भारती, सात्वती, कैशिकी तथा आरभटी। इनमें सात्वती वृत्ति विशेषतः मानस व्यापार रूप होती है तथा भारती वाचिक रूप। कैशिकी तथा आरभटी वृत्तियों में कायिक व्यापार की प्रधानता होती है।

अभिनवगुप्त ने चारों वृत्तियों का स्वरूप सङ्क्षेप में इस प्रकार वर्णित किया है-पाठ्य-प्रधाना भारती, अभिनयप्रधाना सात्वती, अनुभावाद्यावेशमयरसप्रधानारभटी, गीतवाद्योपरञ्जकप्रधाना कैशिकीति।[5]

सर्वप्रथम भरतमुनि ने रसों तथा वृत्तियों के मध्य सम्बन्ध को स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने नाट्यशास्त्र में शृङ्गार, हास्य आदि नव रसों के साथ कैशिकी, सात्वती आदि चारों वृत्तियों का सम्बन्ध दिखाया है।[5]

शृङ्गारहास्य बहुला कैशिकी परिचक्षिता।
सात्वती चापि विज्ञेया वीररौद्राद्भुताश्रया।
भयानके च बीभत्से रौद्रे चारभटी भवेत्।
भारती चापि विज्ञेया करुणाद्भुतसंश्रया।।[6]

अर्थात् शृङ्गार तथा हास्य रस में कैशिकीवृत्ति, वीर, रौद्र तथा अद्भुत रस में

---

१. तद्व्यापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्धा। — द. रू. २/४६
२. प्रवृत्तिरूपो नेतृव्यापारस्वभावो वृत्तिः। — वही, २/४६ (वृत्ति भाग)
३. ना. शा. १८/४
४. सा. द. ६/१२३
५. अभि. भा. २०/२३
६. ना. शा. २३/६४-६५

सात्वती वृत्ति, भयानक, बीभत्स तथा रौद्र रस में आरभटी वृत्ति तथा करुण और अद्भुत रस में भारतीवृत्ति का प्रयोग करना चाहिये।

भरतमुनि का अनुकरण करते हुये धनञ्जय ने भी रसों तथा वृत्तियों के मध्य सम्बन्ध का स्पष्टतः उल्लेख किया है—

शृङ्गारे कैशिकी, वीरे सात्वत्यारभटी पुनः।
रसे रौद्रे च वीभत्से वृत्तिः सर्वत्र भारती।।[1]

अर्थात् कैशिकी का प्रयोग शृङ्गार में, सात्वती का वीर में तथा आरभटी का रौद्र और वीभत्स रस में किया जाता है। भारती वृत्ति का प्रयोग सभी रसों में होता है।

बालरामायण तथा प्रसन्नराघव नाटकों में सभी वृत्तियों का प्रयोग पात्रानुकूल दिखायी पड़ता है, किन्तु सर्वप्रथम उन वृत्तियों का उल्लेख किया जा रहा है जो दोनों नाटकों में अङ्गीरसानुरूप प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुयी हैं।

सात्वती वृत्ति

विशोका सात्वती सत्त्वशौर्यत्यागदयार्जवैः।
संलापकोत्थापकावस्यां साङ्घात्यः परिवर्तकः।।[2]

अर्थात् सात्वती वृत्ति शोकरहित होती है यह सत्त्व, शौर्य, त्याग, दया तथा सरलता से युक्त होती है। इसमें संलापक, उत्थापक, साङ्घात्य तथा परिवर्तक ये चार अङ्ग होते हैं।

सत्त्व का अर्थ है—मन, उसका व्यापार अर्थात् मानस व्यापार ही सात्वती वृत्ति है। यह मानस व्यापार सत्त्व, शौर्य, त्याग, दया आदि भावों के रूप में होता है यद्यपि इसको सात्त्विक, वाचिक तथा आङ्गिक अभिनय के द्वारा प्रकट किया जाता है तथापि इसमें सात्त्विक अभिनय की ही प्रधानता होती है। नाट्य में इस नायक व्यापार को सात्त्वती वृत्ति कहा जाता है।

भरतमुनि के अनुसार वीर, अद्भुत तथा रौद्र रस में सात्त्वती वृत्ति होती है।[3] भरतमुनि ने सात्वती वृत्ति की उत्पत्ति यजुर्वेद से बतायी है।[4]

बालरामायण नाटक में प्रमुख रूप से सात्वती वृत्ति का प्रयोग दिखायी पड़ता है। द्वितीय अङ्क में रावण पराक्रमी जामदग्न्य से कहता है—

---

१. द. रू. २/६२
२. वही, २/५३
३. सात्वती नाम सां ज्ञेया वीररौद्राद्भुताश्रया।। ना. शा. २२/६५
४. ऋग्वेदाद् भारती वृत्तिर्यजुर्वेदात्तु सात्वती। वही, २२/२४

क्वायं मे चन्द्रहासः प्रहृतिशतलिपिन्यस्तजैत्रप्रशस्तिः,
स्वर्मातङ्गस्य कुम्भे? क्व च कुहक। भवान् ब्राह्मणः शस्त्रवाही।
वामेभ्योऽस्मत्करेभ्यो बहिरयमिह यस्तत्कनिष्ठाङ्गुलीभूः
प्रारब्धब्रह्मघोषं हरतु नखशिखा त्वच्छिरः कन्धरातः।।[1]

अर्थात् कहाँ ऐरावत के माथे पर शतशः प्रहार चिह्नों से विजय प्रशस्ति लिखने वाला यह मेरा चन्द्रहास और कहाँ तू शस्त्र ढोने वाला तिलस्मीब्राह्मण। अतः मेरे बायें हाथों के बाहर जो यह हाथ है उसकी सबसे छोटी अंगुली से निकलने वाली नाखून की कोर, ब्रह्मघोष करने वाला तेरा सिर गले से उतार ले।

इस पद्य में रावण वीर रस पूर्ण वाक्यों द्वारा परशुराम को युद्ध करने के लिये उत्तेजित कर रहा है। अतः यहाँ सात्वती वृत्ति दिखायी पड़ती है। यह पद्य सात्वती वृत्ति के द्वितीय प्रकार उत्थापक के अधिक निकट है,[2] क्योंकि इसमें रावण द्वारा परशुराम को युद्ध के लिये उकसाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त राम और परशुराम के परस्पर वार्तालाप[3] और युद्ध के समय रावण पुत्र सिंहनाद और राम के मध्य परस्पर वार्तालाप[4] इत्यादि प्रसङ्गों में सात्वती वृत्ति दिखायी पड़ती है।

प्रसन्नराघव नाटक में भी यत्र-तत्र सात्वती वृत्ति का प्रयोग हुआ है। प्रथम अङ्क में युद्धवीर रावण, बाणासुर से कहता है—

दोष्णां न मे विदितवानसि वीरलक्ष्मी-
प्रासादविभ्रमवतीं पदवीं गरिष्ठाम्।
ये चन्द्रशेखरगिरौ करपल्लवाङ्क-
पर्यङ्कशायिनि दधुः कलशप्रतिष्ठाम्।।[5]

अर्थात् वीरता की लक्ष्मी के निवास-स्थान के आधारभूत, मेरी बाहुओं के गौरवपूर्ण चरित्र को तुम नहीं जानते हो। जिन बाहुओं ने हथेलीरूपी पलङ्ग पर स्थित कैलास पर्वत में कलश की स्थिति को धारण किया।

---

१. बालरा. २/५३

२. उत्थापकस्तु यत्रादौ युद्धायोत्थापयेत्परम्। द. रू. २/५३

३. भग्नरुद्रधनुः खण्डप्रोतेन शिरसा तव।
मुण्डधारी व्रती चाहमुपस्थास्ये कपालिनम्।। बालरा. ४/७१

४. (क) राम! राम! मयि मुञ्च सायकान् प्राक्प्रहाररुचिरेष रावणिः।
येन ते चरममाशु दर्शयेच्छस्त्रतन्त्रमयमेतदम्बरे।। वही, ७/८६

(ख) स्त्रीमात्रं ननु ताडका भृगुभवो रामश्च विप्रः शुचि-
र्मारीचो मृग एष भीतिभवनं बाली पुनर्वानरः।
भोः काकुत्स्थ! विकत्थसे कथय किं वीरोजितः कस्त्वया
दोर्दर्प्पस्तु तथापि ते यदि ततः कोदण्डमारोपय।। वही, ७/८८

५. प्रसन्नरा. १/५०

इस पद्य में रावण अपनी भुजाओं की वीरता का गुणगान करके बाणासुर को युद्ध करने के लिये उत्तेजित कर रहा है। अतः यहाँ पर सात्वती वृत्ति का उत्थापक नामक प्रकार है।

इसी प्रकार राम तथा लक्ष्मण के परशुराम सम्बन्धी वार्तालाप[1] और रावण तथा बाणासुर के परस्पर वार्तालाप[2] इत्यादि प्रसङ्गों में सात्वती वृत्ति का प्रयोग दिखायी पड़ता है।

बालरामायण नाटक में प्रसन्नराघव नाटक की तुलना में अधिक स्थानों पर सात्वती वृत्ति का प्रयोग हुआ है। इसका कारण यह है कि बालरामायण में अङ्गीरस वीर है इसलिये प्रमुख रूप से सात्वती ही दिखायी पड़ती है, जबकि प्रसन्नराघव में अङ्गीरस वीर न होकर शृङ्गार है। अतः इसका प्रयोग कथानक में कतिपय स्थलों पर ही दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में यद्यपि अङ्गीरसानुरूप कैशिकी वृत्ति का प्राधान्य है तथापि नायक धीरोदात्त है इसलिये सात्वती वृत्ति भी प्रधान है। यही कारण है कि सात्वती के पश्चात् यहाँ पर कैशिकी वृत्ति का प्रयोग किया जा रहा है।

कैशिकी वृत्ति

गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदुः शृङ्गारचेष्टितैः।[3]

अर्थात् गीत, नृत्य, विलास आदि शृङ्गारिक चेष्टाओं से कोमल वृत्ति कैशिकी होती है।

आचार्य धनञ्जय के अनुसार कैशिकी वृत्ति के चार भेद हैं-नर्म, नर्मस्फिञ्ज, नमस्फोट तथा नर्मगर्भ।[4]

बालरामायण नाटक में कैशिकी वृत्ति का प्रयोग कतिपय स्थलों पर दिखायी पड़ता है, इसके अङ्गोपाङ्गों का विधिवत् प्रयोग नहीं हुआ है। सीता के साथ रावण की शृङ्गार चेष्टाओं में इस वृत्ति का प्रयोग हुआ है। जो शृङ्गार रस मूलक न होकर रसाभास के अन्तर्गत आती हैं, अतः रसाभास के रूप में यहाँ पर कैशिकी वृत्ति मानी

---

१. एकः स्वर्णमहीधरां क्षितिमिमां स्वर्णैकशृङ्गीं यथा
गामेका प्रतिपाद्य कश्यपमुनौ न स्वात्मने श्लाघते।
किञ्च क्रौञ्चगिरिं गिरीशतनयस्याविद्धशक्तिक्षतं
विद्ध्वा बाणगणैरुदारहृदयो वैलक्ष्यमालम्बते।। प्रसन्नरा. ४/१७

२. त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कण्ठिता धीर्मम न जनकपुत्री-पाणिपद्मग्रहाय।
अपि तु बहुलबाहुव्यूहनिर्व्यूहहमालाबलपरिमलहेलाताण्डवाडम्बराय।। वही, १/५१

३. द. रू. २/४७

४. नर्मतत्स्फिञ्जतत्स्फोटतद्गर्भैश्चतुरङ्गिका। वही, २/४७

जा सकती है। पञ्चम अङ्क में रावण मृग, कोयल, विकसित कमल और ऐरावत से सीता के बारे में पूछता हुआ कहता है—

> **सारङ्ग दृष्टिलसिते कलभाषिते च**
> **पुंस्कोकिल स्मितसरोरुह सौरभे च।**
> **दिव्येभ विभ्रमगतौ च सदैव यस्याः**
> **शिष्याः स्थ ताङ्कथयत स्वगुरुं प्रियां मे।।**[1]

अर्थात् मृग! मनोहर दृष्टि के विषय में, कोयल! मधुर बोली में, विकसित कमल! सुगन्ध में और ऐरावत! विलासपूर्ण गति में जिसके सदा शिष्य बने रहते हों, उस अपनी गुरु तथा मेरी प्रिया को बतला दो।

इस पद्य में रावण की सीता के प्रति की गयी शृङ्गारिक चेष्टाओं के कारण यहाँ कैशिकी वृत्ति दिखायी पड़ती है। इसी प्रकार उपर्युक्त प्रसङ्ग[2] में ही अन्य स्थलों पर इसका प्रयोग हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में प्रमुख रूप से कैशिकी वृत्ति का प्रयोग दिखायी पड़ता है। द्वितीय अङ्क में सीता, राम को देखकर मन ही मन कहती हैं-

> **अयि पिबतं लोचने।**
> **प्रियजनवदनारविन्दमकरन्दम्।**
> **अयि तरले! विचारयतं पुनः क्व युवां क्वायं च।।**[3]

अर्थात् हे मेरे नेत्रों, प्रिय व्यक्ति राम के मुखकमल के रस को पिओ। हे चञ्चलों, इस समय के बीत जाने पर फिर तुम दोनों कहाँ? और यह अति सुन्दर व्यक्ति कहाँ? यह भी जरा सोच लो।

इस पद्य में सीता द्वारा मन में नेत्रों को आदेश देना, राम के प्रति उनके प्रेम को प्रकट कर रहा है इसलिये यहाँ कैशिकी वृत्ति है। यहाँ पर सीता उपर्युक्त भावों को मन में प्रकट कर रही है और राम को कटाक्ष से हाव-भावपूर्वक देख रही है। इसलिये यह पद्य कैशिकी वृत्ति के नर्मस्फोट अङ्ग के अधिक निकट प्रतीत होता है, क्योंकि यहाँ सीता के भावों द्वारा शृङ्गार रस की प्रतीति हो रही है।

इसी प्रकार राम के सीता के प्रति कहे गये वचन[4], लक्ष्मण के राम के प्रति कहे

---

१. बालरा. ५/६८

२. हे चन्द्रमस्त्यज मृगं कुरु रावणाज्ञां तत्कारिणस्तव गुणद्वितयेन योगः।
यन्मैथिलीनयनकान्त्यपहारदोषो लुप्तश्च ते भवति बिम्बमलाञ्छनञ्च।। वही, ५/७४

३. प्रसन्नरा. २/२५

४. प्राचीमालम्बमाने घनतिमिरचये बान्धवे बन्धकीनां
सम्प्राप्ते च प्रतीचीं शशिकरनिकरे वैरिणि स्वैरिणीनाम्।

गये वचन[1] और शिव धनुष चढ़ाने में कञ्चुकी नामक पात्र के राम और सीता के प्रति कहे गये वचन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में कैशिकी वृत्ति दिखायी पड़ती है।

बालरामायण नाटक में कैशिकी वृत्ति कतिपय स्थलों पर ही दिखायी पड़ती है, जबकि प्रसन्नराघव नाटक में कैशिकी का ही बहुलता से प्रयोग हुआ है, क्योंकि इस नाटक का अङ्गी रस शृङ्गार है। अतः सर्वत्र कैशिकी ही दिखायी पड़ती है।

आरभटी वृत्ति

> **आरभटी पुनः**
> **मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः।।**[3]

अर्थात् माया, इन्द्रजाल, सङ्ग्राम, क्रोध उद्भ्रान्ति आदि चेष्टाओं के द्वारा आरभटी वृत्ति होती है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार जहाँ प्रचुरता से आरभट के गुण हों जो बहुत प्रकार के कपट तथा वञ्चना से युक्त हो, दम्भ, अनृतवचन से युक्त हो वहाँ आरभटी वृत्ति होती है।[4]

बालरामायण में आरभटी वृत्ति का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है। यहाँ पर आरभटी वृत्ति की सार्थकता है। अष्टम अङ्क में युद्ध के समय कुम्भकर्ण के द्वारा आग्नेय अस्त्र छोड़े जाने पर सब अस्त व्यस्त हो जाता है। उसी का वर्णन करते हुये सुमुख नामक पात्र कहता है—

> **सद्यः सिञ्चति विष्टराम्बुजमयं देवः श्रुतीनां कविः**
> **तारान्तः पुरवानुपैति गगनाच्चन्द्रो जलार्द्रावृतः।**
> **गङ्गा च द्युमणेः सुता च सरितावन्योन्यमाश्लिष्यतः**
> **किञ्चास्त्रानलडम्बरे करिमुखः क्षीराब्धिमाधावति।।**[5]

अर्थात् ये वेदगायक देव ब्रह्मा, कितनी जल्दी-जल्दी आसनकमल सींच रहे हैं, भीगी छतरी ओढ़े हुये चन्द्रमा पत्नी तारा के साथ आकाश से हट रहे हैं, गङ्गा और

अर्धश्यामोपलार्धस्फटिकमिव दिशामन्तरालं विधत्ते
कालिन्दीजह्नुकन्यामिलदमलजलस्यन्दसन्दोहमैत्रीम्।। वही २/३३

१. मुग्धस्य केलिविजितस्मरचापयष्टेरातवन्ती रुचिमतीव सुधाकरस्य।
रागोद्धुरा स्फुटमुदञ्चितताराकश्रीः सन्ध्याविरस्ति ननुकाऽपि पतिंवरेव।। वही २/३१

२. करकिसलयलीलाचारुचण्डीशचापे दशरथतनयेन स्वैरमाकृष्यमाणे।
रससरसविकासी सीतया पुङ्खितोऽसौ कुवलयदलदामश्यामकान्तिः कटाक्षः।। वही ३/४४

३. द. रू. २/५६

४. आरभटप्रायगुणा तथैव बहुवचनकपटा च।
दम्भानृतवचनवती त्वारभटी नाम विज्ञेया।। ना. शा. २३/५६

५. बालरा. ८/४६

यमुना नदियाँ एक-दूसरे से लिपट रही हैं तथा आग्नेय अस्त्र से घबराये हुये गणेश क्षीरसमुद्र भागे जा रहे हैं।

इस पद्य में दिव्यास्त्रों का प्रयोग होने से ब्रह्मा का आसनकमल को सींचना, चन्द्रमा का आकाश से हटना, गङ्गा और यमुना का परस्पर निपटना और गणेश के क्षीरसमुद्र में भागने से विद्रव की स्थिति उत्पन्न हो रही है। अतः यहाँ पर आरभटी वृत्ति है।

इसके अतिरिक्त युद्ध वर्णन[1] और रावण परशुराम के परस्पर संवाद[2] इत्यादि प्रसङ्गों में आरभटी वृत्ति दिखायी पड़ती है।

प्रसन्नराघव नाटक में आरभटी वृत्ति का प्रयोग कतिपय स्थानों पर ही प्राप्त होता है। चतुर्थ अङ्क में जब परशुराम कहते हैं—

क्षण्णक्षत्रकठोरकण्ठविगलत्कीलालधारासरि-
न्निर्वृत्ताभिषवस्य कृत्तशिरसां केशान्कुशान्कुर्वतः।
गृह्णन् रक्तजलाञ्जलीन् पितृगणो यस्य क्षणं विस्मितः
सन्तोषेण जुगुप्सया करुणया त्रासेन हासेन च।।[3]

अर्थात् काटे गये क्षत्रियों की गर्दनों से प्रवाहित रक्तप्रवाह वाली नदी में स्नान करने वाले, काटे गये शिरों के केशों को तर्पण का कुश बनाने वाले मेरे पितर लोग खून की जलाञ्जलियों को ग्रहण करते हुये सन्तोष से, घृणा से, दया से, भय से, हँसी से भी क्षण भर के लिये आश्चर्यचकित हो गये।

इस पद्य में परशुराम द्वारा स्वयं की प्रशंसा करने से उनका अहङ्कार प्रदर्शित हो रहा है, अतः आरभटी वृत्ति है। इसी प्रकार परशुराम के दम्भ प्रदर्शन[4] इत्यादि प्रसङ्गों में इस वृत्ति का प्रयोग दिखायी पड़ता है।

---

१. दुग्धाब्धेः क्वथनाविलं तत इतो धत्ते पयः पिण्डतां
शैलेन्द्रः प्रविलीनकृत्स्नतुहिनः पाषाणशेषः स्थितः।
सान्द्राभिः करकाश्मवृष्टिभिरमी गर्भं क्षरन्त्यम्बुदाः
प्लोषार्तिञ्च समश्नुते रविरपि स्वाहापतेः पत्रिभिः।। बालरा. ८/५०

२. वीरव्रताज्जहिहि रावण चन्द्रशालां
मा पुष्पकस्य मयि पादचरेऽपि रामे।
पश्यन्त्विमाः समरमप्सरसोऽद्य ताव-
न्नयक्पातिभिर्विहितमूर्ध्वचरैश्च बाणैः।। वही, २/५४

३. प्रसन्नरा. ४/३३

४. कृत्वा त्रिःसप्तकृत्वः समिति विशसनं पूर्वमुर्वीपतीनां
कृत्वान्यत्सप्तकृत्वः पुनरपि कदनं दुर्मदानां नृपाणाम्।
निर्माय क्ष्मापतीनां प्रतिसमरहृतैरुत्तमैरुत्तमाङ्गैः
कापालीमक्षमालां झटिति भगवतो भैरवस्यार्पयामि।। वही, ४/३४

बालरामायण में सात्वती वृत्ति के पश्चात् आरभटी वृत्ति का प्रयोग दिखायी पड़ता है, जबकि प्रसन्नराघव में कतिपय स्थलों पर ही इसका प्रयोग हुआ है।

भारती वृत्ति

रङ्ग प्रसाद्य मधुरैः श्लोकैः काव्यार्थसूचकैः।
ऋतु कञ्चिदुपादाय भारती वृत्तिमाश्रयेत्।।[1]

अर्थात् स्थापक को काव्य के अर्थ को सूचित करने वाले मधुर श्लोकों के द्वारा सामाजिकों को प्रसन्न करके किसी ऋतु का प्रसङ्ग लेकर भारती वृत्ति का आश्रयण करना चाहिये अर्थात् मङ्गलाचरण के पश्चात् जब कवि सूत्रधार के द्वारा यथासम्भव कथा की वस्तु, बीज, मुख अथवा पात्र को भी सूचित कर देता है। तत्पश्चात् काव्यार्थ की स्थापना करता है तब वह प्रधानतया भारती वृत्ति का आश्रय लेता है। प्रकारान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि जहाँ पर कवि प्रधान प्रयोजन का उल्लेख सर्वप्रथम कर देता है, वहाँ पर भारती वृत्ति स्पष्टरूपेण प्राप्त होती है।

भारती वृत्ति के विषय में यह भी कहा गया है कि प्रायः संस्कृत भाषण में नट द्वारा किया गया वाचिक व्यापार भारती वृत्ति कहलाता है जो प्ररोचना, वीथी, प्रहसन तथा आमुख नामक चार अङ्गों से युक्त होता है।[2]

भारती वृत्ति शब्दवृत्ति है नाट्यशास्त्र परम्परा में यह शब्दवृत्ति के रूप में जानी जाती है।

बालरामायण नाटक के प्रथम अङ्क में सूत्रधार कहता है—

मद्विज्ञानं कुलतिलकतां याति दारैरुदारैः
फुल्ला कीर्त्तिर्भ्रमति सुकवेर्दिक्षु यायावरस्य।
धीरोदात्तं जयति चरितं रामनाम्नश्च विष्णोः
काव्यव्याजात्तदियमपरा काप्यहो कामधेनुः।।[3]

अर्थात् मेरा नाट्यशिल्प चतुरस्त्रियों के कारण नट कुल में सर्वश्रेष्ठ है, प्रशस्त यायावर कवि की विकसित सभी दिशाओं में फैली हुयी है और राम नामक विष्णु का धीरोदात्त चरित सर्वोपरि है ही। अतः काव्य के बहाने, यह एक विचित्र कामधेनु उपस्थित है।

इस पद्य में कवि सूत्रधार द्वारा राम के धीरोदात्त चरित द्वारा यह बता रहा है कि प्रस्तुत नाटक की कथा रामाश्रित है। अतः यहाँ पर भारतीवृत्ति का प्रयोग हुआ है।

---

१. द. रू. ३/४

२. भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः।
भेदैः प्ररोचनायुक्तैर्वीथीप्रहसनामुखैः।। वही ३/५

३. बालरा. १/६

इसी प्रकार सूत्रधार और पारिपार्श्विक नामक पात्र के परस्पर वार्तालाप[1] और कोहल नामक पात्र और रावण के परस्पर वार्तालाप[2] इत्यादि प्रसङ्गों में यह वृत्ति दिखायी पड़ती है।

प्रसन्नराघव नाटक के प्रथम अङ्क में नट सूत्रधार से कहता है—

प्रत्यङ्कमङ्कुरितसर्वरसावतार-
न्नव्योल्लसत्कुसुमराजिविराजिबन्धम्।
धर्मेन्तरांशुमिव वक्रतयाऽतिरम्यं
नाट्यप्रबन्धमतिमञ्जुलसंविधानम्।।[3]

अर्थात् प्रत्येक अङ्क में शृङ्गार आदि सभी रसों से युक्त, नवीन तथा विकसित होने वाले फूलों की पङ्क्ति के समान सुन्दर पद रचना वाले चन्द्रमा के समान कुटिलता से अत्यन्त रमणीय, अत्यन्त ललित कथानक वाले, नाटक को आपके द्वारा रङ्गमञ्च पर प्रदर्शित किया जाता हुआ देखेंगे।

इस पद्य में नाटक की प्रशंसा द्वारा सामाजिकों को नाटक देखने के लिये प्रेरित किया जा रहा है। अतः यहाँ भारती वृत्ति है। इसी प्रकार सूत्रधार द्वारा नाटक की कथा की सूचना[4] देने इत्यादि प्रसङ्गों में यह वृत्ति दिखायी पड़ती है।

बालरामायण तथा प्रसन्नराघव नाटकों में भारती, सात्वती, आरभटी और कैशिकी वृत्तियों का प्रयोग प्रसङ्गानुसार सर्वत्र दिखायी पड़ता है।

बालरामायण नाटक में प्रमुख रूप से सात्वती वृत्ति का प्रयोग हुआ है, क्योंकि इस नाटक का अङ्गीरस वीर है। इसलिये अङ्गी रसानुरूप इस वृत्ति को प्रमुखता दी गयी है। कथानक में सहायक रूप में आरभटी, कैशिकी और भारती वृत्तियों का प्रयोग भी हुआ है, जबकि प्रसन्नराघव नाटक में कैशिकी वृत्ति का प्रयोग प्रमुख रूप से दिखायी पड़ता है, क्योंकि इस नाटक का अङ्गीरस शृङ्गार है। कथा में सहायक रूप में भारती, सात्वती और आरभटी वृत्तियों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार विवेच्य नाटकों की कथा में अङ्गी रसानुरूप भिन्न-भिन्न वृत्तियों का प्रयोग प्रमुख रूप से हुआ है।

---

१. क्रमवर्धमानविलासं, रसातले कङ्करोति कन्दर्पः?
निर्भयगुरुव्यर्धत्त च वाल्मीकिकथां किमनुसृत्य? बालरा. १/५

२. श्रवणैः पेयमनेकैर्दृश्यं दीर्घैश्च लोचनैर्बहुभिः।
भवदर्थमिव निबद्धं नाट्यं सीतास्वयंवरणम्।। वही, ३/१२

३. प्रसन्नरा. १/७

४. कीर्तिं मृणालकमनीयभुजामनिद्रचन्द्राननां स्मितसरोरुहचारुनेत्राम्।
ज्योत्स्नास्मितामपहतां दयितामिव स्वां लब्धुं न कः परमुपक्रममातनोति।। वही, १/६

(ख) विवेच्य नाटकों में रीति योजना

रीति शब्द रीङ् गतौ धातु से निष्पन्न है। विश्वनाथ के अनुसार पदों के मेल अथवा सङ्गठन को रीति कहते हैं।[1] वह अङ्गसंस्थान की तरह मानी जाती है। जैसे पुरुषों के शरीर का सङ्गठन होता है उसी प्रकार काव्यों के शरीर रूप शब्दों तथा अर्थों का भी सङ्गठन होता है इसी सङ्गठन को रीति कहते हैं। यह काव्य के आत्मभूत तत्त्व रस, भाव आदि की उपकारक होती है। जिस प्रकार पुरुष या स्त्री की शरीर रचना देखने से सुकुमारता, मधुरता, क्रूरता आदि गुणों की व्यञ्जना के द्वारा रसों का उत्कर्ष होता है। विश्वनाथ ने रीति को चार स्वरूपों में विभक्त किया है।[2] किन्तु अधिकांश लक्षणकार वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली इन तीन रीतियों को मानते हैं।

बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों में वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली तीनों रीतियों का प्रयोग यथावसर किया गया है। सर्वप्रथम उन रीतियों का उल्लेख किया जा रहा है जो दोनों नाटकों में रसानुरूप प्रधान रूप में प्रयुक्त हुई है।

गौडी रीति

ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः।।
समासबहुला गौडी।[3]

अर्थात् ओज को प्रकाशित करने वाले कठिन वर्णों से बनाये हुये अधिक समासों से युक्त उद्भट बन्ध को गौडीरीति कहते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि ओज गुण तथा गौडी रीति परस्पर अन्योन्याश्रित हैं।

बालरामायण नाटक में गौडी रीति का सर्वाधिक प्रयोग राजशेखर ने किया है। पञ्चम अङ्क में रावण बहिन शूर्पणखा से कहता है—

त्रुट्यद्दोर्दण्डखण्डोड्डमरमुरुपतत्कण्ठकोष्ठप्रकोष्ठं
स्फारस्फिक्पृष्ठपीठं हठदलितशिराकन्धराकाण्डखण्डम्।
सस्तम्भं क्षत्रडिम्भं चटदिति विचटन्मुण्डपिण्डप्रपञ्चं
चण्डीशोच्चण्डदंष्ट्राक्रकच इव दृढं चन्द्रहासस्तृणेढु।।[4]

अर्थात् रुद्र के प्रचण्ड दाढ़रूपी आरों जैसा चन्द्रहास दृढ़ता से उस अभिमानी क्षत्रिय को मार डाले। बोटी-बोटी भुजायें कट जायें। गले, पेट और हाथ झड़ जायें। कूल्हे तथा पीठ विदीर्ण हो जायें। गर्दन के टुकड़ों की नसें टूट जायें और खोपड़ी चट् से अलग हो जाये।

---

१. पदसंघटना रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत्।
उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा।। सा. द. ६/१

२. वैदर्भी चाथ गौडी च पाञ्चाली लाटिका तथा। वही, ६/२

३. वही, ६/३

४. बालरा. ५/८०

इस पद्य में उद्धृत पदों और ट,ठ,ड,ढ, इत्यादि कठोर वर्णों से युक्त दीर्घ समासों का प्रयोग होने के कारण यहाँ पूर्ण रूप से गौडी रीति दिखायी पड़ती है।

इसी प्रकार **रावण** की सीता के भावी पति के लिये की गयी प्रतिज्ञा[1], परशुराम और राम के परस्पर वार्तालाप[2] और नारद के स्वयं के लिये कहे गये वचन[3] इत्यादि प्रसङ्गों में गौडीरीति दिखायी पड़ती है।

प्रसन्नराघव नाटक में गौडी रीति का प्रयोग यत्र-तत्र दिखायी पड़ता है। चतुर्थ अङ्क में परशुराम कहते हैं—

> **ईशत्यक्तपुराणचापदलनप्रोद्भूतगर्वोद्धति-**
> **व्यग्रस्त्वं कतरः स मे तव गुरुः सोढुं न शक्तः शरान्।**
> **तुष्टादिष्टवरप्रदाद्भगवतः पद्मासनात् सादरं**
> **मन्नाराचभयादयाचत किल ब्राह्मीं तनुं कौशिकः।।**[4]

अर्थात् शङ्कर जी के द्वारा त्याग दिये गये जीर्ण धनुष को तोड़ने से उत्पन्न गर्व की उद्धत भावना से व्यग्र तुम कौन हो? तुम्हारे गुरु विश्वामित्र भी मेरे बाणों को सहन न कर सके तभी तो विश्वामित्र ने तप से प्रसन्न हुये तथा मनोनुकूल वरदान देने वाले भगवान ब्रह्मा से ब्राह्मण के शरीर को बड़े ही आदरपूर्वक माँगा।

इस पद्य में परशुराम द्वारा राम के गुरु विश्वामित्र के लिये दीर्घ समासयुक्त कठोर और उद्धत वचनों का प्रयोग किया गया है। अतः यहाँ गौडी रीति दिखायी पड़ती है।

इसी प्रकार रावण और बाणासुर के परस्पर वार्तालाप[5] और राम तथा परशुराम के परस्पर वार्तालाप[6] इत्यादि प्रसङ्गों में गौडी रीति का प्रयोग हुआ है।

---

१. कुर्वन् मौर्वीनिवेशक्रमनमदटनि स्पष्टटङ्कारटङ्कं
शम्भोः कोदण्डदण्डं बधिरितभुवनं भूर्भुवः स्वस्त्रयेऽपि।
यस्तामेनां वरीता रसयतु तदसृक् चन्द्रहासो ममासिः
कण्ठास्थिग्रन्थिशल्कीकरणपटुरटत्कारवाचाटधारः।। बालरा. १/६१

२. त्रुटितनिबिडनाडीचक्रवालप्रणाली प्रसृतरुधिरधाराचर्चितोच्चण्डरुण्डम्।
मडमडिति मृडानीकान्तचापस्य भङ्क्तुः परशुरमरवन्द्यः खण्डयत्यद्य मुण्डम्।। वही, ४/६२

३. स्रस्तान्त्रतन्त्रतुरगाणि कृपाणधातघूर्णत्करीण्यनणुपूतनफूत्कृतानि।
धावत्कदम्बकटु ताण्डवडामराणि द्रष्टुं रणान्यहरहस्त्रिजगद् भ्रमामि।। वही, २/७

४. प्रसन्नरा. ४/३७

५. उद्दण्डचण्डिमलसद्भुजदण्डखण्डहेलाचलाचलहराचलचारुकीर्तेः।
कीदृग्यशस्तुलितबालमृणालकाण्डकोदण्डकर्षणकदर्थनयाऽनया मे।। वही, १/४८

६. चण्डीशकार्मुकविमर्दविवर्धमानदर्पावलेपसविशेषविकासभाजोः।
बाह्वोस्तवाहमधुना मधुना समानैराराधयामि रुधिरैः कठिनं कुठारम्।। वही, ४/१६

बालरामायण में प्रसन्नराघव की अपेक्षाकृत गौडी रीति का अधिक प्रयोग हुआ है, क्योंकि बालरामायण में अङ्गीरस वीर होने के कारण इस रीति का प्राधान्य है, जबकि प्रसन्नराघव में वीररस अङ्ग रूप में प्रयुक्त हुआ है। अतः इसमें यह रीति कतिपय स्थानों पर ही दिखायी देती है।

वैदर्भी रीति

> **माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णे रचना ललितात्मिका।।**
> **अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।[1]**

अर्थात् माधुर्य व्यञ्जक वर्णों के द्वारा की गयी समासरहित अथवा छोटे-छोटे समासों से युक्त मनोहर रचना को वैदर्भी रीति कहा गया है। प्रकारान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि जहाँ पर माधुर्य गुण होगा वहाँ पर वैदर्भी रीति भी होगी।

बालरामायण नाटक में कतिपय स्थलों पर वैदर्भी रीति दिखायी पड़ती है। तृतीय अङ्क में स्वयंवर में सीता को देखकर रावण कहता है—

> **तरङ्गय दृशोऽङ्गने पततु चित्रमिन्दीवरं**
> **स्फुटीकुरु रदच्छदं व्रजतु विद्रुमः श्वेतताम्।**
> **क्षणं वपुरपावृणु स्पृशतु काञ्चनं कालिका-**
> **मुदञ्चय मनाङ्मुखं भवतु च द्विचन्द्रं नभः।।[2]**

अर्थात् सुन्दर अङ्गों वाली! आँखें तरङ्गित करो जिससे रङ्गीन कमल गिर जाये। होंठ खोल दो जिससे मूँगा सफेद पड़ जाये। एक क्षण के लिये शरीर का आवरण हटा लो, स्वर्ण में कालिमा आ जाये और तनिक मुख ऊपर उठा लो जिससे आकाश दो चाँद वाला हो जाये।

इस पद्य में छोटे-छोटे समास और माधुर्य व्यञ्जक वर्णों का प्रयोग हुआ है। अतः यहाँ वैदर्भी रीति दिखायी पड़ती है। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु वर्णन[3] और राम के वनवास जाते समय नगरवासियों की व्याकुलता के वर्णन[4] इत्यादि प्रसङ्गों में यह रीति प्रयुक्त हुयी है।

---

१. सा. द. ६/२-३

२. बालरा. ३/२५

३. यावन्नालं कमलकलिकाः प्रातरेव स्फुटन्ति
श्यामामध्ये विकचयति चेन्नीलमब्जं मृगाङ्कः।
ग्रीष्मेऽमुष्मिञ्जरठतरणौ रागिणां गात्रदेयाः
सद्यः शुष्का अपि च सलिलैः संस्क्रियन्ते जलार्द्राः।। वही, ५/२५

४. गाढोरः स्थलताडनत्रुटिधृतैर्हारावलीमौक्तिकैः
सन्दिग्धीकृतबाष्पबिन्दु रुदितं पौराङ्गनाभिस्तथा।
आमूलश्लथपक्षतिस्थितिनतग्रीवाग्रतुण्डं यथा
वीथीपञ्जरवर्तिभिः शुककुलैरप्युत्कमुत्कूजितम्।। वही, ६/३१

प्रसन्नराघव नाटक में वैदर्भी रीति की प्रधानता दिखायी पड़ती है। यद्यपि टीकाकार डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी[1] और पं. रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री[2] ने प्रसन्नराघव में पाञ्चाली रीति की प्रधानता बतायी है तथापि मेरी दृष्टि में यह नाटक वैदर्भी रीति प्रधान है, क्योंकि इसमें शृङ्गार रस अङ्गीरस के रूप में है और सम्पूर्ण कथा में माधुर्यव्यञ्जक पदावली का प्रयोग बहुतायत से किया गया है। द्वितीय अङ्क में राम, सीता को देखकर कहते हैं—

उत्तरङ्गय कुरङ्गलोचने! लोचने कमलगर्वमोचने।
अस्तु सुन्दरि! कलिन्दनन्दिनीवीचिडम्बरगभीरमम्बरम्।।[3]

अर्थात् हे मृगनयनी, कमलों के घमण्ड को चूर-चूर कर देने वाली अपनी आँखों को ऊपर उठाओ जिससे आकाश यमुना की तरङ्गों के समान नीलवर्ण हो जाय।

इस पद्य में छोटे-छोटे समास और अत्यन्त मधुर पदावली का प्रयोग दिखायी पड़ता है। अतः यहाँ पूर्ण रूप से वैदर्भी रीति का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार सीता का सौन्दर्य वर्णित करते हुये चेटी कहती है—

अयि! तवमुखलेखा चन्द्रबिम्बे सस्नेहा
दशनकिरणलक्ष्मीरच्छज्योत्स्नासदृक्षा।
कुवलयदलद्रोणीकन्दरायां वहन्ती
तरलबहलमिष्टा दुन्धधारेव दृष्टिः।।[4]

अर्थात् हे राजकुमारी आपकी मुखरेखा चन्द्रबिम्ब के समान है। दाँतों की चमक की शोभा निर्मल चाँदनी के समान है और दृष्टि नीलकमल के पत्ते के दोनों के मध्यभाग में बहती हुयी चञ्चल और मधुर दूध की धारा के समान है।

इस पद्य में सीता के लिये अत्यन्त ही सरस और मधुर पदावली का प्रयोग किया गया है। अतः वैदर्भी रीति है। इसके अतिरिक्त शतानन्द द्वारा राम और लक्ष्मण की प्रशंसा[5] और राम द्वारा परशुराम के प्रति कहे गये वचन[6] इत्यादि प्रसङ्गों में वैदर्भी रीति दिखायी पड़ती है।

---

१. प्रसन्नरा. प्रस्ता/पृ. १३
२. वही, भू./पृ. ३१
३. वही, २/२२
४. वही, २/२६
५. एतयोरहमुदाररूपयोरुल्लसत्सहजसौहृदश्रियोः।
कामपि स्वजनतां विभावये कौस्तुभामृतमयूखयोरिव।। प्रसन्नरा. ३/१९
६. क्व परशुरशुभस्ते? कुत्र गोत्रं पवित्रं?
क्व धनुरिदमुदग्रं? निर्मलं कुत्र शीलम्?
घनसमरकराला कुत्र नाराचहेला?
कुशकि लयलीला कुत्र वा पर्णशाला? वही, ४/३२

बालरामायण में प्रसन्नराघव की अपेक्षा कम स्थलों पर वैदर्भी रीति का प्रयोग हुआ है। प्रसन्नराघव में सर्वाधिक वैदर्भी रीति प्रयुक्त होने का कारण इस नाटक की छोटे-छोटे समासों से युक्त, अत्यन्त कोमल पदावली है।

पाञ्चाली रीति

वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः।
समस्तपञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिका मता।।[1]

अर्थात् वैदर्भी तथा गौडी रीति के व्यञ्जक वर्णों से भिन्न वर्णों से युक्त रचना जिसमें पाँच-छः पदों तक का समास हो, पाञ्चाली रीति कहलाती है।

बालरामायण नाटक के पञ्चम अङ्क में रावण विरहोन्माद की दशा में कहता है—

दूरे तिष्ठतु, वारुणी विरहिणां का नाम पानस्पृहा
लक्ष्मीः क्षीरमहोदधेरपि सुता स्वाहेव दाहे पटुः।
वाचालासि सरस्वति व्रज गृहान् कः सूक्तिगोष्ठीक्षणो
यत्सत्यं न ममाद्य किञ्चन मुदे सीताप्रसादं विना।।[2]

अर्थात् मदिरा दूर हो, विरहियों को पीने की कैसी इच्छा, लक्ष्मी क्षीर समुद्र की बेटी होकर भी जलाने में स्वाहा की तरह चतुर है, सरस्वती! तुम बातूनी हो, घर जाओ यहाँ कविगोष्ठी का अवसर नहीं है। सचमुच आज सीता के बिना मुझे कोई प्रसन्न नहीं कर सकता।

इस पद्य में मधुर और सरस शब्दों का प्रयोग होने के साथ ही रावण की क्रोध से पूर्ण उक्तियों का भी आभास हो रहा है। अतः यहाँ पर पाञ्चाली रीति है।

इसी प्रकार सीता स्वयंवर के समय रावण और प्रहस्त नामक पात्र के परस्पर वार्तालाप[3] और रावण तथा शतानन्द के परस्पर वार्तालाप[4] इत्यादि प्रसङ्गों में यह रीति दिखायी पड़ती है।

प्रसन्नराघव नाटक में वैदर्भी के बाद पाञ्चाली रीति का ही प्रयोग हुआ है। इस

---

१. सा. द. ६/४

२. बालरा. ५/५२

३. ताम्बूलीनद्धमुग्धक्रमुकतरुतलप्रस्तरे साभिकाभिः
पायं पायं कलाचीकृतकदलदलं नारिकेलीफलाम्भः।
सेव्यन्तां व्योमयात्राश्रमजलजयिनः सैन्यसीमन्तिनीभि-
र्दात्यूहव्यूहकेलीकलितकुहकुहारावकान्ता वनान्ताः।। बालरा. १/६३

४. यत्पार्वतीकुचहठ ग्रहणप्रवीणे पाणौ स्थितं पुरभिदः शरदां सहस्रम्।
गीर्वाणसारकणनिर्मितगात्रमत्र, तन्मैथिलीक्रयधनं धनुराविरस्तु।। वही, १/३६

नाटक का आरम्भ ही पाञ्चाली रीति प्रधान पद्य से हुआ है। प्रथम अङ्क में नाटककार मङ्गलाचरण करते हुये कहते हैं—

> चत्वारः प्रथयन्तु विद्रुमलतारक्ताङ्गुलिश्रेणयः
> श्रेयः शोणसरोजकोरकरुचस्ते शार्ङ्गिणः पाणयः।
> भालेष्वब्जभुवो लिखन्ति युगपद्ये पुण्यवर्णावलीः
> कस्तूरीमकरीः पयोधरयुगे गण्डद्वये च श्रियः।।[1]

अर्थात् मूँगे की लता के समान लाल अंगुलियों वाले, रक्त कमलों की कली की कान्ति वाले, विष्णु के चारों हाथ कल्याण का विस्तार करें, जो हाथ ब्रह्मा जी के ललाटों में अक्षरों की पङ्क्तियों को तथा लक्ष्मी के दोनों विशाल स्तनों और कपोलों पर भी कस्तूरी से मकरिका के आकार की पत्ररेखाओं को एक साथ लिखते हैं।

इस पद्य में कोमल, सरस और कठोर वर्णों के साथ ही पाँच-छः पदों वाले समास दिखायी पड़ते हैं। अतः यहाँ पर पूर्णरूप से पाञ्चाली रीति का प्रयोग हुआ है।

इसीप्रकार नट और सूत्रधार के परस्पर वार्तालाप[2] और राम के लता के प्रति कहे गये वचन[3] इत्यादि प्रसङ्गों में पाञ्चाली रीति दिखायी पड़ती है।

बालरामायण में प्रसन्नराघव की अपेक्षाकृत कतिपय स्थलों पर पाञ्चाली रीति दिखायी पड़ती है। इसका कारण यह है कि प्रसन्नराघव में शृङ्गाररस की प्रधानता है जबकि बालरामायण में वीररस की प्रधानता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विवेच्य नाटकों में वृत्ति और रीति का प्रयोग यथावसर किया गया है। दोनों नाटकों की कथा का आधार एक होते हुये भी दोनों की कथाओं में वृत्ति और रीति योजना अलग-अलग रूप में की गयी है, क्योंकि दोनों का अङ्गीरस भिन्न-भिन्न है। रस की दृष्टि से बालरामायण में सात्वती और आरभटी वृत्तियों का प्राधान्य है तो प्रसन्नराघव में कैशिकी वृत्ति का इसी प्रकार बालरामायण में गौडी रीति प्रमुख रूप में दिखायी पड़ती है जबकि प्रसन्नराघव में वैदर्भी का प्रयोग मुख्य रूप से किया गया है।

※

---

१. प्रसन्नरा. १/१

२. कीर्तिं मृणालकमनीयभुजामनिद्रचन्द्राननां स्मितसरोरुहचारुनेत्राम्।
ज्योत्स्नास्मितामपहृतां दयितामिव स्वां लब्धुं न कः परमुपक्रममातनोति।। प्रसन्नरा. १/६

३. स्तनविजितस्तबकश्रीरधराधरितप्रवालनवलक्ष्मीः।
अयि लतिके! तिरयन्ती तरलदृशं नावलम्बसे लज्जाम्।। वही, २/१२

षष्ठ अध्याय

बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—गुण तथा दोष योजना

गुण

आचार्य मम्मट के अनुसार गुण काव्यात्मभूत रस के अङ्गी तथा उत्कर्षाधायक तत्त्व होते हैं। जिस प्रकार शूरता इत्यादि आत्मा के धर्म हैं उसी प्रकार गुण काव्य में प्रधान तत्त्व रस के धर्म हैं। इनकी स्थिति भी रस के साथ नियत होती है।[1]

गुण को तीन भागों में विभक्त किया गया है—माधुर्य, ओज तथा प्रसाद।[2]

बालरामायण तथा प्रसन्नराघव नाटकों में माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों का प्रयोग यथावसर किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय में सर्वप्रथम विवेच्य नाटकों में प्रमुख रूप से प्रयोग किये गये गुणों का वर्णन किया जा रहा है।

ओज गुण

दीप्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति।।[3]

अर्थात् दीप्तिरूप चित्त के विस्तार का हेतु ही ओजगुण है उसकी स्थिति वीररस में होती है। इस गुण की उत्कृष्टता क्रमशः बीभत्स तथा रौद्र रस में होती है।[4] इस गुण के व्यञ्जक शब्दों का उल्लेख मम्मट के अनुसार इस प्रकार है—वर्गों के प्रथम तथा तृतीय वर्ण के साथ द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ण का योग होने पर किसी वर्ण के द्वित्व प्रयोग से ओजो गुण होता है। इसके अतिरिक्त रेफ के साथ किसी वर्ण का संयोग तथा ट वर्ग श, ष, सदृश वर्ण ओजोगुण व्यञ्जक होते हैं। ओजोगुण प्रधान रचना में दीर्घ समास की बहुलता तथा विकट रचना को भी प्रमुख माना गया है।[5]

बालरामायण नाटक में प्रमुख रूप से ओज गुण का प्रयोग हुआ है। तृतीय अङ्क में शिव-धनुष को चढ़ाने से पहले राम, लक्ष्मण से कहते हैं—

---

१. ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।। का. प्र. ८/६६

२. माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा।। सा. द. ८/१

३. का. प्र. ८/६६

४. बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च। वही, ८/७०

५. योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययोरेण तुल्ययोः।।
टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि।। वही, ८/७५

मद्दोर्दण्डद्वयाक्रान्त्या, वत्स लक्ष्मण! लक्षय।
स्फुटिष्यति नु कोदण्डं, त्रुटिष्यति नु वा पुनः।।[1]

अर्थात् वत्स लक्ष्मण! देखो! मेरी दोनों भुजाओं से शिव धनुष या तो चढ़ जायेगा या फिर टूट जायेगा।

इस पद्य में द्द, द्व, क्र, त्र इत्यादि वर्ण द्वित्व के रूप में प्रयुक्त हुये हैं और ट, ड, ण, ष इत्यादि वर्णों का प्रयोग भी होने के कारण यहाँ ओज गुण दिखायी पड़ता है।

इसी प्रकार राम और परशुराम के परस्पर वार्तालाप[2], स्कन्द और गणेश के साथ परशुराम के युद्ध[3] और रावण द्वारा शिव धनुष का तिरस्कार किये जाने[4] इत्यादि प्रसङ्गों में ओज गुण का प्रयोग हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में कतिपय स्थलों पर ओजगुण दिखायी पड़ता है। प्रथम अङ्क में सीता स्वयंवर में रावण कहता है—

दोष्णां न मे विदितवानसि वीरलक्ष्मी-
प्रासादविभ्रमवतीं पदवीं गरिष्ठाम्।
ये चन्द्रशेखरगिरौ करपल्लवाङ्क-
पर्यङ्कशायिनि दधुः कलशप्रतिष्ठाम्।।[5]

अर्थात् वीरता की लक्ष्मी के निवास-स्थान के विलास से सम्पन्न, मेरी भुजाओं के गौरवपूर्ण चरित्र को तुम नहीं जानते हो जिन्होंने हथेलीरूपी पलङ्ग पर स्थित कैलास पर्वत में कलश की स्थिति को धारण किया।

इस पद्य में भ्र, ष्ठ, द्र, ल्ल, ङ्क इत्यादि वर्ण द्वित्व रूप में और ठ, ण, श, ष इत्यादि वर्णों का प्रयोग होने के कारण ओजगुण दिखायी पड़ता है।

१. बालरा. ३/७४

२. रुद्राणीधर्मसूनुर्विशिखविलिखित च्छिन्नकौञ्चाद्रिकुञ्जः
स्कन्दावस्कन्ददायी कृतरणरसिक क्षत्रियक्षोदकेलिः।
दत्तोर्वीनव्यभिक्षः शरविधुतपयोराशिबद्धाश्रमोऽहं
श्रेष्ठः श्रीकण्ठशिष्यो धनुषि धृतरतिर्ब्राह्मणो रैणुकेयः।। वही, ४/६५

३. नन्दन्नन्दिनि चण्डचण्डचरिते हेलाचलच्चन्द्रम-
स्युद्दामद्विरदास्यहास्यरसवत्याविष्टघण्टामुखे।
भ्राम्यद्भृङ्गिरिटावभङ्गुर गणग्रामे सहैवोमया
सङ्ग्रामे प्रहरन्नयं दिशि दिशि प्रेम्णा हरेणेक्ष्यते।। वही, ४/१९

४. घुणव्रणनभङ्गुरं पशुपतेः पुराणं धनुर्निरीक्ष्य भुजमण्डलीबलमदाद्विकीर्णं मया।
स एष न तितिक्षते समरसीम्नि सीरध्वजः समं हसत हे मुखान्यसममेतदुद्घट्टनम्।।
वही, १/५५

५. प्रसन्नरा. १/५०

इसी प्रकार रावण और बाणासुर के परस्पर वार्तालाप[1] और राम द्वारा परशुराम का वर्णन करने[2] इत्यादि प्रसङ्गों में ओज गुण का प्रयोग हुआ है।

बालरामायण नाटक में ओज गुण सर्वत्र छाया हुआ है, जबकि प्रसन्नराघव नाटक में कतिपय स्थलों पर ओज गुण दिखायी पड़ता है। बालरामायण में ओज गुण का प्राधान्य होने का कारण यह है कि इसमें वीर रस अङ्गी के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जबकि प्रसन्नराघव नाटक में वीर रस अङ्ग रूप में प्रयुक्त हुआ है। अतः कतिपय स्थलों में ही ओज गुण का प्रयोग दिखायी पड़ता है।

माधुर्यगुण

आह्लादकत्वं माधुर्य्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम्।।[3]

अर्थात् चित्त में द्रवणशीलता का कारण प्रमुख तत्त्व आह्लादकता ही माधुर्य है तथा यह शृङ्गार रस में होता है। यह माधुर्यगुण करुण, विप्रलम्भ, शृङ्गार तथा शान्त रस में उत्तरोत्तर वैशिष्ट्य को प्राप्त होता है।[4] माधुर्यगुण के व्यञ्जक वर्णों का भी प्रयोग मम्मट ने किया है।

उनके अनुसार माधुर्य गुण में प्रायः ट, ठ, ड, ढ जैसे पुरुष वर्णों का प्रयोग नहीं होता है तथा क से लेकर म पर्यन्त ऐसे स्पर्श वर्णों का प्रायः प्रयोग किया जाता है जो पूर्व भाग में अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त हों। इसमें रेफ तथा णकार का मध्य में ह्रस्व प्रयोग किया जाता है। माधुर्य गुण वाली रचना में समास का अभाव अथवा अल्प समास का भी होना आवश्यक होता है।[5]

बालरामायण के तृतीय अङ्क में विश्वामित्र जनक की प्रशंसा करते हुये कहते हैं—

स्थितिः पुण्येऽरण्ये सह परिचयो हन्त हरिणैः
फलैर्मेध्या वृत्तिः प्रतिनदि च तल्पानि दृषदः।
इतीयं सामग्री फलति हि विरक्त्यै स्पृहयतां
वनं वा गेहं वा सदृशमुपशान्तस्य मनसः।।[6]

---

१. त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कण्ठिता धीर्मम न जनकपुत्री-पाणिपद्मग्रहाय।
अपि तु बहुलबाहुव्यूहनिर्व्यूहहमालाबलपरिमलहेलाताण्डवाडम्बराय।। प्रसन्नरा. १/५१

२. वेध्यं क्रौञ्चमहीधरस्य शिखरं देयं धरित्रीतलं प्रत्यग्रक्षितिखण्डदण्डविधिक्रीडाविधेयोऽम्बुधिः।
जेयस्तारकसूदनो युधि करक्रीडाकुठारस्य च च्छेद्यं यस्य बभूव हैहयपतेरुद्दामदोःकाननम्।।
वही, ४/१६

३. का. प्र. ८/६८

४. करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितं। वही, ८/६९

५. मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाःस्पर्शा अटवर्गा रणौलघु।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा।। का. प्र. ८/७४

६. बालरा. ३/१७

अर्थात् पुण्य वन में रहना, हिरनों के साथ उत्साहपूर्ण परिचय, फलों का पवित्र भोजन और प्रत्येक नदी तट पर प्रस्तर शय्या, ऐसी सामग्री उनके लिये हितकारिणी होती है जो विरक्ति पाने की कामना करने वाले होते हैं। पूर्णतः प्रशान्त मन के लिये तो वन हों या घर बराबर ही हैं।

इस पद्य में ग, च, त, द, ध, न, प, फ, म इत्यादि माधुर्य व्यञ्जक वर्णों के प्रयोग के साथ ही शान्त रस का वर्णन है। अतः यहाँ पर माधुर्य गुण दिखायी पड़ता है।

इसी प्रकार रावण की सीता के प्रति कही गयी उक्ति[1] और राम द्वारा कठपुतली-रूपी सीता का कटा हुआ सिर देखकर विलाप करने[2] इत्यादि प्रसङ्गों में माधुर्य गुण प्रस्फुटित हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में सर्वाधिक माधुर्य गुण का ही प्रयोग हुआ है। प्रथम अङ्क में नाटक के आरम्भ में मङ्गलाचरण करता हुआ नाटककार कहता है—

आकल्पं मुरजिन्मुखेन्दुमधुरोन्मीलन्मरुन्माधुरी-
धीरोदात्तमनोहरः सुखयतु त्वां पाञ्चजन्य ध्वनिः।
लीलालङ्घित मेघनादविभवो यः कुम्भकर्णव्यथा-
दायी दानवदन्तिनां दशमुखं दिक्चक्रमाक्रामति।।[3]

अर्थात् परिश्रम बिना ही बादलों की गड़गड़ाहट के प्रभाव का अतिक्रमण करने वाली, दानवरूपी हाथियों के गण्डस्थल और कानों को पीड़ा देने वाली जो विष्णु के मुख से मधुरता के साथ निकलने वाली वायु की मधुरता से गम्भीर, उत्कृष्ट और मनोहर, पाञ्चजन्य शङ्ख की ध्वनि दश दिशाओं में आक्रमण कर रही है वह आप सामाजिकों को कल्पपर्यन्त सुखी करे।

इस पद्य में क, ख, घ, च, ज, त, थ, द, न, प, म इत्यादि माधुर्य व्यञ्जक वर्णों के द्वारा कथावस्तु की सूचना मङ्गलसूचक शब्दों के माध्यम से दी गयी है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर शान्त रस का भी प्रभाव दिखायी पड़ता है इसलिये पूर्णरूपेण माधुर्य गुण का प्रयोग हुआ है।

---

१. तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता शशिकथा तच्चेत्स्मितं का सुधा
सा दृष्टिर्यदि हारितं कुवलयैस्ताश्चेद्गिरो धिङ्मधु।
सा चेत्कान्तिरतन्त्रमेव कनकं किं वा बहु ब्रूमहे
यत्सत्यं पुनरुक्तवस्तुविरसः सर्गक्रमो वेधसः।। बालरा. २/१७

२. इन्दोः सम्प्रति कान्तिरस्तु विमला दीर्घा मृगीणां दृशः
स्वादिष्ठा कलकण्ठिवाक्किसलयान्येकान्तरक्तानि च।
यातायां त्वयि तस्य राक्षसपतेर्दुस्सञ्चरं गोचरं
यद्वा तस्य गभीरमास्यकुहरं दुर्मेधसो वेधसः।। वही, ७/७४

३. प्रसन्नरा. १/२

इसी प्रकार रावण द्वारा सीता के प्रति कहे गये वचन[1], राम के लता के प्रति कहे गये वचन[2], विश्वामित्र के जनक के प्रति कहे गये वचन[3] और राम के सीता के विरह में नदी के प्रति कहे गये वचन[4] इत्यादि प्रसङ्गों में माधुर्य गुण का प्रयोग हुआ है।

बालरामायण नाटक में कतिपय स्थलों पर ही माधुर्य गुण का प्रयोग हुआ है जबकि प्रसन्नराघव नाटक में प्रमुख रूप से यही गुण दिखायी पड़ता है इसका एक प्रमुख कारण नाटक में शृङ्गार रस का अङ्गी रूप में होना है इसीलिये प्रसन्नराघव में माधुर्य गुण का बाहुल्य है जबकि बालरामायण में शृङ्गार रस अङ्ग रूप में प्रयुक्त हुआ है। अतः बालरामायण के कुछ प्रसङ्गों में ही माधुर्य का प्रयोग दिखायी पड़ता है।

प्रसादगुण

शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।।
व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः।[5]

अर्थात् जिस प्रकार सूखे ईंधन में अग्नि तथा स्वच्छ वस्त्र में जल सहसा व्याप्त हो जाता है। उसी प्रकार जो गुण सहसा ही चित्त में व्याप्त हो जाता है वह प्रसाद गुण कहलाता है।

यह सभी रसों में विद्यमान रहता है। रस पेशल काव्य में प्रसादगुण की सत्ता सहज रूप से विद्यमान रहती है। इस गुण के व्यञ्जक वर्णों के श्रवण मात्र से ही अर्थ का बोध हो जाता है।[6]

बालरामायण नाटक के तृतीय अङ्क में विश्वामित्र किस प्रकार राम को ताड़का वध करने का आदेश देते हैं इस प्रसङ्ग को चित्रशिखण्ड नामक पात्र सुवेगा नामक पात्र को बताते हुये कहता है—

कालरात्रिकरालेयं स्त्रीति किं विचिकित्ससे?
तज्जगत्त्रितयं त्रातुं, तात ताडय ताडकाम्।।[7]

---

१. कदली कदली, करभः करभः, करिराजकरः करिराजकरः।
भुवनत्रितयेऽपि बिभर्त्ति तुलामिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः।। प्रसन्नरा. १/३७

२. स्तनविजितस्तबकश्रीरधराधरितप्रवालनवलक्ष्मीः।
अयि लतिके! तिरयन्ती तरलदृशं नावलम्बसे लज्जाम्।। वही, २/१२

३. जज्ञिवान् दशरथः स हि राजा राममिन्दुमिव सुन्दरगात्रम्।
लोकलोचनविगाहनशीलां त्वं पुनः कुमुदिनीमिव सीताम्।। वही, ३/२६

४. कल्लोलिनि! त्वमिव साऽपि कुरङ्गनेत्रा नूनं किमप्यनुदिनं क्रशिमानमेति।
एतावदस्ति भवतीह निसर्गशीता सीता पुनर्वहति कामपि तापमुद्राम्।। वही, ६/४

५. का. प्र. ८/७०-७१

६. श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत्।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः।। वही, ८/७६

७. बालरा. ३/५

अर्थात् हे वत्स! यह कालरात्रि के समान भयङ्कर है। स्त्री समझकर क्यों हिचक रहे हो? तीनों लोकों की रक्षा के लिये ताड़का को मारो।

इस पद्य के श्रवण मात्र से ही सम्पूर्ण अर्थ की प्रतीति सहज रूप में हो रही है। अतः यहाँ प्रसाद गुण है।

इसी प्रकार प्रहस्त नामक पात्र द्वारा रावण की काम शान्ति के लिये सभी देवताओं को आदेश देने[1] और सुमन्त्र नामक पात्र द्वारा वनवास के समय सीता की स्थिति के वर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में प्रसाद गुण दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक के चतुर्थ अङ्क में परशुराम राम को विष्णु रूप में जानकर राम से कहते हैं—

कमलबन्धुविलोचन! यस्त्वया स्वमहिमोन्नमनैरधरीकृतः।
न किमसावधरीकुरुते नरस्त्रिदशकोटिकिरीटमणीनपि।।[3]

अर्थात् कमल के समान नेत्र वाले! तुमने अपनी महिमा को प्रकट करके जिसको नीचा दिखलाया है वह व्यक्ति तीस करोड़ देवताओं की मुकुट मणियों को भी क्या नीचा नहीं दिखाता है?

इस पद्य के श्रवण मात्र से ही इसके अर्थ का ज्ञान हो जाता है। अतः यहाँ पर प्रसाद गुण है।

इसी प्रकार सूत्रधार द्वारा नाटककार की सूक्तियों की प्रशंसा[4], जनक और विश्वामित्र के परस्पर वार्तालाप[5] और सरयू और गङ्गा नदियों के परस्पर वार्तालाप[6] इत्यादि प्रसङ्गों में प्रसादगुण दिखायी पड़ता है।

---

१. राहो तर्जय भास्करं वरुण हे निर्वाप्यतां पावकः
सर्वे वारिमुचः समेत्य कुरुत ग्रीष्मस्य गर्वच्छिदाम।
प्रालेयाचल चन्द्र दुग्धजलधे हेमन्त मन्दाकिनि
द्राग्देवस्य गृहानुपेत भवतां सेवाक्षणो वर्तते।। बालरा. ५/२४

२. मूले मूले पथि विटपिनां खेदिनी दीर्घमास्ते, शुष्यत्कण्ठी पिबति सलिलं निर्झरे निर्झरे च।
जातत्रासा निमिषति दृशं कन्दरे कन्दरे च, स्थाने स्थाने वहति च मतिं बद्धवासाभिलाषा।। वही, ६/४६

३. प्रसन्नरा. ४/४६

४. अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः परभणितिषु तोषं यान्ति सन्तः कियन्तः।
निजघन-मकरन्द-स्यन्द-पूर्णालवालः कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः? वही, १/१६

५. गाधिनन्दन! न नन्दनजन्मा तादृशः स हरिचन्दनशाखी।
यादृशो मम भवत्पदपद्मद्वन्द्ववन्दनविधिः सुखहेतुः।। प्रसन्नरा. ३/६

६. बाला विदेहतनया, तरलौ भवन्तौ दिग् दक्षिणा च रजनीचरचक्रदुष्टा।
तद्वत्स! वत्सलतयेदमुदाहरामो मा राम! गच्छ नयदक्षिण! दक्षिणाशाम्।। वही, ५/१५

बालरामायण तथा प्रसन्नराघव दोनों ही नाटकों में प्रसाद गुण दिखायी पड़ता है। यद्यपि प्रसाद गुण सभी रसों में विद्यमान रहता है तथापि बालरामायण में ओजोगुण का बाहुल्य होने के कारण कठोर और क्लिष्ट वर्णों का प्रयोग अधिक हुआ है। अतः यहाँ पर प्रसाद गुण लक्षणानुसार सहज रूप में नहीं दिखायी पड़ता है, जबकि प्रसन्नराघव में माधुर्य गुण का बाहुल्य होने के कारण कोमल और सरसतापूर्ण वर्णों का प्रयोग अधिक हुआ है। अतः यहाँ पर प्रसाद गुण लक्षणानुसार सहजरूप में सम्पूर्ण कथानक में छाया हुआ है।

यद्यपि दोनों नाटकों में माधुर्य, ओज और प्रसाद ये तीनों गुण दिखायी पड़ते हैं तथापि प्रधानता की दृष्टि से देखा जाय तो बालरामायण में वीर रस प्रधान होने के कारण राजशेखर ने ओज गुण को प्राथमिकता दी है जबकि प्रसन्नराघव में शृङ्गार रस की प्रधानता होने के कारण जयदेव ने माधुर्य गुण को प्राथमिकता दी है। प्रसन्नराघव में माधुर्य गुण के साथ ही प्रसाद गुण भी सर्वत्र दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार दोनों ही नाटकों में अङ्गीरसानुरूप माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों का समावेश दिखायी पड़ता है।

दोष

दोषरहित और गुणसहित शब्दार्थ को ही काव्य कहा जाता है भले ही उसमें अलङ्कार हो या न हो।[1] आचार्य मम्मट तथा विश्वनाथ का कथन है कि काव्य में दोष वे कहे जाते हैं जो रस के अपकर्षक होते हैं। ये दोष मूलतः रस तथा भाव आदि के आश्रयभूत वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्यार्थगत होते हैं। शब्द, वर्ण और रचना आदि के द्वारा प्रस्तुत होने के कारण ये परम्परानुसार रसापकर्षक होने के साथ-साथ प्रत्यक्षतः शब्दनिष्ठ भी कहे जा सकते हैं।[2] आचार्यों ने दोषों को पाँच प्रकारों में विभक्त किया है।[3]

बालरामायण तथा प्रसन्नराघव नाटकों में भी यदा-कदा एकाध काव्य दोषों की प्रतीति होती है।

बालरामायण नाटक में राजशेखर ने ६७ पात्रों की योजना करके दश अङ्कों का महानाटक खड़ा कर दिया है। अतः अभिनेयता की दृष्टि से यह उतना सहज तथा

---

१. तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि। — का. प्र. १/४

२. (क) मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्यः।
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः।
हतिरपकर्षः। शब्दाद्या इत्याद्यग्रहणाद्वर्णरचने। — का. प्र. ७/४६

(ख) रसापकर्षका दोषाः। — सा. द. ७/१

३. ते पुनः पञ्चधा मताः।
पदे तदंशे वाक्येऽर्थे सम्भवन्तिरसेऽपि यत्।। — वही, ७/१

व्यवहारिक नहीं प्रतीत होता है। यद्यपि नाटक के नाम से ही यह प्रतीत होता है कि नाटक की कथा रामाश्रित है तथापि सम्पूर्ण नाटक में राजशेखर ने राम की अपेक्षा रावण के चरित को अधिक वर्णित किया है। उन्होंने पूर्ण रूप से रावण के धीरोद्धात स्वरूप को नाटक में प्रस्तुत कर दिया है। यहाँ पर रामाश्रित नाटक होने पर नाटककार द्वारा रावण के सीता के प्रति प्रेम को अधिक प्रकट करना सहृदय सामाजिक को खटकता है। रावण का सीता प्रेम पञ्चम अङ्क के आठवें पद्य से प्रारम्भ होकर चौहत्तरवें पद्य तक प्राप्त होता है।[1]

पञ्चम अङ्क में रावण कठपुतली सीता को स्पर्श करते ही कह देता है कि यह स्पर्श स्त्री का-सा नहीं है,[2] जबकि सप्तम अङ्क में उसी के कटे हुये सिर को राम दो बार ध्यान से देखने पर भी पहचान नहीं पाते हैं और रुदन करने लगते हैं[3], इस प्रसङ्ग में यह बात खटकती है कि जब रावण प्रतिनायक होकर स्पर्श द्वारा ही कठपुतली सीता को पहचान जाता है तो राम नायक होकर भी नायिका सीता को पहचानने में देर क्यों लगाते हैं?

शिल्प की दृष्टि से बालरामायण नाटक में एक न्यूनता दिखायी पड़ती है और वह है—नाटक की कथा का अत्यधिक विस्तार। अत्यधिक विस्तार होने के कारण वर्णनात्मक स्वरूप अधिक ही विस्तृत हो गया है जिससे नाटक में गति का अवरोध सा उत्पन्न होता दिखायी पड़ता है।

बालरामायण की विशालता को देखकर ही सम्भवतः उनके परवर्ती जयदेव ने राम की कथा को आधार बनाकर सात अङ्कों में प्रसन्नराघव नाटक का निर्माण किया किन्तु प्रसन्नराघव भी दोषों से अछूता नहीं है। जयदेव के राम द्वितीय अङ्क में सामान्य मनुष्य की भाँति केवल प्रेमी के रूप में ही दिखायी पड़ते हैं।[4] स्त्री के प्रथम दर्शन से

---

१. (क) न प्रीते परमेश्वरेऽपि शिरसां छेदेन होमेव वा
ज्यावल्लीनहनेन चामरपतौ द्वारार्गलासङ्गिनि।
संयत्यैलविलात्तथा न च हृते विश्वातिथौ पुष्पके
द्रष्टव्या जनकात्मजेत्यथ यथा लङ्केश्वरो मोदते।। बालरा. ५/८

(ख) चेतोभुवश्चरितविभ्रमसंविधानं नूनं न गोचरमभूद्दयिताननं वः।
तत्कान्तिसम्पदमवाप्स्यथ चेच्चकोराः पानोत्सवं किमकरिष्यत चन्द्रिकासु।। वही, ५/७४

२. कथमयमस्त्रैणः संस्पर्शः।
रूपसम्पदमरीषु नेदृशी स्पर्श एष च दृषत्सहोदरः।
तन्मतिर्मम विदेहजन्मनो मां परीक्षितुमियं विजानतां।। बालरा. ५/२०

३. तरुणभुजगलीला सैव वेणी तदेव श्रवणयुगमनङ्गन्यस्तडोलाद्वयाभम्।
स्मरकुवलयबाणावीक्षणे ते च तस्यास्तदयमलकलक्ष्मा वक्त्रचन्द्रः स एव।। वही, ७/७३

४. अमृतमयपयोधिक्षीरकल्लोललोलैः स्नपयति तरलाक्षी यत्र मां नेत्रपातैः।
अपि भवतु सदाऽयं सन्मुहूर्त्तः......

ही उसमें इतना अधिक आसक्त हो जाना राम जैसे धीरोद्धात्त नायक के लिये उचित नहीं प्रतीत होता है।

प्रसन्नराघव में सीता स्वयंवर के समय प्रतिनायक रावण का छद्म वेश (पुरुष) में उपस्थित होना[1] सहृदय सामाजिक को आनन्दित नहीं करता, क्योंकि रावण धीरोद्धात नायक है उद्दण्डता उसके स्वभाव में होती है। इसलिये उसकी प्रकृति के अनुरूप उसका वर्णन यहाँ पर नहीं किया गया है।

प्रसन्नराघव नाटक का चतुर्थ अङ्क ही अभिनय की दृष्टि से उचित कहा जा सकता है, क्योंकि इन्होंने राम का वनवास, सीता अपहरण, राम-रावण युद्ध इत्यादि घटनाओं को साक्षात् न दिखाकर भौरों, नदियों, इन्द्रजाल और विद्याधर के माध्यम से प्रकट किया है। सप्तम अङ्क में इन्होंने चन्द्रोदय और सूर्योदय के वर्णन को अनावश्यक रूप से विस्तार दिया है जो सहृदय सामाजिक को खटक सकता है।

इस प्रकार दोनों ही नाटकों में कहीं न कहीं, कोई न कोई दोष दिखायी पड़ता है, परन्तु इसका नाटकों की महत्ता पर कोई प्रभाव नहीं दिखायी पड़ता है, क्योंकि कवि तो अपनी कल्पना के आधार पर नाटक या काव्य की रचना करता है। वह दोष, अलङ्कार, रस इत्यादि को ध्यान में रखकर नाटक या काव्य का निर्माण नहीं करता है। ये सब तो स्वाभाविक रूप से कथानक में स्वतः ही आते चले जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि दोनों नाटक संस्कृत नाट्य साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

❊

(विमृश्य सविषादम्) .... कुतो वा? मधुरविधुरमिश्राः सृष्टयो हा! विधातुः।।

प्रसन्नरा. २/२८

१. पुरुषः—कथमनेन विदितोऽस्मि घुणाक्षरन्यायगतं शब्दसादृश्यमेतत्। वही, १/पृ. ६९

सप्तम अध्याय

बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—अलङ्कार योजना

अलङ्कार का शाब्दिक अर्थ है—अलङ्कृत करने वाला अर्थात् शोभा का साधन। अलङ्करोति इत्यलङ्कारः जो किसी को सुशाभित करने का साधन हो वह अलङ्कार कहलाता है। जिस प्रकार लौकिक जीवन में आभूषण पुरुष या स्त्री के सौन्दर्य को निखार देते हैं उसी प्रकार उपमा आदि अलङ्कार काव्य की शोभा को बढ़ाते हैं।

अलङ्कार के सम्बन्ध में काव्यशास्त्र में दो प्रकार की मान्यता प्राप्त होती है, प्रथम भामह[1] और दण्डी[2] इत्यादि अलङ्कारवादी आचार्य अलङ्कार को पर्याप्तता के अर्थ में ग्रहण करते हैं और द्वितीय रीतिवादी वामन[3] तथा ध्वन्यालोक में आनन्दवर्धन[4] और मम्मट[5] आदि ध्वनिवादी आचार्य इसको काव्य के सौन्दर्यवर्धक साधन के अर्थ में ग्रहण करते हैं।

अलङ्कारों का वर्गीकरण साधारणतया दो वर्गों में किया गया है—

१. शब्दालङ्कार

२. अर्थालङ्कार

जो अलङ्कार शब्दाश्रित होते हैं। वे शब्दालङ्कार और जो अलङ्कार अर्थाश्रित होते हैं वे अर्थालङ्कार कहलाते हैं भोजराज अलङ्कारों के तीन भेद मानते हैं—

१. शब्दालङ्कार २. अर्थालङ्कार ३. उभयालङ्कार[6]

---

१. रूपकादिरलङ्कारस्तथान्यैर्बहुधोदितः।
न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्।। — का. लं. (भा.) १/१३

२. काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।
ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कात्स्न्येन वक्ष्यति।। — काव्याद. २/१

३. (क) काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्। — का. सू. वृ. १/१/१
(ख) सौन्दर्यमलङ्कारः। — वही १/१/२
(ग) स दोषगुणालङ्कारहानादानाभ्याम्। — वही १/१/३

४. सहस्रशो हि महात्मभिरन्यैरलङ्कारप्रकाराः प्रकाशिताः प्रकाश्यन्ते च। — ध्वन्या. १/१

५. उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।। — का. प्र. ८/६७

६. शब्दार्थोभयसंज्ञाभिरलङ्कारान्कवीश्वराः।
बाह्यानाभ्यन्तरान्बाह्याभ्यन्तरांश्चानुशासति।। — स. क. २/१

अलङ्कारों का यह वर्गीकरण उनके बाह्यस्वरूप पर आश्रित है।

बालरामायण के रचयिता राजशेखर और प्रसन्नराघव के रचयिता जयदेव ने अपने-अपने नाटकों में अनेक अलङ्कारों का प्रयोग किया है जो एक ओर कथानक के प्रवाह में सहायक है तो दूसरी ओर रस की अनुकूलता से अनुस्यूत है।

बालरामायण में राजशेखर और प्रसन्नराघव में जयदेव ने अलङ्कार के शब्दगत और अर्थगत नामक दोनों भेदों का प्रयोग किया है। विवेच्य नाटकों में अलङ्कारों की छटा दर्शनीय है।

(क) विवेच्य नाटकों में शब्दालङ्कार

बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों में शब्दालङ्कार के अन्तर्गत अनुप्रास, यमक और श्लेषादि अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है।

अनुप्रास

अनुप्रासः शब्द साम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।[1]

अर्थात् स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द अर्थात् पद, पदांश के साम्य (सादृश्य) को अनुप्रास कहते हैं।

अनुप्रास अलङ्कार के पाँच भेद हैं—

१. छेकानुप्रास[2]
२. वृत्त्यनुप्रास[3]
३. श्रुत्यनुप्रास[4]
४. अन्त्यानुप्रास[5]
५. लाटानुप्रास[6]

बालरामायण नाटक के अन्तर्गत राजशेखर ने अनुप्रास का प्रयोग सर्वाधिक

---

१. सा. द. १०/३

२. छेको व्यञ्जनसङ्घस्य सकृत्साम्यनेकधा। वही, १०/३

३. अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद् वाप्यनेकधा।
एकस्यसकृदप्येष वृत्त्यनुप्रास उच्यते।। वही, १०/४

४. उच्चार्यत्वाद्यदेकत्र स्थाने तालुरदादिके।
सादृश्यं व्यञ्जनस्यैवश्रुत्यनुप्रास उच्यते।। वही, १०/५

५. व्यञ्जनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्य त्वादन्त्यानुप्रास एव तत्।। वही, १०/७

६. शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः।
लाटानुप्रास इत्युक्तोऽनुप्रासः पञ्चधा ततः।। वही, १०/७

किया है। तृतीय अङ्क में ताड़का वध के प्रसङ्ग में विश्वामित्र स्त्री पर आक्रमण न करने के कारण लज्जानत राम के मुख को ऊपर उठाकर कहते हैं—

कालरात्रिकरालेयं स्त्रीति किं विचिकित्ससे।
तज्जगत्त्रितयं त्रातुं तात ताडय ताडकाम्।।[1]

अर्थात् हे तात्! यह ताड़का कालरात्रि के समान है। इसलिये इसको स्त्री समझकर शङ्का मत करो और तीनों लोकों की रक्षा के लिये ताड़का का वध करो।

यहाँ क, त इत्यादि व्यञ्जन वर्णों की अनेक बार आवृत्ति हुई है। अतः वृत्यनुप्रास है।

दसवें अङ्क में रावण वध के पश्चात् अयोध्या जाते समय मार्ग में राम, सीता से माल्यवान् पर्वत का वर्णन करते हुये कहते हैं।

द्युतिजितकरवालः सूतवंशीप्रवालः
स्फुटितकुटजमालः स्पष्टनीलत्तमालः।
इहहि गतमरालः केतकालीकरालः
शिखरिणी मम कालः सोऽभवन्मेघकालः।।[2]

अर्थात् केतकी की पङ्क्ति वाले पर्वत पर अपनी तलवार का तिरस्कार करने वाला बाँस के अङ्कुर उत्पन्न करने वाला, कुटज नामक फूलों को विकसित करने वाला, तमालों को नीला करने वाला, हँसों से विहीन बादलों के कारण कृष्ण वर्ण वाला वर्षाकाल बीता था।

इस पद्य में प्रत्येक पद के अन्त में आलः शब्द का एक से अधिक बार प्रयोग हुआ है। इसलिये यहाँ अन्त्यानुप्रास अलङ्कार है।

उपर्युक्त दोनों प्रसङ्गों में अनुप्रास अलङ्कार अपने शब्दगत सौन्दर्य के द्वारा रस की अनुकूलता में सहायक हुआ है। इसी प्रकार युद्धवर्णन[3], रावण का राम के ऊपर क्रोध करने के प्रसङ्ग में[4] और रावण द्वारा जटायु के वध[5] इत्यादि प्रसङ्गों में

१. बालरा. ३/५
२. वही, १०/५२
३. प्रेक्षध्वं प्रेक्षध्वम्। इत एता अमन्दसिन्दूरसुन्दरित कुम्भप्राग्भारभासुराः प्रचण्डमुण्ड मण्डली-मण्डितशुण्डादण्डडम्बरोड्डामराः प्रवृत्तमद धाराधोरणीनीरन्ध्रनिरूद्धरेणुरमणीयसरण्योगल-गुहानि कुञ्जपुञ्जितनिर्जितजलदजालस्तनितविस्तरा दोर्घण्टघटा अवतरन्ति। वही, २/पृ. ५७
४. त्रुटयद्दोर्दण्डखण्डोड्डमरपुरुपतत्कण्ठकोष्ठप्रकोष्ठं
स्फारस्फिक्पृष्ठपीठीहठदलितशिराकन्धराकाण्डखण्डम्।
सस्तम्भं क्षत्रडिम्भं चटदितिविचटन्मुण्डपिण्डं प्रचण्ड-
श्चण्डीशोच्चण्डदंष्ट्राक्रकच इव दृढं चन्द्रहासस्तृणेढु।। बालरा. ५/७७
५. द्राक्चन्द्रहासपरिखण्डितचञ्चुकोटिश्चञ्चुप्रहारपरिखण्डितचन्द्रहासः।
नाडिन्धमे तडिति कण्ठतटे स तेन कुन्तेन कुन्तनखरः प्रहतः शकुन्तः।। वही, ६/७०

अनुप्रास अलङ्कार दिखायी पड़ता है। इन प्रसङ्गों में स, म, ड इत्यादि वर्णों की ही नहीं, अपितु न्द, ण्ड, ञ्ज, म्भ आदि संयुक्त वर्णों की भी आवृत्ति हुई है जो रस की अभिव्यक्ति में पूर्णतया सहायक है।

जयदेव विरचित प्रसन्नराघव में भी अनुप्रास अलङ्कार का प्रयोग यत्र-तत्र दिखायी पड़ता है। द्वितीय अङ्क में वाटिका में सीता की सखी वासन्ती लता का वर्णन करती हुयी कहती है—

वासन्तीरसबिन्दुं सुन्दरमिन्दिन्दिरा इह चरन्ति।
चिरमन्दिरमरविन्दु मन्दं मन्दं परिहरन्ति।।[1]

अर्थात् भौंरे वासन्ती लता के मधुर रस को पी रहे हैं और अपने ऊपर आश्रित कमल के फूल को धीरे-धीरे छोड़ रहे हैं।

इस पद्य में र, न्द, म, न्त और स वर्णों का प्रयोग एक से अधिक बार होने के कारण वृत्त्यनुप्रास अलङ्कार है। टीकाकार डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी[2], आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी[3] और पं. रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री[4] ने प्रसन्नराघव पर लिखी गयी अपनी-अपनी टीकाओं में इस पद्य में वृत्त्यनुप्रास अलङ्कार बताया है। इसके अतिरिक्त भ्रमर वर्णन[5] और राम-परशुराम के वार्तालाप[6] इत्यादि प्रसङ्गों में अनुप्रास अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

बालरामायण में अनुप्रास अलङ्कार सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है जबकि प्रसन्नराघव में यह अलङ्कार केवल कुछ स्थानों पर ही प्रयुक्त हुआ है। बालरामायण में अनुप्रास के वृत्त्यनुप्रास और अन्त्यनुप्रास इत्यादि भेद प्राप्त होते हैं जबकि प्रसन्नराघव में इसका वृत्त्यनुप्रास भेद में ही प्रयोग हुआ है।

यमक

अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः।। यमकम्[7]

अर्थात् अर्थ होने पर नियम से भिन्न अर्थ वाले वर्णों की उसी क्रम से पुनरावृत्ति होना यमक अलङ्कार कहलाता है।

---

१. प्रसन्नरा. २/१८
२. अत्र वृत्यनुप्रासो नामशब्दालङ्कारः। वही, पृ. १०६
३. वृत्त्यनुप्रासो नाम शब्दालङ्कारः। वही, पृ. १२७
४. वृत्त्यनुप्रासो नाम शब्दाऽलङ्कारः। वही, पृ. ११३
५. मदनवधनपुररवरमणीयं किमपि किमपि कूजन्।
माकन्दमुकुलमधुरसमधुरमुखो मधुकरो भ्रमति।। वही, २/२४
६. त्रिलोकी कोकीयं मुदमुदयताऽनने लभते विकासं वा धत्ते मुनिजनमनः पङ्कजवनम्।
अये! कोऽयं बालः! कुवलयदलश्यामलतनुर्जगद्योनिर्ज्योतिः कथमिदमहो तत् परिणतम्?
प्रसन्नरा. ४/४४
७. का. प्र. ९/८३

बालरामायण नाटक में यमक अलङ्कार का प्रयोग सरल रूप में प्राप्त होता है। पाँचवें अङ्क में रावण की कामशान्ति करने के लिये सभी प्रयास करते हैं तब रावण कहता है—

रम्भा रम्भादलाग्रैर्व्यजतु विहरतां दावदानेन हारा
तारा ताराधिपश्रीरधितनु तनुतां चन्दनस्यन्दमेकम्।
प्रम्लोचा मोचापाकच्छविरवतु बिसन्यासभङ्ग्यामभाङ्गा-
न्यञ्जुद्राद्राग्दलार्द्रामुरसि च दधती मेनका मे न का च।।[१]

अर्थात् रम्भा केले के पत्ते द्वारा पङ्खा झले, हारा ताप की शान्ति करे, चन्द्र के समान सुन्दर तारा मेरे शरीर पर चन्दन का लेप करे, पके हुये के समान सुन्दर कान्ति वाली प्रम्लोचा कमल के तन्तुओं से ढककर मेरे सभी अङ्गों की रक्षा करे, अञ्जुद्रा तालवृन्त को धारण करे तथा मेनका मेरे वक्षःस्थल पर रहे और कोई नहीं।

इस पद्य में रम्भा-रम्भा, तारा-तारा, तनु-तनु और मेनका-मेनका शब्द एक से अधिक बार प्रयुक्त हुये हैं। प्रथम रम्भा का अर्थ कुबेर की पत्नी और द्वितीय रम्भा का अर्थ केले के पत्ते से है इसी प्रकार प्रथम तारा का अर्थ शरीर और द्वितीय तनु का अर्थ पका हुआ केला है इसी प्रकार प्रथम मेनका का अर्थ स्वर्ग की एक अप्सरा और द्वितीय मे न का अर्थ है और कोई नहीं। यहाँ पर जितने भी शब्द एक से अधिक बार आये हैं उन सभी में अर्थभेद है। अतः यमक अलङ्कार है।

इसी प्रकार युद्धवर्णन[२] और लङ्का के लेखपत्र वर्णन[३] इत्यादि प्रसङ्गों में यमक अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में यमक अलङ्कार का प्रयोग जयदेव ने किया है। पाँचवें अङ्क में वनवास के प्रसङ्ग में राम लक्ष्मण को समझाते हुये कहते हैं—

गमय वत्स! निमील्य विलोचने कतिचिदत्र निमेषसमाः समाः।
अपि च मामिव शीलसुशीतलं शुभरतं भरतं परिशीलय।।[४]

अर्थात् वत्स! आँखें बन्द करके क्षण के समान कुछ वर्ष अयोध्या में बिताओ और शीतल स्वभाव वाले तथा कल्याण में लगे हुये भरत की उसी प्रकार सेवा करो जिस प्रकार मेरी करते हो।

---

१. बालरा. ५/४६

२. यथा यथा प्रहरति वालिनन्दनस्तथातथा हरिहरिभिः स्थितं मुदा।
यथायथा प्रहरति रावणात्मजस्तथातथा किलिकिलितं च राक्षसैः।। बालरा. ८/८

३. महोदरो विरूपाक्षो विरूपाक्षो महोदरः।
चतुरेण चतुर्थेऽह्नि सुग्रीवेण रणे हतौ।। वही, ६/१५

४. प्रसन्नरा. ५/७

यहाँ पर समाः समाः और भरतं भरतं शब्द एक से अधिक बार प्रयुक्त हैं। प्रथम समाः का अर्थ क्षणतुल्य और द्वितीय का अर्थ वर्षों से लिया गया है। इसी प्रकार प्रथम भरत का अर्थ कल्याण में प्रवृत्त और द्वितीय भरत का अर्थ कैकेयी का पुत्र है। अतः यमक अलङ्कार है। इसी प्रकार सीता स्वयंवर के समय विश्वामित्र और जनक के परस्पर वार्तालाप[१] और राम के वनगमन[२] इत्यादि प्रसङ्गों में यमक अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

बालरामायण नाटक में प्रसन्नराघव नाटक की अपेक्षा अधिक पद्यों में यमक अलङ्कार का प्रयोग दिखायी पड़ता है।

श्लेष

वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा।।[३]

अर्थात् अर्थ का भेद होने से भिन्न-भिन्न शब्द एक साथ उच्चारण के कारण जब मिलकर एक हो जाते हैं, तब वहाँ श्लेष अलङ्कार होता है और यह अक्षर आदि श्लेष के भेद से आठ प्रकार का होता है।

बालरामायण नाटक में श्लेष का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। तृतीय अङ्क में गर्भाङ्क की प्रस्तावना में कोहल नामक पात्र कहता है—

सुवणबन्धविद्योति कुरुत श्रवणाश्रयम्।
सच्छायमुल्लसद्वृत्तं काव्यं मुक्तामयं बुधाः।।[४]

अर्थात् सुन्दर वर्णों से सुशोभित, अच्छी कान्ति वाले वृत्तों वाला, सुन्दर रंग से शोभायमान, वृत्ताकार मुक्ता के हार के समान काव्य को सुनें।

इस पद्य के दो अर्थ निकलते हैं। प्रथम अर्थ है कि सुन्दर वर्णों से शोभायमान, अच्छी कान्ति वाले वृत्तों वाला, सुन्दर रंग से सुशोभित, वृत्ताकार मुक्ता के हार के समान काव्य को सुनें। इसी अर्थ की प्रतीति कराता हुआ इस पद्य का एक दूसरा अर्थ है—स्वर्णसूत्रों से भास्वर, कान्तिमय और शोभायुक्त वर्तुल मोती के आभूषण कान में पहनें।

यहाँ दोनों अर्थों के मध्य उपमा अलङ्कार प्रतीत हो रहा है। अतः श्लेषोपमा

१. गाधिनन्दन! न नन्दनजन्मा तादृशः स हरिचन्दनशाखी।
यादृशो मम भवत्पदपद्म द्वन्द्ववन्दनविधिः सुखहेतुः।। प्रसन्नरा. ३/६

२. त्वया मम समेतस्य कल्पा अपि समासमाः।
भवता विप्रयुक्तस्य कल्पकल्पः क्षणोऽपि मे।। वही, ५/६

३. का. प्र. ९/८४

४. बालरा. ३/१५

अलङ्कार है। आचार्य लक्ष्मणसूरि ने भी बालरामायण पर लिखी गयी तत्त्वालोक नामक टीका में इस पद्य में श्लेषोपमा अलङ्कार बताया है। इसी प्रकार शिवधनुष प्रसङ्ग[1] और वानर वर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में यह अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में यथावसर श्लेष अलङ्कार का प्रयोग हुआ है। प्रथम अङ्क में सूत्रधार कहता है—

सुललितवदनामुदारवृत्तां कृतिमथवा युवतिं परस्य हृत्वा।
तटमपि परमर्णवस्य गत्वा वद कतरः सुखभाजनं जनः स्यात्।।[3]

अर्थात् मनोहर वदन वाली और उदार वृत्त वाली किसी दूसरे की रचना अथवा स्त्री का हरण करके समुद्र के दूसरे तट पर जाकर कौन-सा पुरुष सुखी होगा? अर्थात् कोई भी नहीं।

यहाँ पर सुललितवदन और उदारवृत्त शब्द के दो-दो अर्थ हैं। सुललितवदन का प्रथम अर्थ आमुख और दूसरा अर्थ मुख है। इसी प्रकार उदारवृत्त शब्द का प्रथम अर्थ कथावस्तु और दूसरा अर्थ चरित्र है। उपर्युक्त दोनों शब्दों के दो-दो अर्थ होने के कारण सम्पूर्ण पद्य के भी दो अर्थ प्रतीत हो रहे हैं। एक तो कृति के अर्थ में और दूसरा स्त्री के अर्थ में। अतः यहाँ श्लेष अलङ्कार है।

प्रसन्नराघव में गद्य और पद्य दोनों में श्लेष अलङ्कार प्राप्त होता है। प्रथम अङ्क में मञ्जीरक और नूपुरक नामक पात्रों के परस्पर वार्तालाप[4] और सप्तम अङ्क में रावण द्वारा मन्दोदरी की प्रशंसा[5] इत्यादि वर्णनों में श्लेष अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार बालरामायण और प्रसन्नराघव दोनों ही नाटकों में श्लेष अलङ्कार यत्र-तत्र दिखायी पड़ता है।

(ख) विवेच्य नाटको में अर्थालङ्कार

बालरामायण तथा प्रसन्नराघव नाटकों में अर्थालङ्कार के भी रमणीय प्रयोग हुये हैं उनमें कतिपय प्रमुख अलङ्कारों का विवेचन यहाँ पर किया जा रहा है।

---

१. प्रकटितरामाम्भोजः कौशिकवान् सपदि लक्ष्मणानन्दी।
सुरचापदमनहेतोरयमवतीर्णः शरत्समयः।। बालरा. ३/१६

२. आमोदभाजि वनशालिनि केसराढ्ये तारापतिस्फुरणतः प्रविजृम्भमाणे।
लाङ्गूललम्बतरनालविशेषहृद्ये दृष्टं न केन कुमुदे कुमुदस्य रूपम्।। वही, ७/२५

३. प्रसन्नरा. १/१७

४. मञ्जीरकः—स एष निजयशःपरिमलप्रमोदितचारणचञ्चरीकचयकोलाहलमुखरित दिक्चक्रवालः क्ष्मापालकुन्तलालङ्कारो मल्लिकापीडो नाम। वही, १/पृ. ४६

५. भुग्नालकं स्मितपराजितचन्द्रलेखं दृग्लीलया कुवलयश्रियमादधानम्।
एतन्मुखं दिविषदामपि दुर्निरीक्ष्यं तन्वङ्गि! मामिव मुधा किमधः करोषि?।। वही, ७/१५

उपमा

साधर्म्यमुपमा भेदे पूर्णा लुप्ता च।[1]

अर्थात् उपमान और उपमेय का भेद होने पर उनके साधर्म्य का वर्णन उपमा कहलाता है। यह उपमा पूर्णोपमा और लुप्तोपमा नामक दो प्रकार की होती है।

बालरामायण नाटक के अन्तर्गत तृतीय अङ्क में गर्भाङ्क की प्रस्तावना में कोहल नामक पात्र कामदेव को नमस्कार करता हुआ कहता है—

कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने।
नमः शृङ्गार बीजाय तस्मै कुसुमधन्वने।।[2]

अर्थात् शृङ्गार के बीज जो पुष्पधन्वा कामदेव हैं वे कर्पूर के समान जलकर भी प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर स्थित है, उन कामदेव को नमस्कार करता हूँ।

यहाँ पर कामदेव उपमेय है, कर्पूर उपमान है और इव वाचक शब्द तथा दग्धोऽपि पद साधारण धर्म होने के कारण पूर्णोपमा अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

इसी प्रकार केतकी पुष्प के वर्णन[3] और प्रभात वर्णन[4] इत्यादि प्रसङ्गों में उपमा अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में जयदेव ने उपमा अलङ्कार का प्रयोग सर्वाधिक स्थलों पर किया है। प्रथम अङ्क में सूत्रधार यश प्राप्ति की प्रशंसा करते हुये कहता है—

कीर्तिं मृणालकमनीय भुजामनिद्रचन्द्राननां स्मितसरोरुहचारुनेत्राम्।
ज्योत्स्नास्मितामपहृतां दयितामिव स्वां लब्धुं न कः परमुपक्रममातनोति।।[5]

मृणाल के समान कोमल भुजाओं वाली, चन्द्र के समान मुख वाली, विकसित हुये कमल के समान नेत्रों वाली चाँदनी के समान मुस्कान वाली अपनी प्रिया के समान, दूसरों के द्वारा अपहरण की गयी मृणालरूपी भुजाओं वाली, चन्द्ररूपी मुख वाली, विकसित कमलरूपी नेत्रों वाली, चन्द्रिकारूपी मुस्कान वाली कीर्त्ति को फिर से प्राप्त करने के लिये कौन व्यक्ति प्रयास नहीं करता अर्थात् सभी करते हैं।

१. का. प्र. १०/८७

२. बालरा. ३/११

३. सम्पिण्डीकृतजीर्णजीरककणश्रेणीश्रियः केशरान् संनद्धं परितो निरन्तरदलद्रोणीनिवेशैस्त्रिभिः
प्रान्तभ्रान्तमधुव्रतीवलयितं स्वस्तिप्रियासङ्कटे गन्धग्राह्यमवाह्यवृति दलति क्रीडावने केतकम्।।
वही, ५/२७

४. ताराणां तगरत्विषां परिकरः सङ्ख्येयशेषः स्थितः
स्पर्धन्तेऽस्तरुचः प्रदीपकशिखाः सार्धं हरिद्राङ्कुरैः।
मन्त्रस्तम्भितपारदद्रवजडो जातः प्रगे चन्द्रमाः
पौरस्त्यं च पुराणशीधुमधुरच्छायं नभो वर्तते।। वही, ७/१

५. प्रसन्नरा. १/६

इस पद्य में भुजाओं की मृणाल से, मुख की चन्द्र से, नेत्रों की विकसित हुये कमल से, मुस्कान की चाँदनी से और कीर्ति की प्रिया से उपमा दी गयी हैं। अतः यहाँ उपमा अलङ्कार है। डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी, आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी और पं. रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री ने भी इस पद्य में उपमा अलङ्कार बताया है। इसी प्रकार नायिका वर्णन[१], विश्वामित्र और जनक के परस्पर वार्तालाप[२], राम और परशुराम के परस्पर वार्तालाप[३] और राम वनवास प्रसङ्ग[४] इत्यादि प्रसङ्गों में उपमा अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

बालरामायण नाटक में प्रसन्नराघव नाटक की अपेक्षा उपमा अलङ्कार का प्रयोग कम हुआ है। सम्पूर्ण प्रसन्नराघव नाटक में जयदेव ने अलङ्कारों का प्रयोग करते समय उपमा को ही प्रमुखता दी है। यही कारण है कि उपमा का प्रयोग सभी सात अङ्कों में हुआ है, प्रसन्नराघव का कोई भी अङ्क इससे अछूता नहीं है।

उत्प्रेक्षा

सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।[५]

अर्थात् वर्ण्य उपमेय की उपमान के साथ सम्भावना उत्प्रेक्षा कहलाती है।

बालरामायण में पाँचवें अङ्क में रावण सीता के रूप सौन्दर्य को लक्ष्य करके कहता है—

चक्षुः स्मेरमवारिजं कुवलयं वक्त्रस्य मित्रं विधु-
र्भ्रूलेखा स्मरतोरणं स्मितलवो लीलालतापल्लवः।
उच्छिष्टं कलकण्ठवाक् च वचसां शङ्के तदेणीदृशः
सर्वाङ्गीणमहो विधेः परिणतं विज्ञानचित्रं चिरात्।।[६]

अर्थात् उस मृगनयनी की आँखें जल के बिना उत्पन्न हुये कमल के फूल के समान हैं, उसके मुख का चन्द्रमा मित्र हैं, भौहें कामदेव का तोरण हैं, मुस्कराहट लीला

---

१. अयि! तव मुखलेखा चन्द्रबिम्बे सस्नेहा दशनकिरणलक्ष्मीरच्छज्योत्स्नासदृक्षा।
कुवलयदलद्रोणीकन्दरायां वहन्ती तरलबहलमिष्टा दुग्धधारेव दृष्टिः।। प्रसन्नरा. २/२६

२. सकलजनविलोकनोत्सवानामयमयनं कतरः पुरः कुमारः।
हरितमणिमयूखहारिणो यः कलयति कल्पतरोः प्ररोहलीलाम्।। वही, ३/१७

३. चण्डीशकार्मुकविमर्दविवर्धमानदर्पावलेपसविशेष विकासभाजोः।
बाह्वोस्तवाहमधुना मधुना समानैराराधयामि रुधिरैः कठिनं कुठारम्।। वही, ४/१६

४. नरेन्द्रः कैकेयीवचनपरिपाटीविगलितः क्षणं मोह-क्रोध-प्रसरभरयोरन्तरचरः।
सुतं चोरग्रस्तो मणिमिव करस्थं न कृपणस्तृणानीव प्राणान् पुनरयममुञ्चद्दशरथः।।
वही, ५/१७

५. का. प्र. १०/६२

६. बालरा. ५/१०

लता के पल्लव जैसी है, उस कोकिला की वाणी सभी वाणियों की जूठन है-अहा! ब्रह्मा द्वारा रचा गया यह चित्र बहुत समय के बाद परिणत हुआ है।

इस पद्य में सीता के नेत्रों की कमल में, मुखमण्डल की चन्द्रमा में, भौहों की कामतोरण में, मुस्कान की लीललता के नूतन किसलय में और वाणी की कोयल की कूक में सम्भावना की गयी है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। इसी प्रकार नायिका वर्णन[1] और सेतु वर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में उत्प्रेक्षा अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

प्रसन्नराघव में भी इस अलङ्कार का प्रयोग दिखायी पड़ता है। प्रथम अङ्क में श्रीराम के गुणों का वर्णन करते हुये सूत्रधार कहता है—

स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयतां
कवीनां को दोषः? स तु गुणगणानामवगुणः।
यदेतैर्निश्शेषैरपरगुणलुब्धैरिव जग-
त्यसावेकश्चक्रे सततसुखसंवासवसतिः।।[3]

अर्थात् अपनी सूक्तियों का विषय केवल श्रीराम को बनाने वाले कवियों का क्या दोष है? यह अवगुण तो गुणों का है जो संसार में सभी गुणों ने दूसरे गुणों के सहवास में लुब्ध होकर एकमात्र श्रीराम को ही रहने का स्थान बना लिया।

इस पद्य में कवि राम की गुणकीर्ति का वर्णन करते हैं। वह कहते हैं कि सभी गुण आकर राम का ही आश्रय लेते हैं। अतएव कवि का स्वयं कोई भी दोष नहीं है। यहाँ अपरगुणलुब्धैरिव शब्द में ऐसी सम्भावना की जा रही है। अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

टीकाकार डॉ. रमाशङ्करत्रिपाठी[4] और आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी[5] ने इस पद्य में उत्प्रेक्षा अलङ्कार बताया है जबकि पं. रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री ने हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार[6] बताया है।

इसी प्रकार स्वयंवर में रावण की उक्ति[7] और रामवनगमन[8] इत्यादि प्रसङ्गों में यह अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

---

१. एतां यथाहृदयवर्तनमायताक्षीं संसारसारनिचयेन विधाय वेधाः।
शङ्के दिदेश मदनं परिरक्षितारमारात् स मां किरति येन शरैः शिताग्रैः।। बालरा. १/४३

२. वक्तीव वानरबलानि हसन् हनूमान् मद्रोमवल्लिषु दृढं कुरुतावलम्बम्।
येनैष सागरमहं लघु लङ्घयामि श्यामाचरैश्च समरं सह योजयामि।। वही, ७/२७

३. प्रसन्नरा. १/१२

४. अत्रालङ्कारस्तु उत्प्रेक्षा। वही, पृ. १८

५. अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। वही, पृ. २१

६. इत्यत्र हेतूत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। वही, पृ. २३

७. निर्भिन्नवैरिकरिकुम्भतटीविमुक्तमुक्ताफलप्रकरतारकिताम्बरश्रीः।
यः कालरात्रिरिव भाति रणे स एवरे रे नृपा मम कृपा कृपणः कृपाणः।। वही, १/४१

८. गहनविपिनवासोत्कण्ठया सम्प्रयातं प्रियतममनुयान्त्या तत्क्षणं राजपुत्र्या।
चरणकमलगुञ्जन्मञ्जुमञ्जीरशब्दैः स्फुटतरमुपदिष्टा बान्धवाः साधु वृत्तम्।। वही, ५/१३

बालरामायण और प्रसन्नराघव दोनों ही नाटकों में यह अलङ्कार सुन्दर रूप में दिखायी पड़ता है।

सन्देह

ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशयः।[1]

उपमेय में उपमान रूप से संशय सन्देह नामक अलङ्कार है। वह भेद के कथन करने और न करने से दो प्रकार का होता है।

बालरामायण नाटक में सन्देह अलङ्कार की चर्चा कतिपय स्थलों पर हुई है। छठे अङ्क में मारीच मायारूपी मृग को देखकर तपस्वी कहते हैं—

सञ्चारी रोहणाद्रिः कियमविकलः केलिसम्प्राप्तमूर्त्तिः
कोदण्डः पिण्डिताङ्गः किमुत सुरपतेर्जङ्गमत्वं गतोऽसौ।
चित्रं वा भूतधा याः प्रकृतिबलमिदं कल्पयद्वाग्वितर्का-
नित्थं वैखानसीनां तिलकितभुवनं भूतमभ्येतिकिञ्चित्।।[2]

अर्थात् क्या यह खिलवाड़ में पूरा रोहणाचल दौड़ने लगा या इन्द्रधनुष छोटा होकर जङ्गम हो गया अथवा पृथ्वी का अद्भुत प्रकृति-बल प्रकट हो गया—ऐसी बातों का वितर्क उत्पन्न कराता कोई तपोवन को चीरता हुआ चला आ रहा है।

इस पद्य में राक्षस मारीच जो मायारूपी मृग है वह उपमेय है और यहाँ उपमान रूप में रोहणाचल, इन्द्रधनुष और पृथ्वी के अद्भुत प्रकृति बल के मध्य सन्देह उत्पन्न होने के कारण सन्देह अलङ्कार है।

इसी प्रकार राम द्वारा संमुद्र पर अग्निबाण चलाने[3] इत्यादि प्रसङ्गों में सन्देह अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में यत्र-तत्र इस अलङ्कार का प्रयोग दिखायी पड़ता है। प्रथम अङ्क में सीता को देखकर रावण कहता है—

तडिल्लेखा नेयं विलसति परं सौधशिखरे
वसन्त्याः कस्याश्चित् कनकरुचिरा गात्रलतिका।
अपीदं नोन्मज्जत् कुवलयवनं मीनतरलं
परं तस्या एव स्फुरति नयनालोकललितम्।।[4]

१. का. प्र. १०/९२
२. बालरा. ६/५६
३. त्रैयक्षात्किंस्विदक्ष्णः क्षयसमयशिखी निर्गतश्चञ्चदर्चिः
किंस्विद्भित्त्वार्णवार्णांस्युपरि परिणतः सर्वतोऽप्यौर्ववह्निः।
किंस्वित्कालाग्निरुद्रः स्थगयति जगतीमेष पातालमूला-
दाज्ञातं धाम्नि वारां रघुपतिविशिखाः प्रज्वलन्तः पतन्ति।। वही, ७/३०
४. प्रसन्नरा. १/३५

अर्थात् यह विजली की रेखा नहीं है, अपितु राजमहल के ऊपर स्थित सुन्दरी की सोने के समान कान्ति वाली शरीर लता है, और यह जल से बाहर निकलता हुआ मछलियों से चञ्चल कमलवन नहीं है, बल्कि उस सुन्दरी के ही नेत्रों के देखने का विलास है।

इस पद्य में सीतारूपी सुन्दरी उपमेय है और उपमान के रूप में विद्युल्लेखा तथा मछलियों से तरल नीलकमल के मध्य सन्देह उत्पन्न होने के कारण यहाँ सन्देह अलङ्कार है।

इसके अतिरिक्त विश्वामित्र और जनक के परस्पर वार्तालाप[1] और हनुमान द्वारा समुद्र लाँघने[2] इत्यादि प्रसङ्गों में सन्देह अलङ्कार का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार बालरामायण और प्रसन्नराघव दोनों ही नाटकों में सन्देह अलङ्कार का प्रयोग दिखायी पड़ता है।

रूपक

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः
अति साम्यादनपह्नुतभेदयोरभेदः[3]।।

अर्थात् उपमान और उपमेयगत भिन्नता जब सादृश्यातिशयवश अभेद रूप से वर्णित हो तो वह रूपक अलङ्कार है। इस प्रकार अत्यन्त सादृश्य के कारण प्रसिद्ध अनपह्नुत भेद वाले उपमान और उपमेय का अभेद वर्णन रूपकालङ्कार कहलाता है।

बालरामायण में रूपक अलङ्कार के अनेक रमणीय प्रयोग मिलते हैं। प्रथम अङ्क में प्रस्तावना के पश्चात् शुनःशेप नामक पात्र प्रातःकाल के समय सूर्य का वर्णन करता हुआ कहता है—

उषः प्रवालद्रुमबालपल्लवास्त्रिलोकहर्म्याङ्गणहस्तदीपिकाः।
दिनद्विपेन्द्रारुणकर्णचामरा मरीचयोऽर्कस्य लुठन्ति कोमलाः।।[4]

अर्थात् प्रातःकाल में सूर्य की कोमल किरणें लुढ़क रही हैं, ये उषारूपी मूँगे के

---

१. किं शीतांशुमरीचयः किमु सुरस्रोस्विनीवीचयः
किं वा केतकसूचयः किमथवा चन्द्रोपलानां चयः।
इत्थं जातकुतूहलाभिरभितः सानन्दमालोकिताः
कान्ताभिपस्त्रिदिवौकसां दिशिदिशि क्रीडन्ति यत्कीर्तयः।। प्रसन्नरा. ३/२३

२. विलासैर्दम्भोलेर्दलितगरुतः सर्वगिरयः स चैको मैनाकः पयसि मम मग्नो निवसति।
अये कोऽयं शैलः स्फुरदमितगव्यूतिमहिमा हिमाद्रिर्विन्ध्यो वा लघुतरगतिर्लङ्घयति माम्।।
वही, ५/५३

३. का. प्र. १०/६३

४. बालरा. १/२१

वृक्ष के किसलय हैं, त्रिलोकीरूपी महल के आंगन में जलती हुयी हस्तदीपिकायें हैं तथा दिनरूपी गजराज के लाल कर्णचामर हैं।

इस पद्य में प्रातःकाल के समय सूर्य की जो कोमल किरणें हैं ये उषारूपी मूंगे के वृक्ष के किसलय हैं, त्रिलोकीरूपी महल के आंगन में जलती हुयी हस्तदीपिकायें हैं तथा दिनरूपी गजराज के लाल कर्णचामर हैं, यहाँ पर उपमेय में उपमान का आरोप कर दिया गया है अतः रूपक अलङ्कार है। इसी प्रकार नारद द्वारा सभी देवताओं को युद्ध देखने के लिये कहना[1] और स्वयंवर में क्रथकैशिकराज के वर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में रूपक अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में भी रूपक अलङ्कार प्रयुक्त हुआ है। तृतीय अङ्क में विश्वामित्र राम से कहते हैं—

एतत्तर्कय चक्रवाकहृदयाश्वासाय तारागण-
ग्रासाय स्फुरदिन्दुमण्डलपरीहासाय भासां निधिः।
दिक्कान्ताकुचकुम्भकुङ्कुमरसन्यासाय पङ्केरुहो-
ल्लासाय स्फुटवैरिकैरववनत्रासाय विद्योतते।।[3]

अर्थात् सूर्य चकवा नामक पक्षियों के हृदय को आश्वासन देने के लिये, तारों को छिपाने के लिये, चमकते हुये चन्द्रमण्डल का उपहास करने के लिये, दिशाओं रूपी सुन्दरियों के स्तनकलशों पर कुंकुम के रस का लेप करने के लिये, कमलों को विकसित करने के लिये, विकसित शत्रुरूपी कुमुदवन को भय दिखलाने के लिये प्रकाशित हो रहे हैं।

यहाँ दिशाओं रूपी सुन्दरियों और शत्रु रूपी कुमुदों के द्वारा उपमेय में उपमान का आरोप किया गया है। अतः रूपक अलङ्कार है। इसी प्रकार राम की प्रशंसा[4] में

---

१. चित्रं नेत्ररसायनं त्रिदशतासिद्धेर्महामङ्गलं
मोक्षद्वारमपावृतं मम मनःप्रह्लादनाभेषजम्।
साकं नाकपुरन्ध्रिभिर्नवपतिप्राप्त्युत्सुकाभिः सुराः
सर्वे पश्यत रामरावणरणं वक्त्येष वो नारदः।। बालरा. २/१६

२. रूपाधारैकवेधाः कुलगृहमुचितंचातुरीचेष्टितानां
कन्दर्पाह्वानविद्या हृदयहतिकरो रागिणां मुक्तिहेतुः।
श्रुत्वैतन्नाम नष्टेष्वरिषु रणभुवो दिव्यभावाक्षमेषु
व्यर्थः स्वः सुन्दरीणां वरवरणविधौ वेषलाभो बभूव।। वही, ३/५१

३. प्रसन्नरा. ३/३

४. बीजं यस्य चिरार्जितं सुचरितं प्रज्ञा नवीनोऽङ्कुरः
काण्डः पण्डितमण्डलीपरिचयः काव्यं नवः पल्लवः।
कीर्तिः पुष्पपरम्परा परिणतः सोऽयं कवित्वद्रुमः
किं बन्ध्यः क्रियते विना रघुकुलोत्तंसप्रशंसाफलम्।। प्रसन्नरा. १/१३

और परशुराम के क्रोध[१] इत्यादि प्रसङ्गों में यह अलङ्कार दिखायी पड़ता है। इस प्रकार बालरामायण और प्रसन्नराघव दोनों में यथासम्भव रूपक का प्रयोग किया गया है।

निदर्शना

अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः।।[२]

जहाँ वस्तु का असम्भव या अनुपद्यमान सम्बन्ध उपमा का परिकल्पक होता है अर्थात् उपमा में पर्यवसित होता है वहाँ निदर्शना अलङ्कार होता है।

बालरामायण नाटक में निदर्शना अलङ्कार का प्रयोग कुछ पद्यों में दिखायी पड़ता है। तृतीय अङ्क में स्वयंवर में लाट नरेश को देखकर प्रतीहारी कहता है—

हेलावल्गितकण्ठनालविलसन्मुक्तालतालङ्कृतं
वासां संदधतीभिरेकविजयी सोऽयं द्विषां धामसु।
भृङ्गाग्रग्रहकृष्टकेतकदलस्पर्द्धावतीनां दृशां
वारस्त्रीभिरदभ्रविभ्रमवशादातृप्ति पात्रीकृतः।।[३]

यह विजयी लाटनरेश जीते गये शत्रुओं के घरों में कण्ठनाल में मुक्तावली से अलङ्कृत माला को धारण करने वाली वाराङ्गनाओं द्वारा अत्यधिक विलास के कारण भँवरों से युक्त अग्र भाग वाले और केतकी की पङ्खुड़ी से स्पर्द्धा करने वाले नेत्रों द्वारा तृप्ति होने तक देखा गया।

यहाँ लाटदेश की वेश्याओं की आँखों को भृङ्गों द्वारा अग्रभाग में पकड़कर खींचे हुये केवड़े के दल से स्पर्द्धा करने वाली कहा गया है। यहाँ आँखों का केवड़े के पत्र से स्पर्द्धा करना ही उपमा का परिकल्पक है। अतः निदर्शना अलङ्कार है।

इसी प्रकार सिंहलेश्वर की प्रशंसा[४] इत्यादि प्रसङ्गों में इस अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में भी जयदेव ने निदर्शना अलङ्कार का प्रयोग किया है। छठे अङ्क में राम सीता के लिये विलाप करते हुये कहते हैं—

---

१. उदितोर्जुनभुजविपिने ज्वलितस्तुङ्गेषु नृपतिवंशेषु।
निमिकुलकमलकलापं कोपानल किं पुनः स्पृशसि।। प्रसन्नरा. ४/४

२. का. प्र. १०/९७

३. वालरा. ३/५८

४. पाणिप्रथैर्वकुलसुमनः सौरभं यो मिमीते
दम्पत्योर्यः सुरतचरिते सौख्यसंख्यां करोति।
यश्च ज्योत्स्नां चुलुकपुटकैः काममाचामतीन्दोः
शक्तः स्तोतुं स खलु निखिलान्यस्य कीर्त्यद्भुतानि।। बालरा. ३/३६

चान्द्रीं लेखां दशति दशनैर्दारुणः सैहिकेयो
नव्यां वल्लीं दवदहनकश्चान्दनीं दन्दहीति।
अत्युन्मत्तः कुवलयमयीं मालिकामालुनीते
मूलादुन्मूलयति नलिनीं दुष्टहस्ती करेण।।[1]

अर्थात् राहु दाँतों से चन्द्रमा की कला को ग्रस रहा है। वन की अग्नि चन्दन की नयी निकली हुयी लता को जला रही है। पागल नीले कमलों की माला को तोड़ रहा है। दुष्ट हाथी सूँड़ से कमललता को जड़ से उखाड़ रहा है।

यहाँ रावण द्वारा सीता के वध के लिये राहु, केतु और चन्द्रलेखा दंशन समान भाव प्रकट कर रहे हैं। अतः निदर्शना अलङ्कार है।

इसके अतिरिक्त कवि की सूक्तियों की कठोरता और कुटिलता वर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में निदर्शना अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

बालरामायण और प्रसन्नराघव दोनों ही नाटकों में कतिपय स्थलों पर निदर्शना का प्रयोग दिखायी पड़ता है, बहुत अधिक पद्यों में इस अलङ्कार का प्रयोग नहीं हुआ है।

अप्रस्तुतप्रशंसा

अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया।[3]

अर्थात् प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराने वाली जो अप्रस्तुत अर्थ की प्रशंसा है वही अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है।

बालरामायण नाटक के प्रथम अङ्क में सीता को देखकर रावण कहता है—

इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव
प्रम्लानारुणिमेव विद्रुमलता श्यामेव हिमद्युतिः।
पारुष्यं कलया च कोकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतं
सीतायाः पुरतश्च हन्त शिखिनां बर्हाः सगर्हा इव।।[4]

अर्थात् सीता के सामने चन्द्रमा मानो अञ्जन से लिप्त है, मृगियों की आँखें जैसे जड़ हो गयी हैं, मूँगे की लता की लाली मानो मुरझा गयी है, सोने की द्युति मानो काली

---

१. प्रसन्नरा. ६/३६

२. निन्द्यन्ते यदि नाम मन्दमतिभिर्वक्राः कवीनाङ्गिरः
स्तूयन्ते न च नीरसैर्मृगदृशां वक्राः कटाक्षच्छटाः।
तद्वैदग्धवतां सतामपि मनः किं नेहते वक्रतां
धत्ते किं न हरः किरीटशिखरे वक्रां कलामैन्दवीम्।। वही, १/२०

३. का. प्र. १०/९८

४. बालरा. १/४२

हो गयी है, कोकिल के कण्ठ में मानो मधुरता से कर्कशता का रूप धारण कर लिया है, और हाय! मयूरों के पङ्ख भी मानो कुत्सित हो गये हैं।

इस पद्य में चन्द्रमा में कालिमा का लेप, मूँगे की लता की लाली का मुरझाना, सोने की कान्ति का काला होना, कोयल के कण्ठ का मधुर के स्थान पर कर्कश होना और मोर के पङ्ख का कुत्सित होना इत्यादि अर्थों में जो अप्रस्तुतरूप से कार्यों की सम्भावना की गयी है जिससे सीता के मुख आदि के सौन्दर्य की विशेषता प्रस्तुत रूप में स्पष्टतया प्रतीत हो रही है। अतः यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार है।

इस प्रकार राम के शौर्य वर्णन[1] इत्यादि प्रसङ्गों में यह अलङ्कार दिखायी पड़ता है। टीकाकार आचार्य लक्ष्मणसूरि ने अपनी टीका में इस प्रसङ्ग में यह अलङ्कार बताया है।

प्रसन्नराघव नाटक के सातवें अङ्क में सिंह शावक को दुलारती हुयी शबरपत्नी कहती है—

मा भव नागपतेः परिभवमात्रेण गर्वनिर्व्यूढः।
वसुधामिमां गिरिसङ्कटां मृगेन्द्र! शरभस्य नन्दनः प्राप्तः।।[2]

अर्थात् हे सिंह तुम गजराज की पराजयमात्र से ही गर्वीले मत बनो। शरभ का बच्चा पर्वत से भी दुर्गम इस भू-भाग पर आ गया है।

इस पद्य में गजराज का पराजयरूपी अप्रस्तुत कथन शरभ के बच्चे के आगमन रूप में प्रस्तुत कथन से युक्त होने के कारण यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार है।

टीकाकार डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी[3], आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी[4] और पं. रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री[5] ने अपनी-अपनी टीकाओं में इस पद्य में अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार बताया है।

बालरामायण में प्रसन्नराघव की अपेक्षा अधिक स्थानों पर अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार का प्रयोग हुआ है, जबकि प्रसन्नराघव में यह अलङ्कार एक ही स्थान पर प्रयुक्त हुआ है।

---

१. यस्य वज्रमणेर्भेदे भिद्यन्ते लोहसूचयः।
करोतु तत्र किं नाम नारीनखविलेखनम्।। बालरा. ३/६६

२. प्रसन्नरा. ७/१७

३. अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः। वही, पृ. ३५०

४. अत्र शरभनन्दनरूपाप्रस्तुतात् दशरथनन्दनरूपप्रस्तुतस्य प्रतीतेरप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः। वही, पृ. ४३४

५. अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः। वही, पृ. ३७७

अतिशयोक्ति

यत्रार्थधर्मनियमः प्रसिद्धिबाधाद्विपर्ययं याति।
कश्चित्क्वचिदतिलोकं स स्यादित्यतिशयस्तस्य।।[1]

जिस अलङ्कार में अर्थ और धर्म के नियम प्रसिद्धि की बाधा के कारण कभी-कभी कहीं लोक के प्रतिकूल होता है उस नियम को अतिशय कहते हैं।

बालरामायण नाटक में रुद्रट के अनुसार अतिशयोक्ति के उदाहरण प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। अष्टम अङ्क में युद्ध के समय मेघनाद द्वारा आग्नेयास्त्र छोड़े जाने पर सुमुख नामक पात्र कहता है-

सद्यः सिञ्चति विष्टराम्बुजमयं देवः श्रुतीनां कवि-
स्तारान्तः पुरवानुपैति गगनाच्चन्द्रो जलार्द्रावृतः।
गङ्गा च द्युमणेः सुता च सरितावन्योन्यमाश्लिष्यतः
किञ्चास्त्रानलडम्बरे करिमुखः क्षीराब्धिमाधावति।।[2]

अर्थात् ब्रह्मा अपना आसन कमल जल्दी-जल्दी सींच रहे हैं, आकाश से जलसिक्त पङ्खे द्वारा सुरक्षित चन्द्रमा तारादि-पत्नियों के साथ चले आ रहे हैं, गङ्गा और यमुना नदियाँ आपस में लिपटी जा रही हैं तथा अग्न्यस्त्रविद्रव में गणेश क्षीरसमुद्र की ओर भागे जा रहे हैं।

उपर्युक्त सभी वर्णनों में सम्भावना नहीं की गयी है, बल्कि निश्चित रूप से ये सभी घटनायें घटित हो रही हैं। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार का चमत्कार प्रकट हो रहा है।

इसी प्रकार आसाम-नरेश के सैन्यवर्णन[3] और युद्ध वर्णन[4] इत्यादि प्रसङ्गों में यह अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में भी कतिपय स्थलों पर अतिशयोक्ति अलङ्कार दिखायी पड़ता है। सप्तम अङ्क में कार्तवीर्य का कीर्तिवर्णन करते हुये राम लक्ष्मण से कहते हैं—

---

१. का. लं. ६/१

२. बालरा. ८/४६

३. अस्योद्योगे प्रसर्पत्पटुपटहरवोद्रिक्तदानद्रवाणां
सन्नाहन्यासदर्पद्विगुणित रसां वारणानां भरेण।
निःशेषन्यञ्चदुर्वीवलयपरिणतिस्रस्तसन्नाहबन्धः
पृष्ठाश्ठीलविलोलं कलयतिकलया जर्जरं कूर्मराजः।। वही, ३/२६

४. दुग्धाब्धेः क्वथनाविलं तत इतो धत्ते पयः पिण्डतां
शैलेन्द्रः प्रविलीनकृत्स्नतुहिनः पाषाणशेषः स्थितः।
सान्द्राभिः करकाश्मवृष्टिभिरमी गर्भं क्षरन्त्यम्बुदाः
प्लोषार्ति च समश्नुते रविरपि स्वाहापतेः।। वही, ८/५०

कोपप्रदीप्तनिजलोचनदीपवह्निनिर्भिन्नसान्द्रतिमिरे स दशाननोऽपि।
काराकुटीरकुहरे वसति स्म यस्य सोऽप्येष हैहयपतिर्विषयो न वाचाम्।।[1]

अर्थात् जिसके क्रोध से प्रज्वलित नेत्ररूपी दीपकों की आग के कारण घने अन्धकार से रहित कारागार के भीतर जगत् के अद्वितीय योद्धा रावण ने भी वास किया था, वे यह कार्तवीर्य भी वचनों के द्वारा वर्णन के विषय नहीं हैं।

यहाँ पर कार्तवीर्य की वीरता के वर्णन में राम ने सम्भावना न करके निश्चित रूप से सभी गुणों का वास बताया है। अतः अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

इसी प्रकार रावण द्वारा स्वयं की प्रशंसा[2] और राम द्वारा शिव धनुष को नष्ट करने[3] इत्यादि प्रसङ्गों में अतिशयोक्ति अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों में अतिशयोक्ति अलङ्कार का वर्णन प्राप्त होता है। इस अलङ्कार के प्रयोग में राजशेखर ने रुद्रट के अनुसार अधिक प्रयोग किये हैं, जबकि प्रसन्नराघव में जयदेव ने मम्मट के अनुसार इस अलङ्कार का वर्णन किया है।

स्वभावोक्ति

स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।[4]

अर्थात् बालक आदि की स्वाभाविक क्रिया अथवा रूप के वर्णन को स्वभावोक्ति अलङ्कार कहते हैं।

बालरामायण नाटक के चतुर्थ अङ्क में विवाह के पश्चात् विदाई के समय सीता के रोने का वर्णन है—

वाष्पोत्पीडः श्लथपुटतया तावदन्तर्निरुद्ध-
स्तूर्णोतीर्णस्तरलनयनस्तारकाभ्यां निपातः।
सान्द्रस्यन्दः सपदि चपलैः पक्ष्मभिः प्रान्तकीर्णः
पूर्णस्रोतास्तदनु सुदशा लोठितोऽवक्रकण्ठम्।।[5]

१. प्रसन्नरा. ७/७४

२. विनैवाम्भोवाहं बहुलरुचिलिप्ताम्बरतलात् तडिल्लेखा हेमद्युतिविततिरम्या विलसति।
यदि वा—
विनैव स्वर्गङ्गां नभसि रभसोन्मुद्रशफरीपरीवर्त्तैः साकं स्फुरति नवनीलोत्पलवनम्।।
वही, १/३३

३. यावत्कन्दुकलाञ्छनाञ्चितकरः शोणाब्जनालाकृतिः
कौसल्यर्पितमङ्गलप्रतिसरो वत्सस्य दोः कन्दलः।
किञ्चिच्चञ्चति, तावदेवहिदलच्चण्डीशचापोच्छल-
च्छब्दैकार्णवमग्नमेतदखिलं जातं त्रिलोकीतलम्।। वही, ३/४६

४. का. प्र. १०/१११

५. बालरा. ४/४७

अर्थात् आँसू का प्रवाह पहले आँख की पलकों को ढीली रखने के कारण भीतर रुका रहा, फिर शीघ्र ही निकल पड़ा और चञ्चल होता हुआ नेत्रतारकों द्वारा धारण किया गया, इसके बाद तो तीव्रता के कारण शीघ्र ही चपल बरौनियों द्वारा आँखों के किनारे की ओर बिखेर दिया गया और पूरी धार से बहने वाला सुलोचना के द्वारा लज्जा से मोड़ दिये गये कण्ठ की ओर लुढ़का दिया गया।

इस पद्य में सीता के रुदन का स्वाभाविक रूप में वर्णन किया गया है। अतः यहाँ स्वाभावोक्ति अलङ्कार है।

इसी प्रकार दोपहर के वर्णन[1] और ताड़का राक्षसी के स्वरूप[2] इत्यादि प्रसङ्गों में यह अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक के सप्तम अङ्क में भरद्वाजाश्रम का वर्णन करते हुये लक्ष्मण कहते हैं—

व्याजृम्भमाणवदनस्य हरेः करेणकर्षन्ति केसरसटाः कलभाः किलैके।
अन्ये च केसरिकिशोरकपोतमुक्तं दुग्धं मृगेन्द्रवनितास्तनजं पिबन्ति।।[3]

अर्थात् कुछ करिशावक अपनी सूँड़ से जम्हाई लेते हुये सिंह की गरदन के बालों को खींच रहे हैं और दूसरे करिशावक पीकर छोड़े गये सिंह स्त्रियों के स्तनजन्य दूध को पी रहे हैं।

यहाँ भरद्वाज आश्रम में जङ्गली हिंसक पशुओं की स्वाभाविक चेष्टाओं का वर्णन होने के कारण स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

इस पद्य में डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी[4] और पं. रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री[5] ने भी स्वभावोक्ति अलङ्कार बताया है।

इस प्रकार स्वाभावोक्ति अलङ्कार का प्रयोग वन्य हिंसक पशुओं के वर्णन[6] में ही हुआ है।

---

१. शीतं श्रीखण्डकाण्डं निविडयति फणी भोगनालेन लीन-
श्छायावृक्षस्य मूले रचयति चमरी रम्यरोमन्थलीलाम्।
सेर्ष्याप्यम्मानुषीयं वितरति क्रमितुर्घर्मितस्याङ्कपालीं
लीलाकस्तूरिकैणी सरति विचरितुं सारणिग्रन्थिपर्णम्।। बालरा. १/६२

२. रक्ताभ्यक्तोरुसृक्का गुरुकवलवलज्जाङ्गलव्यग्रतालुः
फेत्कारैः फुल्लगल्लव्यतिकरगुरुभिः कम्पयन्ती जगन्ति।
अन्योन्येनाग्रपाणिप्रणयि शवयुगं ताडका ताडयन्ती
सेयं द्राग्दृष्टदंष्ट्राङ्कुरकषणरणत्कारभीमाऽभ्युपैति।। वही, ३/३

३. प्रसन्नरा. ७/७६

४. स्वाभाविकवैरा जन्तवोऽपि वैरं विहाय स्नेहेननिवसन्तीति भावः। वही, पृ. ४००

५. अत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारः। वही, पृ. ५००

६. क्रीडन्माणवकाङ्घ्रिताडनशतैरुज्जागरस्य क्षणं

बालरामायण नाटक में कई प्रसङ्गों में यह अलङ्कार दिखायी पड़ता है, जबकि प्रसन्नराघव नाटक में आश्रम वर्णन में इस अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

तुल्ययोगिता

नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता।[1]

प्रकृत या अप्रकृत अर्थों के गुण या क्रिया रूप साधारण धर्म का एक बार ही ग्रहण किया जाता है।

बालरामायण नाटक में रावण द्वारा शिवधनुष को तिरस्कार पूर्वक फेंक दिये जाने पर जनक कहते हैं—

न ब्रह्मोपनिषन्निषेवणरतिर्नो याज्ञवल्क्योगुरुः
कोपावेशनविस्रसा च सहसा शक्नोति रोद्धुं मनः।
दृष्ट्वा शम्भुमहाधनुः परिभवं पाणिजराजर्जर-
स्तेनाभ्युत्सहते ममैव युगपच्चांपाय शापाय च।।[2]

अर्थात् शिव धनुष के तिरस्कार को देखकर वेदों तथा उपनिषदों का प्रेम नहीं रहा, याज्ञवल्क्य गुरु नहीं रहे, वृद्धावस्था मन को रोक भी नहीं सकती। अतः वृद्धता के कारण जर्जर हाथ एक साथ ही धनुष और शाप दोनों के लिये उठ रहा है।

यहाँ एक ओर तो ब्रह्मोपनिषन्निषेवणरति आदि प्रकृत वस्तुओं के लिये साधारण धर्म के रूप में शक्नोति और दूसरी ओर चाप तथा शाप के लिये एक ही क्रिया उत्सहते का प्रयोग किया गया है। अतः तुल्योगिता अलङ्कार है।

इसके अतिरिक्त काम ज्वर से पीड़ित रावण के विनोद[3] इत्यादि प्रसङ्गों में यह अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में युद्ध के समय लक्ष्मण के मूर्च्छित होने[4] इत्यादि प्रसङ्गों में तुल्ययोगिता अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

शार्दूलस्य नखाङ्कुरेषु कुरुते कण्डूविनोदं मृगः।
चञ्चच्चन्द्रशिखण्डितुण्डघटनानिर्मोकनिर्मोचितः
किं चाऽय पिबति प्रसुप्त नकुलश्वासानिलं पन्नगः।। प्रसन्नरा. ७/८०

१. का. प्र. १०/१०४

२. बालरा. १/५२

३. इन्दुः सीतावदनसदृशो जानकीनेत्रहृद्यं नीलाम्भोजं बिसकिसलया मैथिलीहासभासः।
सम्यक्साम्यादिति च बहवस्तस्य जाता जगत्यां लङ्काभर्तुर्जनकतनयाविप्रलम्भे विनोदाः।।
वही, ३/६

४. (क) वर्षन्नेव समन्ततो दशमुखं चापच्युतैः सायकैः
सौमित्रिं च विसंज्ञमङ्कनिहितं नेत्रच्युतैरम्बुभिः।
एतत्तर्कय हर्षशोकतरलाः कुर्वन् कपीनां दृशो
रामश्चामलकेलिवीरकरुणव्यामिश्रतां गाहते।। वही, ७/२६

व्यतिरेक

उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।[1]

उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष बतलाने में व्यतिरेक अलङ्कार होता है।

बालरामायण नाटक में काम ज्वर से पीड़ित रावण का सीता को खोजते हुये कहता है—

सारङ्ग दृष्टिलसिते कल भाषिते च पुंस्कोकिलस्मितसरोरुह सौरभे च।
दिव्येभ विभ्रमगतौ च सदैव यस्याः शिष्याः स्थ तां कथयत स्वगुरुं प्रियां मे।।[2]

हे सारङ्ग, कोकिल, प्रफुल्ल कमल तथा ऐरावत तुम लोग दृष्टिविलास, मधुरभाषण, सुगन्ध और मनोहर चाल में जिसके शिष्य हो उस अपने गुरु और मेरी प्रिया को बताओ कि वह कहाँ हैं।

यहाँ पर सभी उपमानों के अपकृष्ट रूप में वर्णित होने के कारण व्यतिरेक अलङ्कार है।

इसी प्रकार पक्षियों के प्रति रावण की उक्ति[3] इत्यादि प्रसङ्गों में व्यतिरेक अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

जबकि प्रसन्नराघव नाटक में विश्वामित्र द्वारा दशरथ वर्णन[4] परशुराम द्वारा श्रीराम के सौन्दर्य और शौर्य वर्णन[5] और सुग्रीव द्वारा राम के कीर्ति वर्णन[6] इत्यादि प्रसङ्गों में यह अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

(ख) हा वत्स! लक्ष्मण! विकासय नेत्रपद्मे मा गादिदं युगपदेव समस्तमस्तम्।
भाग्यं दिवाकरकुलस्य च, जीवितं च रामस्य किञ्च नयनाञ्जनमूर्मिलायाः।।
बालरा. ७/३०

१. का. प्र. १०/१०५
२. बालरा. ५/६५
३. चेतोभुवश्चरितविभ्रमसंविधानं नूनं न गोचरमभूद्दयिताननं वः।
तत्कान्तिसम्पदमवाप्स्यथ चेच्चकोराः पानोत्सवं किमकरिष्यत चन्द्रिकासु।। वही, ५/७४
४. तस्य पद्मवनबान्धववंशोत्तंसमांसलमहामणिमौलेः।
कायकान्तिपरिभूतमनोजौ ताविमौ दशरथस्य कुमारौ।। प्रसन्नरा. ३/२५
५. सौन्दर्यं मदनादपि प्रथयति प्रौढिप्रकर्षं पुरां
भेत्तारं मदनारिमप्यधरयत्युद्दामदोः क्रीडितम्।
मुग्धत्वं मदनारिमौलिशशिनोऽप्युत्कर्षमालम्बते
मूर्तेस्तत् किमसौ रसैर्विरचितः शृङ्गारवीराद्भुतैः।। वही, ४/१४
६. कर्पूरादपि कैरवादपि दलत्कुन्दादपि स्वर्णदी-
कल्लोलादपि केतकादपि चलत्कान्तादृगन्तादपि।
दूरोन्मुक्तकलङ्कशङ्करशिरः शीतांशुखण्डादपि
श्वेताभिस्तव कीर्तिभिर्धवलिता सप्तार्णवा मेदिनी।। वही, ७/६८

परिकर

विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः।[1]

अर्थात् अभिप्राययुक्त विशेषणों के द्वारा जो किसी बात का कथन करता है, वह परिकर अलङ्कार कहलाता है।

बालरामायण में परशुराम और सहस्रार्जुन के परस्पर वार्तालाप[2] इत्यादि प्रसङ्गों में परिकर अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

जबकि प्रसन्नराघव के पञ्चम अङ्क में सीता राम के लिये विलाप करती हुयी कहती है—

हा राम! हा रमण! हा जगदेकवीर! हा नाथ! हा रघुपते! किमुपेक्षसे माम्।
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्तीमादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम।।[3]

अर्थात् हा राम! हा वल्लभ! हा संसार के अद्वितीय वीर! हा स्वामिन्! हा रघुपति! आप मेरी क्यों उपेक्षा कर रहे हैं? इस प्रकार विलाप करती हुयी जानकी को लेकर रावण आकाश मार्ग से चला गया।

यहाँ राम के लिये प्रयुक्त विशेषणों के द्वारा सीता के करुण विलापरूपी विशेष अर्थ का प्रतिपादन किया गया है। अतः परिकर अलङ्कार है।

इसके अतिरिक्त मञ्जीरक नामक पात्र द्वारा शिव धनुष के सम्बन्ध में जनक द्वारा की गयी घोषणा[4] तथा सीता और सखी के परस्पर वार्तालाप[5] इत्यादि प्रसङ्गों में परिकर अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

अर्थान्तरन्यास

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।[6]

१. का. प्र. १०/११८

२. विद्वान् दारसखः परम्परिणतो नीवारमुष्टिंपचः
सत्यज्ञाननिधिर्दधत् प्रहरणं होमार्जुनीहेतवे।
रे दुःक्षत्रिय किं त्वया मम पिता शान्तो मया पुत्रवान्
नीतः कीर्त्यविशेषतां तदिह ते धिग्धिक्सहस्रं भुजान्।। बालरा. ४/३५

३. प्रसन्नरा. ५/४५

४. आकर्णान्तं त्रिपुरमथनोद्दण्डकोदण्डनद्धां मौर्वीमुर्वीवलयतिलकः कोऽपि यः कर्षतीह।
तस्याऽऽयान्ती परिसरभुवं राजपुत्री भवित्री कूजत्काञ्चीमुखरजघना श्रोत्रनेत्रोत्सवाय।।
बालरा. १/२६

५. कान्तमिन्दुमणिदामकोमले! कोमलेन्दुमुकुटाङ्कशायिनि!।
इन्दुचारुमचिरेण विन्दतामिन्दुसुन्दरमुखी सखी मम।। वही, २/१०

६. का. प्र. १०/१०६

अर्थात् साधर्म्य या वैधर्म्य की दृष्टि से सामान्य का विशेष द्वारा और विशेष का समान्य द्वारा समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है।

बालरामायण में परशुराम और रावण के परस्पर वार्तालाप[1] और मातलि नामक पात्र द्वारा परशुराम की प्रशंसा[2] इत्यादि प्रसङ्गों में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार प्राप्त होता है।

प्रसन्नराघव के छठे अङ्क में राम कहते हैं—

> निजामपि सुतां सीतां नेयमुद्बोधयिष्यति।
> निजेऽप्यपत्ये करुणा कठिनप्रकृतेः कुतः।।[3]

यह पृथिवी अपनी पुत्री सीता को भी नहीं जगायेगी, क्योंकि कठिन स्वभाव वाली स्त्री को अपनी सन्तान के ऊपर करुणा कैसे हो सकती है?

यहाँ सन्तान के ऊपर पृथ्वी के विशेष स्वभाव द्वारा सामान्य का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

इसके अतिरिक्त लङ्का में सीता और रावण के परस्पर वार्तालाप[4] इत्यादि प्रसङ्गों में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

सहोक्ति

> **सा सहोक्तिः सहार्थस्य बालदेकं द्विवाचकम्।**[5]

अर्थात् जहाँ सह शब्द के अर्थ की सामर्थ्य से एक पद दो पदों से सम्बद्ध हो वहाँ सहोक्ति अलङ्कार होता है।

तृतीय अङ्क में सिंहलेश्वर की प्रशंसा करते हुये प्रतीहारी कहता है—

> **यस्योच्चण्डासिदण्डप्रहतिविदलितैर्वैरिवर्गैरलक्ष्य-**
> **क्षिप्तास्त्रोद्भ्रान्तवीरप्रतिबलकलनाशून्यसंग्राममार्गे।**

---

१. लोकोत्तरं चरितमर्पयति प्रतिष्ठांपुंसां कुलं न हि निमित्तमुदात्ततायाः।
वातापितापनमुनेः कलशात् प्रसूतिर्लीलायितं पुनरमुद्रसमुद्रपानम्।। बालरा. २/५१

२. उपदिशति समानं कर्म कृत्स्नं पिनाकी सममपि च यतन्ते कर्तुमभ्यासमेते।
तदपि भृगुकुलेन्दुः काममुत्कृष्यतेऽसौ ननु भवति निवीतं द्रव्यमेव क्रियाभिः।। वही, ४/१५

३. प्रसन्नरा. ६/१८

४. (क) निजे पाणौ कृत्वा कमललतिकाबालमुकुलं
ययोश्चक्रे गुञ्जन्मधुपमवतसं रघुपतिः।
अपीमौ कर्णौ मे वचनमिदमाकर्ण्य न कथं
विशीर्णौ? युक्तं वा चरितमिदमन्तः कुटिलयोः।। वही, ६/२६

(ख) चन्द्रहास! हर मे परितापं, रामचन्द्रविरहानलजातम्।
त्वं हि कान्तिजितमौक्तिकचूर्ण, धारया वहसि शीतलमम्भः।। वही, ६/३३

५. का. प्र. १०/११२

जीवत्संस्कारशक्त्या भुवि चरति चिरात्कृत्तबन्धेकबन्धे
दत्तो देवीभवद्भिः सह सुरकुसुमैरात्मनः साधुवादः।।[1]

अर्थात् जिसकी प्रचण्ड तलवार की मार से कटने वाले शत्रु वीरों के द्वारा जीवित समय के संस्कारवश पृथ्वी पर देर तक कटे हुये कबन्धों के नाचते रहते ही ऊपर से देवता बनकर दिव्यपुरुषों के साथ अपने को साधुवाद भी दिया गया।

इस पद्य में सह शब्द के अर्थबल से साधुवाद के साथ सुरकुसुम के दिये जाने से दो अर्थ प्रकट हो रहे हैं। अतः सहोक्ति अलङ्कार है।

बालरामायण में इस प्रकार शिव धनुष के टूटने पर प्रतीहारी की उक्ति[2] इत्यादि प्रसङ्गों में यह अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव में दशरथ वर्णन[3] सीता अपहरण के प्रसङ्ग[4] और राम-रावण के युद्ध वर्णन[5] इत्यादि प्रसङ्गों में इस अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

विनोक्ति

विनोक्तिः सा विनाऽन्येन यत्रान्यः सन्न नेतरः।[6]

जहाँ एक के बिना दूसरे के अशोभन या शोभन होने का वर्णन अभिप्रेत होता है।

बालरामायण नाटक में रावण का विरहोन्माद शान्त करने के लिये जब वारुणी, लक्ष्मी और सरस्वती आती हैं तो उन्हें रावण फटकारते हुये कहता है-

दूरे तिष्ठतु वारुणीविरहिणां का नाम रत्नस्पृहा
लक्ष्मीः क्षीरमहोदधेरपि सुता स्वाहेव दाहे पटुः।

---

१. बालरा. ३/४२

२. संस्पर्शादपि मन्थरस्य मरुतः सिञ्जानसिञ्जालतं
सार्द्धं क्षत्रवधव्रतैकगुरुणा क्रौञ्चालद्वेषिणा।
दोर्दण्डाञ्चलमण्डलीकृतमिदं रामेण राज्ञां पुरः
प्रागप्राप्तपराभवं भवधनुष्टङ्कारवत् त्रुट्यति।। वही, ३/७७

३. यस्येन्द्रारिजयश्रिया सह झटित्याकृष्यमौर्वीलतां
साकं भूवलयेन चापवलयं दोर्मण्डले बिभ्रति।
पौलोमीकुचकुम्भसीमनि रहः पश्यन्नखाङ्कं नवं
धत्ते चेतसि केवलं न तु करे कोदण्डमाखण्डलः।। प्रसन्नरा. ३/२७

४. त्रासातुरेण हरिणेन सहैव तेन दूरं प्रयाति हृदये जनकात्मजायाः।
सौमित्रिराश्रमपदात्कृतचापपाणिर्द्राङ् निर्जगाम च विवेश च कोऽपि भिक्षुः।। वही, ५/३८

५. एतान्यस्य यथा यथा सुविशिखैः कृत्तानि रक्षःपते-
रुद्गच्छन्ति शिरांसि भीतिपुलकैः साकं दिवौकःपतेः।
उन्मीलन्ति तथा तथा रघुपतेरन्तः प्रमोदोर्मयः
कण्ठच्छेदविनोदकौतुकभरव्यग्रीभवच्चेतसः।। वही, ७/४७

६. का. प्र. १०/११३

वाचालाऽसि सरस्वति व्रज गृहान्कः सूक्तिगोष्ठीक्षणो
यत्सत्यं न ममाद्य किञ्च न मुदे सीताप्रसादं विना।।[१]

अर्थात् वारुणी दूर रहे, विरहियों को मदिरा पीने की इच्छा कैसी? लक्ष्मी तो क्षीर सागर की पुत्री होकर भी स्वाहा की भाँति जलाने में कुशल है। सरस्वती! तुम बड़ी बातूनी हो, घर जाओ, यहाँ किसी काव्यगोष्ठी का अवसर नही हैं? सच है कि आज सीता की प्रसन्नता के बिना और कुछ मुझे प्रसन्न नहीं कर सकता।

इस पद्य में सीता प्रसाद के बिना अन्य सभी वस्तुओं के अशोभन होने के कारण विनोक्ति अलङ्कार है।

प्रसन्नराघव नाटक में विनोक्ति अलङ्कार का प्रयोग नहीं हुआ है।

काव्यलिङ्ग

काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता।[२]

अर्थात् हेतु का वाक्यार्थ अथवा पदार्थ के रूप में कथन करना काव्यालिङ्ग अलङ्कार कहलाता है।

बालरामायण नाटक में रावण द्वारा शिवधनुष छूते ही प्रहस्त द्वारा सबको सावधान करने[३] इत्यादि प्रसङ्गों में काव्यलिङ्ग अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

प्रसन्नराघव में सीता सखी से राम के विषय में कहती हैं—

अयि पिबतं लोचने प्रियजनवदनारविन्दमकरन्दम्।
अयि तरले विचारयतं पुनः क्व युवां काव्यं च।।[४]

हे मेरे नेत्रों, प्रिय व्यक्ति राम के मुख-कमल के रस को पिओ और इधर-उधर चञ्चलता मत करो। हे चञ्चलों, समय के बीत जाने पर फिर तुम दोनों कहाँ? और यह अति सुन्दर व्यक्ति कहाँ? यह भी जरा सोच लो।

यहाँ नेत्र वाक्यार्थ और राम हेतु के रूप में उपस्थित हुये हैं। अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

इसी प्रकार यमुना और गङ्गा नदियों के परस्पर वार्तालाप[५] इत्यादि प्रसङ्गों में काव्यलिङ्ग अलङ्कार प्रयुक्त हुआ है।

---

१. बालरा. ५/५०
२. का. प्र. १०/११४
३. पृथ्वि स्थिरा भव भुजङ्गम धारयैनां त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः।
दिक्कुञ्जराः कुरुत तत्त्रियेदिधीर्षां देवः करोति हरकार्मुकमाततज्यम्।। बालरा. १/४८
४. प्रसन्नरा. २/२५
५. तपनसुतया देव्या यद्वा भगीरथकन्यया विपुलविपुलैर्वीचिहस्तैश्चिरादपि किं कृतम्।
ललितलवलीभङ्गैरङ्गैर्वनं चलिता सती जनकतनया पाणौ धृत्वा न यद्विनिवारिता।।
वही, ५/३३

पर्यायोक्त

पर्यायोक्तं विना वाच्यवाच्यकत्वेन यद्वचः।[1]

अर्थात् वाच्यवाचक भाव से भिन्न प्रकार के द्वारा वाच्यार्थ का कहा जाना पर्यायोक्त अलङ्कार कहा जाता है।

राजशेखरविरचित बालरामायण नाटक में कुशस्थली नरेश की प्रशंसा[2] इत्यादि प्रसङ्गों में पर्यायोक्त अलङ्कार के दर्शन होते हैं।

जयदेव विरचित प्रसन्नराघव के छठे अङ्क में हनुमान सीता से राम का सन्देश कहते हैं—

मा ताम्य तामरसपत्रविशालनेत्रे विख्याप्यते पुनरपि त्वयि मत्प्रवृत्तिः।
सौमित्रिकार्मुकगुणध्वनिभिर्गभीरैस्तैः किञ्च राक्षसवधूरुदितैरधीरैः।।[3]

अर्थात् कमलपत्र के समान नेत्रों वाली सीते खेद मत करो। लक्ष्मण के धनुष की डोरी की ध्वनि और धीरज रहित राक्षस की पत्नियों के रुदन द्वारा फिर से तुम्हें मेरा समाचार कहा जायगा अर्थात् शीघ्र ही राक्षसों का विनाश करके तुम्हारा उद्धार करूँगा।

यहाँ उक्ति वैचित्र्यपूर्वक राम के विजय रूप गमन के अभिधान के कारण पर्यायोक्त अलङ्कार है।

जयदेव विरचित प्रसन्नराघव नाटक में विश्वामित्र द्वारा इन्द्र के वर्णन में[4] परशुराम के सन्देशवाहक मुनि तथा जनक के परस्पर वार्तालाप[5] इत्यादि प्रसङ्गों में पर्यायोक्त अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

---

१. का. प्र. १०/११५

२. वासो जाम्बवपल्लवानि जघने गुञ्जास्रजो भूषणं
हस्तस्वस्तिकदानमञ्चलविधिर्धातुद्रवो मण्डनम्।
उत्तंसः शितिकण्ठपिच्छलतिका वेषोऽयमल्पैर्दिनै-
रस्यारातिवधूजनेन शबरीसंवासतः शिक्षितः।। बालरा. ३/६१

३. प्रसन्नरा. ६/४७

४. यस्योद्यद्भुजदण्डचण्डिमवलत्कोदण्डालीलायितै-
र्निष्पीते दनुजेन्द्रचन्द्रवदनाभ्रूवल्लरी विभ्रमे।
लक्ष्मीमस्रविपाटलक्षतमयीमालम्बते केवलं
पौलोमीकरजाङ्कुरव्यतिकरादाखण्डलीयं वपुः।। वही, ३/२४

५. (क) पीत्वा कज्जलकालिमानमखिलं क्ष्मापालनारीदृशां
नीत्वा स्फीतयशोट्टहासमहसा लोकत्रयं शुभ्रताम्।
चण्डीशं चरितैरनेकविभवैरद्यापि यः सेवते
हे वैदेह स जामदग्न्यपरशुस्त्वामेतदाभाषते।। वही, ३/३७

(ख) त्वं मित्रं मम जामदग्न्यपरशो येनैतदा भाष्यसे

समुच्चय

तत्सिद्धिहेतावेकस्मिन् यत्रान्यत् तत्करं भवेत्। समुच्चयोऽसौ।।[1]

अर्थात् जहाँ कार्य-सिद्धि के लिये एक कारण के साथ यदि दूसरे कारण की साधकता का भी समावेश हो जाय तो वहाँ समुच्चय अलङ्कार होता है।

बालरामायण नाटक में प्रथम अङ्क में जनक को क्रुद्ध देखकर रावण कहता है—

यज्वा, जरापरिणतः, श्वशुरो भविष्यन् ब्रह्मैकतानहृदयो, गुणवांस्तथेति।
क्षान्तेर्निमित्तमिदमत्र समैकमेकं हे पाणयः किमिति वाञ्छथ चन्द्रहासम्।।[2]

अर्थात् यह अच्छी तरह यज्ञ करने वाले, वृद्ध, भविष्यत् श्वसुर, ब्रह्मपरायण और प्रसिद्ध गुणी हैं। एक-एक गुण मेरी क्षमा का ही कारण है, अरी मेरी भुजाओं चन्द्रहास क्यों उठाना चाह रही हो।

इस पद्य में रावण द्वारा जनक को क्षमा करने का पहला कारण यह है कि वह यज्ञ करने वाले वृद्ध हैं और अन्य यह कि भविष्य में होने वाले श्वसुर तथा ब्रह्मपरायण हैं। यहाँ एक कारण के होते हुये अन्य कारणों की साधकता का भी समावेश होने के कारण समुच्चय अलङ्कार है।

इसी प्रकार विरहोन्मत्त रावण द्वारा ग्रीष्म और चन्द्र के लिये कहे गये वचन[3] इत्यादि प्रसङ्गों में यह अलङ्कार प्रयुक्त हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में इस अलङ्कार का वर्णन नहीं दिखायी पड़ता है।

व्याजोक्ति

व्याजोक्तिश्छद्मनोद्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम्।
निगूढमपि वस्तुनो रूपंकथमपि प्रभिन्नं
केनापि व्यपदेशेन यदपहनूयते सा व्याजोक्तिः।।[4]

अर्थात् छिपायी गयी किसी वस्तु का रूप खुल जाने पर उसे किसी बहाने पुनः छिपा दिये जाने पर व्याजोक्ति अलङ्कार होता है।

सम्प्रत्येव यथाप्रतिश्रुतमियं कन्या मया दीयते।
तेनेह स्वयमेत्य धूर्जटिधनुर्धौरेयदोः सम्पदो
जामातुः पुरतश्चिराय भवता धाराजलं त्यज्यताम्।। प्रसन्नरा. ३/३६

१. का. प्र. १०/११६
२. बालरा. १/५६
३. (क) अयि शिशिरतरोपचारयोग्ये द्वितयमिदं युगपन्न सह्यमेव।
जरठितरविदीधितिश्च कालो दयितजनेन समं च विप्रयोगः।। वही, ५/२५
(ख) हे चन्द्रमस्त्यज मृगं कुरु रावणाज्ञां तत्कारिणस्तव गुणद्वितयेन योगः।
तन्मैथिलीनयनकान्त्यपहारदोषो लुप्तश्च ते भवति बिम्बमलाञ्छनं च।। वही, ५/७१
४. का. प्र. १०/११८

बालरामायण में तृतीय अङ्क में पाण्ड्य नरेश के धनुष चढ़ाने के प्रयास को देखकर प्रतीहार हँसते हुये कहता है—

रभसादयमादाय कोदण्डं मदनद्विषः।
व्रीडाविनमितग्रीवो वन्दित्वा पुनरुज्झति।।[१]

अर्थात् यह जल्दी में शिवधनुष उठाकर, फिर लज्जा से गर्दन झुकाये हुये उसे प्रणाम करके छोड़ देता है।

इस पद्य में धनुष न चढ़ा सकने के कारण जो लज्जा का भाव स्पुट हो आया, उसको छिपाने के लिये पाण्ड्यपति शिवधनुष के प्रति भक्ति प्रदर्शित करते हुये उसे प्रणाम कर लेता है। अतः व्याजोक्ति अलङ्कार है।

बालरामायण में इसी एक स्थल पर व्याजोक्ति प्रयुक्त हुआ है जबकि प्रसन्नराघव नाटक में व्याजोक्ति अलङ्कार का वर्णन नहीं प्राप्त होता है।

सम

समं योग्यतया योगो यदि सम्भावितः क्वचित्।[२]

अर्थात् जहाँ दो विशेष वस्तुओं का योग्यरूप से सम्बन्ध वर्णित हो तो वहाँ सम नामक अलङ्कार होता है।

बालरामायण में तृतीय अङ्क में शिवधनुष टूटने पर जनक राम से कहते हैं-

रुग्णचण्डीशकोदण्डनिजदोर्दण्डनिर्जिताम्।
गृहाण पाणौ वैदेहीं पद्मा पद्मे निषीदतु।।[३]

अर्थात् हे शिव धनुष तोड़ने वाले राम! अपने बाहुबल से जीती गयी सीता का पाणिग्रहण रूप विवाह करो जिससे लक्ष्मी कमल पर स्थिर हो जाय।

इस पद्य में सीता का लक्ष्मी से संयोग प्रकट होने के कारण सम अलङ्कार है।

इसी प्रकार रावण-परशुराम युद्ध के पूर्व भृङ्गिरिटि के कथन[४] इत्यादि प्रसङ्गों में सम अलङ्कार दिखायी पड़ता है, जबकि प्रसन्नराघव नाटक में इसका प्रयोग नहीं दिखायी पड़ता है।

---

१. बालरा. ३/३३
२. का. प्र. १०/१२५
३. बालरा. ३/८४
४. एकः कैलासमद्रिं करगतमकरोच्चिच्छिदे क्रौञ्चमन्यो
लङ्कामेकः कुबेरादहृत वसतये कोङ्कणानब्धितोऽन्यः।
एकः शक्रस्य जेता समिति भगवतः कार्तिकेयस्य चान्य-
स्तत् कामं कर्मसाम्यात्किमपरमनयोर्मध्यगा वीरलक्ष्मीः।। वही, २/१५

विषम

क्वचिद्यदतिवैधर्म्यान्न श्लेषो घटनामियात्।
कर्तुः क्रियाफलवाप्तिर्नैवानर्थश्च यद्भवेत्।।
गुणक्रियाभ्यां कार्यस्य कारणस्य गुणक्रिये।
क्रमेण च विरुद्धे यत् स एष विषमो मतः।।[1]

अर्थात् विषम अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ—

१. अतिवैधर्म्य के कारण पूरा-पूरा सम्बन्ध ही न बैठे या

२. कर्ता की इष्टसिद्धि न हो उल्टा अनर्थ हो जाय अथवा

३. कार्य के गुण से कारण का गुण विरुद्ध पड़े या

४. कार्य की क्रिया के साथ कारण की क्रिया का विरोध हो।

बालरामायण नाटक में चतुर्थ अङ्क में परशुराम क्रोधित होकर कहते हैं—

चूडापञ्चकमण्डनः क्व नु शिशुश्चण्डः क्वं चायं मुनि-
र्नित्याकुण्ठक्षुरप्रखण्डितबृहत्क्रौञ्चाद्रिगर्भान्तरः।
तत् सर्वानपि वः स्वयंवरविधौ राज्ञः समेतानब्रुवे
रामं रक्षत शक्तिरस्ति यदि वः क्रुद्धः पुनर्भार्गवः।।[2]

अर्थात् कहाँ यह पाँच चुड़ाओं वाला छोटा बच्चा और कहाँ नित्य तीक्ष्ण कुठार से बड़े क्रौञ्चगिरि प्रदेश का भीतरी भाग फोड़ने वाला यह प्रचण्ड मुनि। तो स्वयंवर में एकत्र हुये तुम सभी भूपालों से मैं कह रहा हूँ कि यदि शक्ति हो तो राम को बचाओ। परशुराम फिर क्रुद्ध हो गया है।

इस पद्य में शिशु और मुनि में स्वभावगत वैषम्य होने के कारण दोनों परस्पर सम्बद्ध नहीं हैं। अतः विषम अलङ्कार है।

इसके अतिरिक्त विरही रावण की लक्ष्मी के लिये कही गयी उक्ति[3] इत्यादि प्रसङ्गों में यह अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक के चतुर्थ अङ्क में राम और परशुराम के परस्पर वार्तालाप[4] इत्यादि प्रसङ्गों में विषम अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

प्रत्यनीक

प्रतिपक्षमशक्तेन प्रतिकर्तुं तिरस्क्रिया।

---

१. का. प्र. १०/१२६

२. बालरा. ४/५४

३. लक्ष्मीः क्षीरमहोदधेरपि सुता स्वाहेव दाहे पटुः। वही, ५/५०

४. क्व परशुरशुभस्ते? कुत्र गोत्रं पवित्रं? क्व धनुरिदमुदग्रं? निर्मलं कुत्र शीलम्?।
घनसमरकराला कुत्र नाराचहेला? कुशकिसलयलीला कुत्र वा पर्णशाला? प्रसन्नरा. ४/३२

या तदीयस्य तत्स्तुत्यै प्रत्यनीकं तदुच्यते।।[1]

अर्थात् वर्णनीय प्रतिपक्ष का तिरस्कार, असमर्थता के कारण न करके उसके सहायक का तिरस्कार किया जाता है, जिससे अन्ततोगत्वा प्रतिपक्ष का उत्कर्ष होता है।

बालरामायण नाटक के पञ्चम अङ्क में विरह से व्याकुल रावण मारुत के प्रति कहता है-

शास्योऽसि मारुत हृते त्वन्मृगेण तदीक्षणे।
स्वामी भृत्यापराधेन दण्डनीय इति स्थितिः।।[2]

अर्थात् अरे पवन तेरे मृग के द्वारा उसके नेत्र चुरा लेने पर तू ही दण्डनीय है। यह नियम है कि नौकर के अपराध के कारण स्वामी को दण्ड दिया जाय।

इस पद्य में समीरण सारंगरूपी प्रतिपक्ष का तिरस्कार किया जा रहा है। अतः प्रत्यनीक अलङ्कार है, जबकि प्रसन्नराघव नाटक में प्रत्यनीक अलङ्कार का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है।

भ्रान्तिमान

भ्रान्तिमानन्यसंवित तत्तुल्यदर्शने।[3]

अर्थात् जहाँ प्राकरणिक के दर्शन में सादृश्य के कारण अप्राकरणिक की प्रतीति होती है, वहाँ भ्रान्तिमान अलङ्कार होता है।

बालरामायण नाटक के पञ्चम अङ्क में रावण को यह भ्रम होता है कि इन्द्र सीता के समीप है, किन्तु प्रतीहारी की चेतावनी से उसे तथ्य का ज्ञान होता है। वह कहता है—

हन्त हन्त सादृश्याद्विप्रलब्धोऽस्मि।
इन्दीवराकरोऽयं न विकस्वरलोचनः शचीरमणः।
जलचन्द्रप्रतिमैषा तरङ्गदीर्घा न वैदेही।[4]

अर्थात् ये कमल खिले हैं—प्रफुल्ल नेत्रों वाला इन्द्र नहीं है तथा इसके साथ जल में चाँद की परछाई है जो तरङ्गों के कारण लम्बी दिख रही है, सीता नहीं है।

यहाँ कमल, चाँद तथा तरङ्गों रूपी प्राकरणिक वस्तुओं में सादृश्य के कारण इन्द्र और सीता की अप्राकरणिक रूप से प्रतीति हो रही है अतः भ्रान्तिमान अलङ्कार है।

---

१. का. प्र. १०/१२८

२. बालरा. ५/६८

३. का. प्र. १०/१३२

४. बालरा. ५/पृ. १६६

रावण द्वारा नीलवस्त्रों के अवगुण्ठन वाली जानकी और लता के भ्रम[1] इत्यादि प्रसङ्गों में इस अलङ्कार का प्रयोग हुआ है। जबकि प्रसन्नराघव में इसका प्रयोग नहीं मिलता है।

प्रतीप

आक्षेप उपमानस्य प्रतीपमुपमेयता।
तस्यैव यदि वा कल्प्या तिरस्कारनिबन्धनम्।।[2]

अर्थात् जहाँ पर या तो उपमान की निन्दा वर्णित हो या उपमान को अनादर करने के लिये उपमेय रूप में वर्णित किया जाय वहाँ प्रतीप अलङ्कार होता है।

बालरामायण नाटक के द्वितीय अङ्क में रावण सीता के बारे में सोचता हुआ कहता है—

तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता शशिकथा तच्चेत्स्मितं का सुधा
सा दृष्टिर्यदि हारितं कुलयैस्ताश्चेद्गिरो धिङ्मधु।
सा चेत्कान्तिरतन्त्रमेव कनकं किं वा बहु ब्रूमहे
यत्सत्यं पुनरुक्तवस्तुविरसः सर्गक्रमो वेधसः।।[3]

अर्थात् यदि उसका मुख दिखायी पड़ता है तो चन्द्रमा की वार्ता ही समाप्त है, यदि वह मुस्कान है तो अमृत क्या है? यदि वह चितवन है तो कमलों के पास कुछ न रह गया यदि वे बोल हैं तो मधु को धिक्कार है यदि वह आभा है तो स्वर्ण निष्प्रयोजन है—अधिक क्या कहूँ? ब्रह्मा का सृष्टिक्रम ही दुहरायी गयी वस्तुओं से विरस हो गया।

इस पद्य में सीता के लिये प्रयुक्त किये गये सभी उपमानों की व्यर्थता वर्णित हो रही हैं। अतः प्रतीप अलङ्कार है।

इसी प्रकार ऐरावत हाथी के प्रति रावण के कहे गये वचन[4] इत्यादि प्रसङ्गों में प्रतीप अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में राम द्वारा चन्द्र के प्रति कही गयी उक्ति[5] इत्यादि प्रसङ्गों में प्रतीप अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

---

१. जानकि जानकि! किमिव मयाऽपकृतं यदवगुण्ठस्य स्थिताऽसि। यद्वा प्रसादरसोन्मुखमनसोऽपि विलासहेतोः कामिन्यः कुप्यन्ते तत्प्रसादयामीति। बालरा. ५/पृ. १७०

२. का. प्र. १०/१३३

३. बालरा. २/१७

४. कुम्भाभ्यां कुचसम्पदूरुविभवो हस्तेन लीलागत
केलीचङ्क्रमितेन गण्डतलयोः कान्तिश्च दन्तद्युता।
स्वः स्तम्बेरमनाथ पक्ष्मलदृशो यस्यास्त्वयेदं हृतं
तां मे दर्शय येन संमदवतास्तेयं मया क्षम्यते।। वही, ५/६६

५. इन्दुरिन्दुरिति किं दुराशया? बिन्दुरेष पयसो विलोक्यते।
नन्विदं विजयते मृगदृशः श्यामकोमलकपोलमाननम्।। प्रसन्नरा. ७/६४

विशेष

विना प्रसिद्धमाधारमाधेयस्य व्यवस्थितिः।
एकात्मा युगपद्वृत्तिरेकस्यानेकगोचरा।।
अन्यत् प्रकुर्वतः कार्यमशक्यस्यान्यवस्तुनः।
तथैव करणं चेति विशेषस्त्रिविधः स्मृतः।।[1]

अर्थात् प्रसिद्ध आधार के बिना आधेय की स्थिति का वर्णन होने पर एक प्रकार का विशेष अलङ्कार होता है। एक पदार्थ की एक ही रूप में अनेक जगह एक साथ उपस्थिति का वर्णन होने पर दूसरे प्रकार का विशेष अलङ्कार होता है। अन्य कार्य को करते हुये अथवा अनायास किसी अशक्य वस्तु का उत्पादन होने पर तीसरे प्रकार का विशेष होता है। इस प्रकार तीन तरह का विशेष अलङ्कार माना गया है।

बालरामायण नाटक में नवम अङ्क में राम और रावण के युद्ध का वर्णन करता हुआ चारण नामक पात्र कहता है—

यावन्तो भुविचाम्बरे च ककुभां कोणोपकोणेषु च
व्यावल्गन्ति धनुर्धराः कवचिनो मायामया रावणाः।
रामः स्वर्गजनाशिषां पद्मसावेकोऽपि कोपोद्धत-
स्तावद्धा प्रतिवक्त्रयोजितशरश्रेणीभिरालक्ष्यते।।[2]

अर्थात् पृथ्वी, आकाश, दिशाओं के कोण तथा उपकोणों में जितने माया निर्मित कवचयुक्त धनुर्धर रावण ललकारते हैं राम अकेले ही क्रुद्ध होकर हर एक रावण के मुख पर बाणों के उतने ही निशाने लगाते हुये दिखायी पड़ रहे हैं।

यहाँ राम की रणचातुरी प्रदर्शित होने के कारण विशेष अलङ्कार है।

इसी प्रकार सूत्रधार और पारिपार्श्विक नामक पात्र के परस्पर वार्तालाप[3] इत्यादि प्रसङ्गों में विशेष अलङ्कार प्रयुक्त हुआ है जबकि जयदेव विरचित प्रसन्नराघव नाटक में यह अलङ्कार प्रयुक्त नहीं हुआ है।

व्याघात

यद्यथा साधितं केनाप्यपरेण तदन्यथा।
तथैव यद्विधीयेत स व्याघात इति स्मृतः।।[4]

अर्थात् यदि किसी बात को कोई जिस प्रकार से सिद्ध करे उसको उसी प्रकार से दूसरा बदल दे तो वहाँ व्याघात अलङ्कार होता है।

१. का. प्र. १०/१३५, १३६

२. बालरा. ९/४९

३. वदनेन्दुषु वामदृशामिन्दीवरं पत्रसङ्घटितम्।
रसनासु च सुकवीनां निवसति सारस्वतं चक्षुः।। वही, १/७

४. का. प्र. १०/१३८-१३९

बालरामायण नाटक के दसवें अङ्क में रावण वधोपरान्त अयोध्या गमन के समय में राम आन्ध्र की स्त्रियों की विशेषता बताते हुये कहते हैं-

> **हरनेत्राग्निदग्धस्य केतौ मकरलक्ष्मणः।**
> **दृष्टिरन्ध्रपुरन्ध्रीणां सज्जा संजीवनौषधिः।।**[1]

अर्थात् शिव के नेत्र की अग्नि से जलाये गये कामदेव के लिये, आन्ध्र की कामिनियों के नेत्र पुनः जिला देने की सन्नद्ध ओषधि हैं।

यहाँ नेत्रों के द्वारा ही जला देने और जिला देने में कार्य की विजातीयता स्पष्ट है। अतः व्याघात अलङ्कार है।

उदात्त

> **उदात्तं वस्तुनः सम्पत्। महताञ्चोपलक्षणम्।।**[2]

अर्थात् जहाँ पर वस्तुसमृद्धि का वर्णन या किसी वर्ण्यवस्तु के प्रसङ्ग में महापुरुषों का वर्णन हो तो वहाँ पर उदात्त अलङ्कार होता है।[3]

बालरामायण के तृतीय अङ्क में कोहल नामक पात्र रावण की नाट्यशाला का वर्णन करता हुआ कहता है—

> **ज्योतीषिं प्रस्तुवन्ति प्रतिफलनवशान् मौक्तिकन्यासलक्ष्मी-**
> **मिन्दोर्ज्योत्स्ना वितानीभवति भगवतां दर्पणत्वं रवीणाम्।**
> **सन्ध्यारागश्च रङ्गे रचयति सहसा सान्द्रसिन्दूररेखां**
> **स्वेदच्छेदाय चैते दिशि दिशि मरुतस्तालवृन्ती भवन्ति।।**[4]

अर्थात् यहाँ नक्षत्रगण अपनी प्रतिबिम्बित कान्ति द्वारा तोरणों में मोतियों की शोभा को प्रस्तुत कर रहे हैं। चाँद की चाँदनी शाहमियाना बनी हुयी है। सूर्यदेव दर्पण का कार्य कर रहे हैं। प्रदोष की लालिमा शीघ्रतापूर्वक रंगमंच पर गाढ़ी सिन्दूर की रेखा बना रही है और पवन प्रत्येक दिशा में पंखे बन गये हैं।

यहाँ उपर्युक्त वस्तुओं के वर्णन द्वारा रावण का प्रभुत्व वर्णित किया जा रहा है। अतः उदात्त अलङ्कार है।

इनके अतिरिक्त हिमालय वर्णन[5] इत्यादि प्रसङ्गों में उदात्त अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

---

१. बालरा. १०/७१

२. लक्षीकर्तुं प्रवृत्तोऽपि लाटीलडहवीक्षितैः।
लक्षीभवति कन्दर्प्पः स्वेषामेवात्र पत्रिणाम्।। वही, १०/७६

३. का. प्र. १०/१५५

४. बालरा. ३/१३

५. अस्मिन्नूढा मृडानी घुसंरिदिह धृता दन्तिदैत्योऽत्र भिन्न-
श्छिन्नं ब्राह्मं शिरोऽस्मिन्निह गुरुनिधने निर्मिता मातरश्च।

प्रसन्नराघव में रघुवंश के राजाओं की राष्ट्र सीमा वर्णन[1] इत्यादि प्रसङ्गों में उदात्त अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

संसृष्टि

सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः।[2]

अर्थात् जहाँ कई अलङ्कारों की परस्पर निरपेक्षता में भी एकत्र अवस्थिति का चमत्कार हो, वहाँ अलङ्कार-संसृष्टि होती है।

बालरामायण के दशम अङ्क में रावणवधोपरान्त अयोध्या-गमन के समय सुग्रीव सीता से माल्यवान पर्वत का वर्णन करते हुये कहते हैं—

चटुचटुलनिमीलस्पर्शलीलातिमील-
न्नयनयुगमतङ्गारब्धनिद्राविनोदम्।
शुकहरितनितम्बं पश्य वंशीवनान्तै-
रचलमखिलपृथ्वीमाल्यवन्माल्यवन्तम्।।[3]

अर्थात् चटुलता से निमीलिका के आवेश द्वारा सङ्कुचित होते हुये नेत्रों वाले हाथी जहाँ निद्रा कर रहे हैं तथा शुकों के कारण हरित वर्ण वाले बाँसों के जङ्गलों वाला सम्पूर्ण पृथ्वी की माला के समान यह माल्यवान् पर्वत है।

इस पद्य में चटु चटु और माल्यवन् माल्यवन् शब्दों में यमक तथा ल, न, ट, म, इत्यादि वर्णों की एक से अधिक बार आवृत्ति में अनुप्रास परस्पर निरपेक्ष रूप से स्थित है। अतः संसृष्टि अलङ्कार है।

इसके अतिरिक्त प्रातःकाल के वर्णन[4] इत्यादि प्रसङ्गों में संसृष्टि अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

दृक्श्रोत्रप्रीतिपेयं दलितसुरपुरीदुर्गमद्वारमुद्रं
सिद्धानां पूर्वसिद्धैरिति हरचरितं वर्ण्यते चित्रमत्र।। बालरा. १०/३०

१. एते हि स्वरसावनम्रनिखिलक्ष्मापालमौलिज्वलन्माणिक्यस्फुरदंशुमांसलपदप्रेङ्खन्नखज्योतिषः।
दूरोन्मुक्तचतुः समुद्रलहरीविक्षिप्तशुक्तिस्खलन्मुक्तापङ्क्तिविनिर्मितैकवलयं भूमण्डलं भुञ्जते।।
प्रसन्नरा. ५/३२

२. का. प्र. १०/१३९

३. बालरा. १०/५१

४. ताराणां तगरत्विषां परिकरः सङ्ख्येयशेषः स्थितः
स्पर्धन्तेऽस्तरुचः प्रदीपकशिखाः सार्धं हरिद्राङ्कुरैः।
मन्त्रस्तम्भितपारदद्रवजडो जातः प्रगे चन्द्रमाः
पौरस्त्यं च पुराणशीधुमधुरच्छायं नभो वर्तते।। वही, ७/१

प्रसन्नराघव में हनुमान के पराक्रमवर्णन[1] और सूर्योदय वर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में संसृष्टि अलङ्कार दिखायी देता है।

सङ्कर

अविश्रान्तिजुषामात्मन्यङ्गाङ्गित्वं तु सङ्करः।[3]

अर्थात् जहाँ कई अलङ्कार स्वतन्त्र रूप से अवस्थित न हो सकने के कारण परस्पर अङ्ग और अङ्गी के रूप में रहें वहाँ सङ्कर अलङ्कार होता है।

बालरामायण नाटक के तृतीय अङ्क में सीता के प्रति रावण कहता है—

तरङ्गय दृशोऽङ्गनेपततु चित्रमिन्दीवरं
स्फुटीकुरु रदच्छदं व्रजतु विद्रुमः श्वेतताम्।
क्षणं वपुरपावृणु स्पृशतु काञ्चनं कालिका-
मुदञ्चय मनाङ्मुखं भवतु च द्विचन्द्रं नभः।।[4]

अर्थात् कमनीय अङ्गों वाली सीते अपनी आँखें तरङ्गित करो, रङ्गीन कमल का फूल गिर पड़े, होठ प्रकट करो, मूँगा सफेद पड़ जाय, क्षण भर शरीर का आवरण हटा लो, सोना काला हो जाय और थोड़ा सा मुख ऊपर उठा लो जिससे रात में गगन दो चाँदों वाला हो जाये।

इस पद्य में प्रमुख रूप से प्रतीप अलङ्कार और गौण रूप में अतिशयोक्ति अलङ्कार विद्यमान है अतः सङ्कर अलङ्कार है।

इसी प्रकार नायिका वर्णन[5] इत्यादि प्रसङ्गों में सङ्कर अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

---

१. वेलाद्रेरस्य हेलाक्रमणपरिणतस्तुङ्गमाक्रम्य शृङ्गं
मौलिं पूर्वाचलस्य द्युमणिरिव नभो लङ्घयत्यम्बुराशिम्।
वेगप्रोद्भूतवातप्रतिहतसलिलोन्मुक्तगम्भीरगर्भ-
व्यक्तीभूतोरगेन्द्रस्तुतिशत विकसत्कीर्त्तिहारो हनूमान्।। प्रसन्नरा. ६/५०

२. आयान्त्या दिवसश्रियः पदतलस्पर्शानुभावादिव व्योमाशोकतरोर्नवीनकलिकागुच्छः समुज्जृम्भते।
आतन्वन्नवतंसविभ्रममसावाशाकुरङ्गीदृशामुन्मीलत्तरुणप्रभाकरकरस्तोमः समुद्भासते।।
वही, ७/८४

३. का. प्र. १०/१४०

४. बालरा. ३/२५

५. इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव
प्रम्लानारुणिमेव विद्रुमलता श्यामेव हेमद्युतिः।
पारुष्यं कलया च कोकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतं
सीतायाः पुरतश्च हन्त शिखिनां बर्हाः सगर्हा इव।। बालरा. १/४२

प्रसन्नराघव नाटक में चन्द्रमा वर्णन[1] और सूर्य वर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में सङ्कर अलङ्कार का प्रयोग हुआ है।

समासोक्ति

परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः।[3]

अर्थात् प्रस्तुत अर्थ के वाक्य द्वारा श्लेष युक्त विशेषणों के प्रभाव से जो अप्रस्तुत अर्थ का कथन है वह सङ्क्षेप में प्रस्तुत और अप्रस्तुत रूप में दोनों का कथन होने के कारण समासोक्ति अलङ्कार कहलाता है।

प्रसन्नराघव नाटक के सप्तम अङ्क में सूर्योदय का वर्णन करते हुये राम कहते हैं—

एते केतकधूलिधूसररुचः शीतद्युतेरंशवः
प्राप्ताः सम्प्रति पश्चिमस्य जलधेस्तीरं जराजर्जराः।
अप्येते विकसत्सरोरुहवनीदृक्पातसम्भाविताः
प्राचीरागमुदीरयन्ति तरणेस्तारुण्यभाजः कराः।।[4]

अर्थात् केतकपुष्प के पराग के समान धूसर कान्ति वाली चन्द्रमा की ये किरणें वृद्धावस्था से जर्जर होकर पश्चिम सागर के तट पर पहुँच गयी हैं। खिलती हुयी कमल की पङ्क्ति के देखने से सत्कार की गयी सूर्य की ये किरणें भी पूर्व दिशारूपी नायिका की लालिमा और अनुराग को बढ़ा रही हैं।

इस पद्य में चन्द्रमा वृद्ध होकर अस्त हो रहा है और सूर्य तरुण होकर उदय हो रहा है, यहाँ सूर्य के ऊपर तरुण के व्यवहार का और चन्द्र के ऊपर वृद्ध के व्यवहार का आरोप लक्षित होता है। अतः समासोक्ति अलङ्कार है।

इसके अतिरिक्त इसी नाटक के सन्दर्भ[5] इत्यादि प्रसङ्गों में समासोक्ति अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

---

१. यः श्रीखण्डतमालपत्रति दिशः प्राच्याः स्मरक्ष्मापतेः
पाण्डुच्छत्रति दन्तपत्रति वियल्लक्ष्मीकुरङ्गीदृशः।
केलिश्वेतसहस्रपत्रति रतेः किं च क्षपायोषितः
क्रीडाराजतसीधुपात्रति शशी सोऽयं जगन्नेत्रति।। प्रसन्नरा. ७/६२

२. शिथिलयति सरागो यावदर्को नलिन्याः कमलमुकुलनीवीग्रन्थिमुद्रां करेण।
प्रविकसदलिमाला गुञ्जितैर्मञ्जुशब्दा जनयति मुदमुच्चैः कामिनां कामिनीव।। वही, ७/८६

३. का. प्र. १०/६७

४. प्रसन्नरा. ७/८१

५. कर्णे निधाय च पिधाय च कण्ठपीठे धृत्वा च मूर्धनि नते हृदये च कृत्वा।
चोरापहारचकितेन चिरं मयैष त्वत्सूक्तिमौक्तिकगणः परिरक्षणीयः।। वही, १/१६

बालरामायण नाटक में इसका प्रयोग नहीं दिखायी पड़ता है।

विशेषोक्ति

विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः।[1]

अर्थात् सभी कारणों के एकत्र होने पर भी कार्य को न कहना, विशेषोक्ति अलङ्कार कहलाता है।

बालरामायण नाटक के तृतीय अङ्क में कोहल नामक पात्र कामदेव का वर्णन करता हुआ कहता है—

कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने।
नमः शृङ्गारबीजाय तस्मै कुसुमधन्वने।।[2]

अर्थात् शृङ्गार के बीज पुष्पधन्वा कामदेव जलकर भी कर्पूर के समान प्रत्येक व्यक्ति में विराजमान् हैं ऐसे कामदेव को नमस्कार है।

यहाँ कामदेव के जलकर भी नष्ट न होने के कारण विशेषोक्ति अलङ्कार है। प्रसन्नराघव में जनक की कीर्तिवर्णन[3] प्रसङ्ग में यह अलङ्कार आया है।

विरोधाभास

विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।[4]

अर्थात् विरोध न होने पर भी जहाँ दो विरुद्धों का कथन किया जाता है वहाँ विरोधाभास अलङ्कार होता है।

बालरामायण में इसका प्रयोग नहीं दिखायी पड़ता है। जबकि प्रसन्नराघव में इसका प्रयोग कतिपय स्थलों पर दिखायी पड़ता है। तृतीय अङ्क में जनक शिवधनुष का वर्णन करते हुये कहते हैं—

एतत्तद् दुर्विगाहं तुहिनगिरिमयं कार्मुकं यत्र जज्ञे
मौर्वी दर्वीकराणां पतिरुदधिसुतानायकः सायकश्च।
दोर्दण्डैश्चन्द्रमौलेर्नतमपि यद्भूदुन्नतं कार्मुकाणां
वाष्पोम्भोवृष्टये च त्रिपुरमृगदशामैशमप्यैन्द्रमासीत्।।[5]

अर्थात् यह वह उठाने तथा चलाने में कठिन हिमालय पर्वत से निर्मित धनुष है

---

१. का. प्र. १०/१०८

२. बालरा. ३/११

३. छत्रच्छाया तिरयति न यद्यन्न च स्प्रष्टुमीष्टे दृग्यद्गन्धद्विपमदमषीपङ्कनामा कलङ्कः।
लीलालोलः शमयति न यच्चामराणां समीरः स्फीतं ज्योतिः किमपि तदमी भूभुजः शीलयन्ति।।
प्रसन्नरा. ३/१२

४. का. प्र. १०/११०

५. प्रसन्नरा. ३/३०

जिसमें वासुकि प्रत्यञ्चा तथा विष्णु बाण बने थे। जो शङ्कर के भुजदण्डों से नत होकर भी धनुषों में श्रेष्ठ हुआ था तथा त्रिपुराऽसुर की सुन्दरियों के अश्रु जल की वर्षा के लिये शिव का धनुष होता हुआ भी इन्द्रधनुष हो गया था।

जैसे बादलों में इन्द्रधनुष निकलने पर वृष्टि होती है वैसे ही त्रिपुरासुरों के विनाश के पश्चात् उनकी स्त्रियों के रोने से अश्रु धारा बहने लगी और शङ्कर का धनुष इन्द्रधनुष के समान हो गया था। यहाँ दोनों प्रसङ्गों में विरोध होने के कारण विरोधाभास अलङ्कार है। इसके अतिरिक्त शतानन्द की शिवधनुष के लिये कही गयी उक्ति[1] और सीता द्वारा राम के लिये भेजे गये सन्देश[2] इत्यादि प्रसङ्गों में यह अलङ्कार दिखायी पड़ता है।

कवि अपने काव्य को सुन्दर से सुन्दरतम बनाने के लिये अथवा शब्द और अर्थ को चमत्कृत करने के लिये काव्य के विभिन्न तत्त्वों को जोड़ता है। वे काव्य तत्त्व कुछ आन्तरिक तत्त्वों में अलङ्कार, रीति और वक्रोक्ति इत्यादि आते हैं।

बालरामायण में राजशेखर ने अलङ्कारों का प्रयोग वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया की अनुभूति को सजग बनाने के लिये तथा भावों के उत्कर्ष के लिये किया है। उन्होंने शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का प्रयोग बालरामायण नाटक में किया है। उसमें भी उन्होंने अर्थालङ्कार की तुलना में शब्दालङ्कार को प्रधानता दी है। शब्दालङ्कार में भी उनका सर्वाधिक झुकाव अनुप्रास अलङ्कार के प्रति रहा है, क्योंकि समस्त नाटक में यह अलङ्कार छाया हुआ है। चाहे पद्य भाग हो अथवा गद्य भाग दोनों में ही किसी न किसी रूप में यत्र-तत्र अनुप्रास अलङ्कार का स्पर्श गौण रूप में मिलता रहता है।

प्रसन्नराघव में भी जयदेव ने विविध अंलङ्कारों का प्रयोग किया है। इनमें से अधिकांश अलङ्कार स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुये हैं। यद्यपि जयदेव ने भी शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का प्रयोग अपने नाटक में किया है तथापि उन्होंने प्रमुखता अर्थालङ्कार को ही दी है और अर्थालङ्कार में भी प्रमुख रूप से उपमा अलङ्कार का आश्रय लेकर भावों को व्यक्त किया है। प्रसन्नराघव में अनेक स्थल उपमा अलङ्कार से अलङ्कृत हुये हैं। उपमा के प्रयोग के कारण नाटक में सजीवता और सौन्दर्य को उभारने में नाटककार सफल भी हुये हैं।

विवेच्य नाटकों में कतिपय अलङ्कार ऐसे भी हैं जिनका प्रयोग बालरामायण में

१. सद्योविघट्टमानेन धनुषैव पिनाकिनः।
ननुसङ्घट्टितौ पाणी जानकीरामभद्रयोः।। प्रसन्नरा. ३/५०

२. बहलगलन्नयनजलनिर्झरपर्याकुलापि मम दृष्टिः।
तव सुभग! बदनशशधरलावण्यरसं पिपासति।। वही, ६/४५

दिखायी पड़ता है, किन्तु प्रसन्नराघव में नहीं। जैसे—समुच्चय, व्याजोक्ति, सम, प्रत्यनीक इत्यादि। इसी प्रकार कतिपय अलङ्कार प्रसन्नराघव में ऐसे प्रयुक्त हुये हैं जिनका प्रयोग बालरामायण में नहीं हुआ है। जैसे—समासोक्ति इत्यादि। सम्भव है कि विवेच्य नाटकों में वर्णित अलङ्कारों में से कुछ अलङ्कार अनछुये रह गये हों, फिर भी प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत यथासम्भव अधिकाधिक अलङ्कारों का वर्णन करने का प्रयास किया गया है।

❋

अष्टम अध्याय

बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—छन्दो योजना

छन्द की गणना वेद के षडङ्गों में होती है। इसे वेद का चरण बताया गया है—"छन्दः पादौ तु वेदस्य।"[1]

जिस प्रकार चरणविहीन व्यक्ति गतिशील नहीं हो सकता है उसी प्रकार छन्द के बिना वेद भी गतिशीलता और लयात्मकता को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। छन्द कवि के भावों और विचारों को लयात्मक रूप से शृङ्खलाबद्ध कर देता है।

निरुक्त के दैवतकाण्ड में छन्द शब्द की व्याख्या करते हुये यास्क का कथन है कि "छन्दांसि छादनात्" अर्थात् आच्छादन अथवा नियमन के कारण छन्द को छन्द कहते हैं[2], क्योंकि छन्द, रस और भावों का आच्छादन करते हैं।

छन्द शब्द "छदि आच्छादने" के अतिरिक्त "चदि आह्लादने" धातु से भी निष्पन्न माना गया है। "चन्दयति आह्लादयति इति छन्दः" अर्थात् जो पाठकों को आह्लादित करें वह छन्द है। छन्दःशास्त्र के प्राचीनतम आचार्य पिङ्गल माने जाते हैं।

पद्य रचना के लिये छन्दःशास्त्र के गण, वर्ण, मात्रा, सङ्ख्या और विचार आदि नियमों का पालन जितना आवश्यक है उतना ही विषयानुरूप छन्दों का प्रयोग भी अत्यन्त आवश्यक है। छन्द दो प्रकार का होता है—

१. मात्रिक
२. वार्णिक

मात्रिक छन्दों में गणना का आधार मात्रायें होती हैं, जबकि वार्णिक छन्दों में गणना का आधार गण होते हैं। इनमें भी तीन प्रकार के वृत्त होते हैं—

१. समवृत्त
२. अर्द्धसमवृत्त
३. विषमवृत्त[3]

जिस छन्द के चारों चरण समान लक्षण वाले हों उसे समवृत्त[4], जिसके प्रथम

---

१. पा. शि. ६/८/४१

२. निरु. ७/३

३. युक् समं विषमं चायुक् स्थानं सद्भिर्निगद्यते।
समम‌र्धसमं वृत्तं विषमं च तथाऽपरम्।। — वृ. र. १/१३

४. अङ्घ्रयो यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः।
तत् छन्दःशास्त्रतत्त्वज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते।। — वही, १/१४

तथा तृतीय चरण एक तरह के और द्वितीय तथा चतुर्थ दूसरी तरह के हों उसे अर्द्धसमवृत्त[1] और जिसके चारों चरण एक दूसरे से भिन्न हों, उसे विषमवृत्त कहते हैं।[2] राजशेखर ने अपने ग्रन्थ काव्यमीमांसा में छन्दों को काव्यपुरुष का रोमसमूह बतलाया है।[3]

बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों में राजशेखर और जयदेव ने उपर्युक्त सभी प्रकार के वृत्त प्रयोग किये हैं, इन्होंने प्रमुख रूप से ८ अक्षर वाले अनुष्टुप्, ११ अक्षर वाले उपजाति-शालिनी-रथोद्धता-उपेन्द्रवज्रा-इन्द्रवज्रा-स्वागता, १२ अक्षर वाले वंशस्थ-द्रुतविलम्बित-प्रमिताक्षरा-पञ्चचामर-तोटक, १३ अक्षर वाले प्रहर्षिणी-रुचिरा, १४ अक्षर वाले वसन्ततिलका, १५ अक्षर वाले मालिनी, १७ अक्षर वाले शिखरिणी-पृथ्वी-मन्दाक्रान्ता-हरिणी-नर्कुटकम्, १९ अक्षर वाले शार्दूलविक्रीड़ित, २१ अक्षर वाले स्रग्धरा इत्यादि समवृत्त तथा २५ वर्णों वाले पुष्पिताग्रा इत्यादि अर्धसमवृत्त और ५४ मात्रा वाले गाहू, ५७ मात्रा वाले आर्या-गाथा-गाहा, ६० मात्रा वाले गीति-उग्गाहा इत्यादि मात्रिक वृत्तों का प्रयोग किया है, इनमें भी कुछ प्राकृत छन्द हैं। जैसे—गाहा-उग्गाहा-गाहू इत्यादि।

(क) विवेच्य नाटको में समान रूप से प्रयुक्त छन्द

विवेच्य नाटकों में प्रयुक्त किये गये छन्दों की समीक्षा उनमें किये गये प्रयोगों की सङ्ख्या के आधार पर की जा रही है। सर्वप्रथम उन छन्दों का उल्लेख किया जा रहा है जो दोनों नाटकों में समान रूप से प्रयुक्त हुये हैं तत्पश्चात् वे छन्द हैं जो बालरामायण में प्रयुक्त हुये हैं, किन्तु प्रसन्नराघव में नहीं उसके बाद वे छन्द हैं जिनकी चर्चा प्रसन्नराघव में की गयी है, किन्तु बालरामायण में नहीं।

शार्दूलविक्रीडित

यह उन्नीस अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है।

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।[4]

अर्थात् जिस छन्द में मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और अन्त में एक गुरु हों, उसे शार्दूलविक्रीडित नामक वृत्त कहते हैं। इसमें सूर्य-बारह और अश्व-सात अक्षरों के बाद विराम अर्थात् यति होती है।

---

१. प्रथमाङ्घ्रिसमो यस्य तृतीयश्चरणो भवेत्।
द्वितीयस्तुर्यवत् वृत्तं तदर्धसमुच्यते।। वृ. र. १/१५

२. यस्य पादचतुष्केऽपि लक्ष्म भिन्नं परस्परम्।
तदाहुः विषमं वृत्तं छन्दःशास्त्रविशारदाः।। वही १/१६

३. रोमाणि छन्दांसि का. मी., ३/पृ. १६

४. वृ. र. ३/१०१

क्षेमेन्द्र के अनुसार प्रयोग की दृष्टि से शार्दूलविक्रीडित छन्द में ऊर्जस्विता का आभास तभी होता है, जब आदि का अक्षर आ से प्रारम्भ हो, पाद का अन्तिम वर्ण विसर्ग से युक्त हो, पहले दोनों पाद विच्छिन्न हों बाद के दोनों पाद समासयुक्त हों।[1]

बालरामायण नाटक में इस छन्द का सर्वाधिक (२०६ पद्यों में) प्रयोग हुआ है। आचार्य क्षेमेन्द्र, राजशेखर और उनके प्रिय इस छन्द की विशेषता बतलाते हुये कहते हैं कि जिस प्रकार ऊँची चोटियों वाला पर्वत सिंहों के द्वारा उछल-कूद करते समय किये गये नख-चिह्नों से प्रसिद्ध हो जाता है उसी प्रकार राजशेखर भी अपने द्वारा लिखे गये वक्रोक्तियुक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द के द्वारा प्रसिद्ध हो गये।[2]

बालरामायण में शार्दूलविक्रीड़ित के चारों प्रयोग विच्छिन्न रूप में प्राप्त होते हैं। दसवें अङ्क में रावण वधोपरान्त अयोध्या गमन के समय मार्ग में रामसीता से चन्द्रमा की प्रशंसा करते हुये कहते हैं—

ऽऽऽ ।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ऽऽ। ऽऽ। ऽ
गौराङ्गी वदनो पमाप रिचित स्ताराव धूवल्ल भः,
सद्यो मार्जितदाक्षिणात्यतरूणीदन्तावदातद्युतिः।
चन्द्रः सुन्दरि दृश्यतामयमसौ चण्डीशचूडामणिः,
सम्बन्धी रघु भूभुजां मनसिजव्यापारदीक्षागुरुः।।[3]

अर्थात् गौराङ्गी सुन्दरियों के मुख की उपमा से परिचित, ताराओं रूपी वधुओं का प्रियतम, तत्काल मार्जित दाक्षिणात्य युवती के दाँतों के समान, धवल कान्ति के समान, भगवान शङ्कर के शिर का आभूषण, रघुवंशी राजाओं का सम्बन्धी तथा काम व्यापार में दीक्षागुरु यह चन्द्रमा है।

इसमें आदि वर्ण आ से तो नहीं पर दीर्घ स्वर से सम्बद्ध है, चारों पादों के अन्त में विसर्ग आया है, उत्तरार्ध समासयुक्त है किन्तु पूर्वार्ध विच्छिन्न नहीं है। यद्यपि इसमें

---

१. (क) सकाराद्यक्षरैः पादपर्यन्तैः सविसर्गकैः।
शार्दूलक्रीडित धत्ते तेजोजीवितमूर्जितम्।। सु. ति. २/३५
(ख) विसर्जनीयस्योत्वेन पदैर्निम्नोन्नतैरिव।
शार्दूलक्रीडितं याति पाठे सायासतामिव।। वही, २/३६
(ग) विच्छिन्नपादं पूर्वार्द्धे द्वितीयार्द्धे समासवत्।
शार्दूलक्रीडितं भाति विपरीतमतोऽधमम्।। वही, २/३७
(घ) आद्यन्तयोर्गुणोत्कर्षकान्त्या सर्वातिशायिनोः।
शार्दूलक्रीडितं धत्ते मध्ये तद्गौरवोन्नतिम्।। वही, २/३८
२. शार्दूलक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः।
शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरूच्चशेखरः।। वही, ३/३५
३. बालरा. १०/४१

शार्दूलविक्रीडित के चार में से तीन प्रयोग ही प्राप्त होते हैं, तथापि लक्षणानुसार सभी गण प्राप्त होते हैं। अतः यह पद्य शार्दूलविक्रीडित की श्रेणी में आता है। बालरामायण नाटक के अन्तर्गत सर्वत्र इसी प्रकार यत्र-तत्र यह छन्द प्राप्त होता है। नृपादि की बलप्रशंसा[1] और नायिका वर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में भी यह छन्द प्राप्त होता है।

जयदेवरचित प्रसन्नराघव में सर्वाधिक ७७ पद्यों में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग प्राप्त होता है। चतुर्थ अङ्क में जामदग्न्य लक्ष्मण के प्रति क्रोधित होते हुये कहते हैं—

SSS ।।S ।S। ।।S SS। SS। S
दारैर्मु क्तकुचा शुकैःप रिवृतं प्राचीन मेषांनृ पं
नाहिंसीद्यदसौ कुठारहतकस्तस्यैतदुज्जृम्भितम्।
यन्नारीकवचान्वयप्रणयिनां क्षत्राधमानामिमा
दुर्वाचः प्रविशन्ति मे श्रवणयोर्धिक् क्षत्रगोत्रे कृपाम्।।[3]

अर्थात् पत्नियों के द्वारा अञ्चल से ढके गये इनके पूर्वज राजामूलक को, जो कि इस दुष्ट कुठार द्वारा नहीं मारे गये, उसी का यह फल है कि उसके वंश में उत्पन्न अधम क्षत्रियों के ये दुर्वचन हमारे कानों में सुनायी पड़ रहे हैं। अतः क्षत्रिय वंश के ऊपर दिखलायी गयी मेरी कृपा को धिक्कार है।

इसमें मगण, सगण, जगण, दो तगण और अन्त में एक गुरु का प्रयोग हुआ है। अतः शार्दूलविक्रीडित छन्द है। डॉ० रमाशङ्कर त्रिपाठी ने रमा टीका में[4], आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी ने चन्द्रकला नामक टीका में[5] और पं. रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री ने विभा टीका में[6] उपर्युक्त पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द बताया है।

---

१. यस्यारोपणकर्मणाऽपि बहवो वीरव्रतं त्याजिताः,
कार्यं सज्जितबाणमीश्वरधनुस्तद्दोर्भिरेभिर्मया।
स्त्रीरत्नं तदगर्भसंभवमितो लभ्यं च लीलायिता,
तेनैषा मम फुल्लपङ्कजवनी जाता दृशां विंशतिः।। बालरा. १/३०

२. उत्तालालक भञ्जनानि कबरीपाशेषु शिक्षारसो,
दन्तानां परिकर्म नीविनहनं भ्रूलास्ययोग्याग्रहः।
तिर्यग्लोचनवर्तितानि वचसां छेकोक्तिसंक्रान्तयः,
स्त्रीणां ग्लायति शैशवे प्रतिपलं कोऽप्येष केलिक्रमः।। वही, ३/२३

३. प्रसन्नरा. ४/२६

४. शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। वही, ४/पृ. २०७

५. शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। वही, ४/पृ. २१८

६. शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। वही, ४/पृ. २४६

प्रसन्नराघव नाटक में नान्दी के समय,[१] चन्द्रोदय वर्णन[२] इत्यादि प्रसङ्गों में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है।

बालरामायण में कुल ७६४ पद्य हैं जिनमें सर्वाधिक २०६ पद्यों में राजशेखर ने शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग किया है और प्रसन्नराघव में कुल ३६३ पद्य हैं जिनमें सर्वाधिक ७७ पद्यों में जयदेव ने यह छन्द प्रयुक्त किया है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि विवेच्य नाटकों में इसी छन्द को प्रधानता दी गयी है।

वसन्ततिलका

यह चौदह अक्षर वाला वार्णिक समवृत्त है।

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।।[३]

अर्थात् जिस छन्द में तगण, भगण, दो जगण तथा अन्त में दो गुरु हो उसे वसन्ततिलका वृत्त कहते हैं। इसमें आठ और छः अक्षरों के बाद विराम या यति होती है।

क्षेमेन्द्र कहते हैं कि यदि पद्य का आरम्भ आ अक्षर से हो और ओजोगुण के प्रसङ्ग में बन्धदृढ़ता रहे, परन्तु छोटे-छोटे पद हों तो वहाँ पर वसन्ततिलका छन्द होता है।[४]

बालरामायण नाटक में इसी के अनुरूप १६० पद्यों में वसन्ततिलका छन्द की रचना हुई है। प्रथम अङ्क में सीता-स्वयंवर के समय रावण शिव धनुष देखकर शतानन्द से कहता है—

ऽऽ। ऽ।। ।ऽ। ।ऽ। ऽऽ
सार्द्धंह रेणह रवल्ल भयाच देव्या,

---

१. चत्वारः प्रथयन्तु विद्रुमलतारक्ताङ्गुलिश्रेणयः,
श्रेयः शोणसरोजकोरकरुचस्ते शार्ङ्गिणः पाणयः।
भालेष्वब्जभुवो लिखन्ति युगपद्ये पुण्यवर्णावलीः,
कस्तूरीमकरीः पयोधरयुगे गण्डद्वये च श्रियः।। प्रसन्नरा. १/१

२. एतत् कोककुटुम्बिनीजनमनः शल्यं, चकोराङ्गना-
चञ्चूकोटिकपाटयोर्घटितयोरुद्घाटिनी कुञ्चिका।
दग्धस्यापि नवाङ्कुरः स्मरतरोरार्द्रागसां प्रेयसी-
मानोद्दामगजाङ्कुशो विजयते मुग्धं सुधांशोर्वपुः।। वही, २/३४

३. वृ. र. ३/७६

४. (क) वसन्ततिलकस्याग्रे साकारे प्रथमाक्षरे।
ओजसा जायते कान्तिः सविकासविलासिनी।। सु. ति. २/२०
(ख) आकारेऽपि कृते पूर्वं बन्धेऽल्पपदपेशले।
वसन्ततिलकं धत्ते निर्गन्धि रमणीयताम्।। वही, २/२१

हेरम्बषण्मुखवृषप्रमथावकीर्णम्।
कैलासमुद्धतवतो दशकन्धरस्य,
केयं जनद्धनुषि दुर्मददोः परीक्षा।।[1]

अर्थात् शङ्कर और उनकी प्रिया देवी पार्वती सहित, गणेश, कार्तिकेय, नन्दी और प्रमथों से युक्त कैलाश को उठाने वाले रावण की भुजाओं की इस जीर्ण धनुष पर क्या परीक्षा होगी?

इसमें प्रथम अक्षर (सा) आकार युक्त है तथा शब्दों का बन्ध भी छोटे-छोटे पदों में होने के कारण वसन्ततिलका की शोभा को बढ़ा रहा है। इसके अतिरिक्त राजशेखर ने वीर, रौद्र, शौर्यमिश्रित विरहोन्माद और नायिका वर्णन इत्यादि प्रसङ्गों में भी वसन्ततिलका का प्रयोग किया है।[2]

प्रसन्नराघव नाटक में ७७ पद्यों में जयदेव ने वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त किया है। तृतीय अङ्क के आरम्भ में वामनक नामक पात्र विश्वामित्र मुनि के साथ आते हुये राम और लक्ष्मण की सूचना कुब्जक नामक पात्र को देते हुये कहता है—

ऽऽ१ ऽ११ १ऽ१ १ऽ१ ऽऽ
ताटङ्कि नाझटि तिताडि तताट केन
रामेण पद्मरमणीय विलोचनेन।
क्रीडाशिखण्डकधरेण स लक्ष्मणेन,
साकं मुनिः कुशिकसूनुरितोऽयमेति।।[3]

अर्थात् कान के आभूषण को पहने हुये, शीघ्र ही ताड़का नामक राक्षसी को मारने वाले, कमल के सदृश सुन्दर आँखों वाले, मनोरञ्जन के लिये मोरपङ्ख को धारण करने वाले, लक्ष्मण सहित राम के साथ यह मुनि विश्वामित्र इधर ही आ रहे हैं।

इसमें तगण, भगण, दो जगण तथा अन्त में दो गुरु हैं। पाद के अन्त में लयात्मकता की दृष्टि से गुरु का प्रयोग दिखायी पड़ता है, अतः वसन्ततिलका छन्द है।

---

१. बालरा. १/४४

२. (क) सोऽयं स्वयंग्रहणदुर्ललितो दशास्यस्त्वां याचते दुहितरं पणपूर्वमेव।
सम्बन्धसन्धिममुना च सहानुभूय वंशो निमेर्जयतु यावदियं धरित्री।। वही, १/३४

(ख) रामे तटान्तवसतौ कुशतल्पशायिन्येवं तु नाम भवतो भगवन्ननास्था।
स्मृत्वा तदेहि सगरं च भगीरथं च, दृष्ट्वाऽथ वा मम धनुश्च शिलीमुखांश्च।।
वही, ७/१८

(ग) आः काम मय्यपि विमुञ्चसि नाम बाणान् किं रावणो न विदितः शमितामरो यः।
यद्वा स एष तव राघवपक्षपातस्तत्त्वामसौ प्रतिकरिष्यति चन्द्रहासः।। वही, ५/५८

३. प्रसन्नरा. ३/१

यहाँ पर सम्भवतः जयदेव सुवृत्ततिलक से भी प्रभावित दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि इस पद्य का आरम्भ ता (आकार) से हुआ है और सम्पूर्ण पद्य छोटे-छोटे पदों से सुसज्जित है, जिसके कारण वसन्ततिलका छन्द सुशोभित हो रहा है।

डॉ. रमाशङ्करत्रिपाठी[1], आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी[2] और पं. रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री[3] ने अपनी-अपनी टीकाओं में इस पद्य में वसन्ततिलका छन्द बताया है। इसके अतिरिक्त जयदेव ने वीर, रौद्र और नायिका वर्णन इत्यादि प्रसङ्गों में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया है।[4]

यहाँ पर जयदेव चूँकि राजशेखर से परवर्ती हैं, इसलिये वे उनसे प्रभावित दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि जिस प्रकार राजशेखर ने बालरामायण में शार्दूलविक्रीडित के पश्चात् वसन्ततिलका का सर्वाधिक प्रयोग किया है, उसी प्रकार जयदेव ने भी शार्दूल-विक्रीडित के पश्चात् वसन्ततिलका छन्द का सर्वाधिक प्रयोग अपने प्रसन्नराघव नाटक में किया है। प्रसन्नराघव के सभी सात अङ्कों में वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुआ है।

अनुष्टुप्

यह आठ अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है।

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।[5]

इसके प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं, मात्रायें सबकी भिन्न-भिन्न होती हैं। प्रत्येक चरण का पाँचवाँ वर्ण लघु, छठा दीर्घ तथा सातवाँ वर्ण दीर्घ और ह्रस्व होता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं कि आठ अक्षरों के चरण वाले छन्द को अनुष्टुप् कहते हैं। इसका पाँचवाँ अक्षर लघु और छठा अक्षर गुरु होना चाहिये, किन्तु बड़े-बड़े मान्य कवियों के काव्यों में भी इस विषय की अवहेलना हुई है। अतः श्रव्यता को ही इसकी कसौटी समझना चाहिये यानि ह्रस्व-दीर्घ का कोई बन्धन इस छन्द में स्वीकृत नहीं है।[6]

---

१. वसन्ततिलका वृत्तम्। प्रसन्नरा. ३/पृ. १३४
२. वसन्ततिलकं वृत्तम्। वही, ३/पृ. १३६
३. वसन्ततिलका वृत्तम्। वही, ३/पृ. १५७
४. (क) मन्दाकिनी-कनकपदम-बिसाङ्कुराणां किञ्चोग्रदिग्गजलसद्दशनाङ्कुराणाम्।
उन्मूलनैरलमनीयत शैशवं यैस्तेऽमी भुजा मम निजाः प्रकटीभवन्तु।। वही, १/४३
(ख) राजल्ललाटफलका कमनीयकूजत्काञ्चीगुणप्रणयिनी धृतकेशपक्षा।
हा! किं करोमि मम सा हृदयं प्रविष्टा, नाराचयष्टिरिव पुष्पशिलीमुखस्य।।
वही, ७/८
५. बालरा. १/६
६. (क) कृतं सुराणां सारेण स्थाणवीयमिदं धनुः।
किङ्करास्ते च देवस्य सुकरा रोपणक्रिया।। वही, १/४५

बालरामायण नाटक में १२६ पद्यों में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया गया है। प्रथम अङ्क के आरम्भ में सूत्रधार कर्णाट देशीय लोगों के पुरुषत्व की प्रशंसा करते हुये कहता है—

११ऽ ११ऽ ऽ११ १ऽऽ १ऽ१ ऽ१
अहमे षहरि ष्यामिप रिणेतुः पुरोऽपि ताम्।
नारीपरिभवं सोढुं दाक्षिणात्या न शिक्षिताः।।[१]

अर्थात् मैं उसे परिणेता के सामने से ही हर लूँगा, क्योंकि दाक्षिणात्य लोगों ने नारी से पराभव सहने की शिक्षा नहीं पायी है।

इसमें पाँचवाँ अक्षर लघु और छठा अक्षर गुरु है। अतः अनुष्टुप् छन्द सुशोभित हो रहा है। बालरामायण में कुछ पद्य लघु और गुरु के नियम का पालन नहीं करते हैं जैसे कि प्रथम अङ्क में राजशेखर वाल्मीकि मुनि को नमस्कार करते हुये कहते हैं कि—

योगीन्द्रश्छन्दसां स्रष्टा रामायणमहाकविः।
वाल्मीकजन्मा जयति प्राच्यः प्राचेतसोमुनिः।।[२]

अर्थात् छन्दों के स्रष्टा, रामायण के रचयिता, योगीन्द्र, वाल्मीक से उत्पन्न प्राचीन प्राचेतस् की जय हो।

इसमें पाँचवाँ अक्षर गुरु और छठा अक्षर लघु है, किन्तु लयात्मकता की दृष्टि से यहाँ अनुष्टुप् छन्द है। इसके अतिरिक्त पुराण की छाया वाले, उपदेश और राजनीतिविषयक इत्यादि प्रसङ्गों में यह छन्द दिखायी पड़ता है।[३]

प्रसन्नराघव में ४४ पद्यों में जयदेव ने अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है। प्रथम अङ्क में सूत्रधार कहता है कि नाम के द्वारा भी गुणों का ज्ञान होता है यथा—

१ १ ऽ ऽ१ ऽ ऽ१ऽ ऽ११ १ऽ१ ऽ१
गुणग्रा माभिसं वादिना मापिहि महात्म नाम्।
यथा सुवर्णश्रीखण्डरत्नाकरसुधाकराः।।[४]

(ख) कृते राक्षसराजेन पिनाकस्य पराभवे।
जानन्ति युक्तं गुरवो भवद्भिः परवानहम्।। बालरा. १/५८

(ग) स्वेच्छया कुरुते स्वामी यत्किञ्चन यतस्ततः।
तत्तत् प्रतिचिकीर्षन्तो दुःखं जीवन्ति मन्त्रिणः।। वही, १/२५

१. प्रसन्नरा. १/५

२. सं. हि. कोश (आप्टे), पृ. ११८८

३. अनुष्टुपृछन्दसां भेदे कैश्चित्सामान्यलक्षणम्।
यदुक्तं पञ्चमं कुर्याल्लघु षष्ठं तथा गुरु।। सु. ति. २/४
तत्राप्यनियमो दृष्टः प्रबन्धे महतामपि।
तस्मादव्यभिचारेण श्रव्यतैव गरीयसी।। वही, २/५

४. बालरा. १/३

अर्थात् महात्माओं का नाम भी गुणों के अनुरूप होता है। जैसे कि सुवर्ण, श्रीखण्ड, रत्नाकर और सुधाकर नाम हैं।

इसमें पाँचवाँ अक्षर लघु, छठा अक्षर गुरु और सातवाँ अक्षर भी गुरु है। अतः अनुष्टुप् छन्द है। इसके अतिरिक्त शिवधनुष की प्रशंसा, नायिका वर्णन इत्यादि प्रसङ्गों में इस छन्द का प्रयोग दिखायी पड़ता है।[1]

प्रसन्नराघव में लक्षणानुसार ही अनुष्टुप् का प्रयोग मिलता है जबकि बालरामायण में लक्षण और सुवृत्ततिलक इन दोनों के अनुसार अनुष्टुप् का प्रयोग दिखायी पड़ता है।

स्रग्धरा

यह इक्कीस अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है।

म्रभ्नैर्यानां क्रमेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धराकीर्तितेयम्।[2]

अर्थात् जहाँ पर मगण, रगण, भगण, नगण तथा अन्त में तीन यगण हों उसे स्रग्धरा कहते हैं। इसमें सात, सात अक्षरों पर तीन बार विराम होता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं कि आकार या गुरु से आरम्भ होकर पादान्त में विसर्ग रहे साथ ही विराम का प्रयोग नहीं किया जाय तो स्रग्धरा छन्द होता है।[3]

बालरामायण नाटक में ६५ पद्य स्रग्धरा छन्द में प्रयुक्त हुये हैं। प्रथम अङ्क में स्वयंवर के समय रावण सीता के भावी पति का वध करने की प्रतिज्ञा करके कुछ दिनों के लिये विश्राम करने का आदेश देते हुये सेनापतियों से कहता है-

ऽऽऽ ऽ।ऽ ऽ।। ।।। ।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ
ताम्बूली नद्धमु ग्धक्रमु कतरु तलप्र स्तरेसा नुगाभिः,
पायं पायं कलावीकृतकदलदलं नारिकेलीपलाम्भः।
सेव्यन्तां व्योमयात्राश्रमजलजयिनः सैन्यसीमन्तिनीभि-
र्दात्यूहव्यूहकेलीकलितकुहकुहारावकान्ता वनान्ताः।।[4]

अर्थात् आप लोग सैनिक महिलाओं द्वारा ताम्बूल की लताओं से आवेष्टित

---

१. (क) अस्ति मे कार्मुकं दिव्यं न्यस्तं जनक भूभुजि।
यस्य बाणानले तिस्रः पुरः प्राप्ताः पतङ्गताम्।। प्रसन्नरा. १/२५
(ख) मन्मनः कुमुदानन्दशरत्पार्वणशर्वरी।
अहो इयमितो नूनं पुनरत्यभिवर्तते।। वही, २/१५

२. वृ.र. ३/१०४

३. (क) आकारगुरुयुक्तादिपर्यन्तान्तविसर्गिणी।
असंस्यूतविरामा च स्रग्धरा राजतेतराम्।। सु.ति. २/४१
(ख) आद्यन्ताकारविरहाद् बन्धदोषः स्फुटोऽपि यः।
अविलुप्तैर्विसर्गान्तैः स्रग्धरायां समीहते।। वही, २/४२

४. बालरा. १/६३

क्रमुक वृक्षों के नीचे कदली के पत्तों से बने हुये पात्रों में नारिकेल फल के रस को पीकर, कोयलों द्वारा कुहू-कुहू की ध्वनि से रमणीय और आकाश की यात्रा से उत्पन्न श्रम को दूर करने वाले इन प्रदेशों में विश्राम करें।

यहाँ पर पाद के आदि और अन्त में आकार तथा गुरु वर्ण का प्रयोग हुआ है, पाद के अन्त में विसर्ग प्राप्त होता है और पद्य के मध्य में विराम का भी प्रभाव होने से स्रग्धरा छन्द अपनी पूर्ण सुन्दरता को प्राप्त कर रहा है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी सुवृत्ततिलक में स्रग्धरा के उदाहरण के रूप में बालरामायण के इसी छन्द का प्रयोग किया है।[1]

इसके अतिरिक्त नाटक के युद्धवर्णन[2] और पवनवर्णन[3] इत्यादि अनेक प्रसङ्गों में यह छन्द प्राप्त होता है।

प्रथम अङ्क के दसवें पद्य में इसी नाटक की प्रशंसा में[4] श्री लक्ष्मणसूरि ने अपनी तत्त्वालोक नामक टीका में स्रग्धरा छन्द बताया है।

प्रसन्नराघव नाटक में जयदेव ने २२ पद्यों में स्रग्धरा का प्रयोग किया है। द्वितीय अङ्क में राम द्वारा सन्ध्या के समय के वर्णन में स्रग्धरा छन्द दिखायी देता है—

ऽऽऽ ऽ।ऽ ऽ।। ।।। ।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ

प्राचीमा लम्बमा नेघन तिमिर चयेबा न्धवब न्धकीनां,
सम्प्राप्ते च प्रतीचीं शशिकरनिकरे वैरिणि स्वैरिणीनाम्।
अर्धश्यामोपलार्धस्फटिकमिव दिशामन्तरालं विधत्ते,
कालिन्दीजह्नुकन्यामिलदमलजलस्यन्दसन्दोहमैत्रीम्।।[5]

अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्रियों का हित करने वाले घने अन्धकार के पूर्व दिशा में

---

१. सु. ति. २/४१

२. ये दोलाकेलिदानव्यतिकरगुरवो ये लतागर्भकाराः,
कोदण्डाभ्यासविद्याविधिषु विजयिनो ये स्मरस्वेदवाराम्।
तन्वन्तश्चैत्रमैत्रं मलयशिखरिणस्ते विनिर्यान्त्यमुष्मादा-
कैलासं समीराः सुरतमहमहासाक्षिणो दाक्षिणात्याः।। बालरा. १०/५५

३. युद्धोर्वीष्वर्द्धमग्नैः कुर्वलयसरसां सूत्रिता पत्रिभिः श्री-
र्नाराचैः पाशबन्धागत भुजगभयं लम्पिता वानरेन्द्राः।
भल्लैस्तिर्यक्पतद्भिश्चिलिचिमचयिनो दर्शिताः सादिमार्गाः,
प्राप्ताश्च द्राक् क्षुरप्रैर्वियति नखतुला वीरवक्त्राब्जलावैः।। वही, ८/३२

४. ब्रह्मभ्यः शिवमस्तु वस्तु विततं किंचिद्वयं ब्रूमहे,
हे सन्तः! शृणुतावधत्त विधृतो युष्मासु सेवाञ्जलिः।
यद्वा किं विनयोक्तिभिर्मम गिरां यद्यस्ति सूक्तामृतं,
माद्यन्ति स्वयमेव तत्सुमनसा याञ्चा परं दैन्यभूः।। वही, १/१०

५. प्रसन्नरा. २/३३

प्रवेश करने पर तथा व्यभिचारिणियों के शत्रु चन्द्रमा की किरणों के पश्चिम दिशा में दिखलायी पड़ने पर आधा नीलमणि तथा आधा स्फटिक मणि से युक्त दिशाओं का मध्य भाग, यमुना और गङ्गा के सङ्गम से स्वच्छ जल के समूह की समानता को प्रतीति करा रहा है।

इसमें मगण, रगण, भगण, नगण और अन्त में तीन यगण आये हैं। अतः स्रग्धरा छन्द है।

रमाशङ्कर त्रिपाठी[1], आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी[2] और पं. रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री[3] ने भी इस पद्य में स्रग्धरा छन्द बताया है। इसके अतिरिक्त राजाओं की प्रशंसा[4] और राम-परशुराम युद्ध के समय विष्णु धनुष को चढ़ाने[5], इत्यादि प्रसङ्गों में स्रग्धरा प्रयुक्त हुई है।

इस प्रकार स्रग्धरा के प्रयोग में भी बालरामायण में लक्षणानुसार और सुवृत्ततिलक इनके अनुसार स्रग्धरा का प्रयोग हुआ है, जबकि जयदेव ने प्रसन्नराघव में लक्षणानुसार ही स्रग्धरा का प्रयोग किया है।

मन्दाक्रान्ता

यह सत्रह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है।

मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरु चेत्।।[6]

अर्थात् जहाँ पर मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और अन्त में दो गुरु हों, उसे मन्दाक्रान्ता वृत्त कहते हैं। इसमें चार, छः और सात अक्षरों के बाद यति होती है।

आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं कि धीरे-धीरे ऊपर बढ़ने वाले, पहले चार गम्भीर अक्षर हों तथा मध्य में छः अक्षरों का गुच्छा हों तो मन्दाक्रान्ता छन्द सुशोभित होता है।[7]

१. स्रग्धरा वृत्तं। — प्रसन्नरा. २/पृ. १२६
२. स्रग्धरा वृत्तम्। — वही, २/पृ. १२३
३. स्रग्धरा वृत्तम्। — वही, २/पृ. १४५
४. ज्याघातः कार्मुकस्य श्रयति करतलं कण्ठमोङ्कारनाद
स्तेजो भाति प्रतापाभिधमवनितले ज्योतिरात्मीयमन्तः।
राज्यं सिंहासनश्रीः शममपि परमं वक्ति पद्मासनश्री
र्येषां ते यूयमेते निमिकुलकुमुदानन्दचन्द्रा नरेन्द्राः।। — वही, ३/१०
५. उद्भिन्नश्चापचक्रादमरपरिहितव्योमरन्ध्रावगाही,
बाणोऽयं राघवस्य त्रिदशपुरगतिच्छेदकृद् भार्गवस्य।
हंसीभूतः सुरस्त्रीकरकमलगलत्पुष्पसौरभ्यलुभ्य-
द्भृङ्गीसङ्गीतभङ्गीपरिचलितयशाः स्वर्गपर्यङ्कमेति।। — वही, ४/४३
६. वृ. र. ३/८७
७. मन्थराक्रान्तविश्रब्धैश्चतुर्भिः प्रथमाक्षरैः।
मध्यषट्केऽतिचतुरे मन्दाक्रान्ता विराजते।। — सु. ति. २/३४

बालरामायण नाटक में ६८ पद्यों में राजशेखर ने मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया है। नवम अङ्क में राम-रावणयुद्ध के समय रावण कहता है कि-

SSS SII III SSI SSI SS
आग्नेया स्त्रंहृद यदव थुर्वारु णंहन्त शस्त्र,
धारावाष्पं पवनशरतां यान्ति च श्वासदण्डाः।[1]

अर्थात् हृदय सन्तापरूपी आग्नेयास्त्र है, अश्रुपात वारुणास्त्र के समान हैं तथा श्वास-समूह पवनास्त्र के समान प्रतीत हो रहे हैं।

उपर्युक्त पद्य में क्षेमेन्द्र की मान्यता पूर्ण रूप से घटित हो रही है, क्योंकि आग्नेयास्त्रं और धारावाष्पं पद चार अक्षर के और हृदयदवथुः तथा पवनशरतां ये पद छः अक्षरों के हैं, साथ ही लक्षणानुसार इस पद्य में सभी गण प्राप्त होते हैं इसलिये इस पद्य में मन्दाक्रान्ता छन्द अपनी शोभा को प्राप्त कर रहा है। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग अन्य स्थलों पर भी दिखायी पड़ता है, यथा—शौर्यवर्णन[2] और शिशिरवर्णन[3] इत्यादि।

प्रसन्नराघव में १७ पद्यों में जयदेव ने मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया है। द्वितीय अङ्क में राम, सीता के सौन्दर्य को हर्षचकित होकर देखते हैं और कहते हैं—

SSS SII III SSI SSI SS
केयंश्या मोपल विरचि तोल्लेख हेमैक रेखा-
लग्नैरङ्गैः कनककदलीकन्दलीगर्भगौरेः।
हारिदाम्बुद्रवसहचरं कान्तिपूरं वहद्भिः,
कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेवाविरस्ति।।[4]

अर्थात् कसौटी पर घिसी गयी सुवर्ण की अनुपम रेखा के समान, सोने की कदली के भीतरी भाग के समान थोड़े पीलेपन को लिये हुये गौरवर्ण तथा हल्दी के पानी के प्रवाह के समान सौन्दर्य को धारण करने वाले अङ्गों से युक्त यह कौन सी स्त्री, कामदेव के क्रीड़ा-भवन की अटारी की दीपिका के समान प्रकट हुयी है।

इस पद्य में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और अन्त में दो गुरु होने के कारण मन्दाक्रान्ता छन्द अपनी पूर्ण सुन्दरता को प्राप्त कर रहा है। इसी प्रकार मिथिला

---

१. बालरा. ६/३१

२. शम्भोः शिष्यं कुशिकमुनितः प्राप्तविद्योपविद्यः, क्षुण्णक्षत्रं दशरथभुवामग्रणीः क्षत्रियाणाम्।
वृद्धं बालश्च्यवनकुलजं भास्वतो वंशजन्मा, रामं रामो व्यजयत गतिच्छेदिना सायकेन।।
वही, ५/५

३. नगरपरिघदीर्घा बाहुदण्डा ममैते, विजितकलभकुम्भा सा च तस्याः कुचश्रीः।
तव शिशिर समीरश्चैष नीहारसारस्त्रयमिति हि समेतं दुर्लभं रावणेन।। वही, ५/३७

४. प्रसन्नरा. २/७

के राजाओं की प्रशंसा में[१] और शौर्यवर्णन[२] इत्यादि प्रसङ्गों में मन्दाक्रान्ता छन्द दिखलायी पड़ता है। लक्षण के अनुरूप डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी[३], आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी[४] और पं. रामनाथ त्रिपाठीशास्त्री[५] ने भी इस पद्य में मन्दाक्रान्ता छन्द बताया है।

बालरामायण में प्रसन्नराघव की तुलना में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है। बालरामायण में इस छन्द का प्रयोग गण और सुवृत्ततिलक के अनुसार प्राप्त होता है जबकि प्रसन्नराघव में गणानुसार ही मन्दाक्रान्ता का प्रयोग प्राप्त होता है।

मालिनी

यह पन्द्रह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है।

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।[६]

अर्थात् जहाँ पर दो नगण, एक मगण और अन्त में दो यगण हों, उसे मालिनी छन्द कहते हैं। इसमें आठ और सात अक्षरों पर यति होती है।

क्षेमेन्द्र इसका लक्षण देते हुये कहते हैं कि पद्य का द्वितीयार्द्ध यदि समासयुक्त है तो मालिनी श्रेष्ठ और यदि प्रथमार्द्ध समासयुक्त है तो मालिनी निम्नकोटि की होती है उन्होंने अन्त में विसर्ग की स्थिति भी आवश्यक कही है।[७] उनके अनुसार सर्ग के अन्त में इसका प्रयोग होना चाहिये।[८]

बालरामायण में राजशेखर ने ३७ पद्यों में मालिनी का प्रयोग किया है। सम्भवतः

---

१. छत्रच्छायातिरयति न यद्यत्र च स्रष्टुमीष्टे दृप्यद्गन्धद्विपमदमषीपङ्कनामा कलङ्कः।
लीलालोलः शमयति न यच्चामराणां समीरः स्फीतं ज्योतिः किमपि तदमी भूभुजः शीलयन्ति।। प्रसन्नरा. ३/१२

२. हारः कण्ठं विशतु यदि वा तीक्ष्ण धारः कुठारः,
स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु नः कज्जलं वा जलं वा।
सम्पश्यामो ध्रुवमिह सुखं प्रेतभर्त्तुर्मुखं वा,
यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः।। वही, ४/२३

३. मन्दाक्रान्ता वृत्तम्। वही, २/पृ. ९५

४. मन्दाक्रान्ता वृत्तम्। वही, २/पृ. १००

५. मन्दाक्रान्ता वृत्तम्। वही, २/पृ. ११३

६. वृ. र. ३/८७

७. (क) विसर्गहीनपर्यन्ता मालिनी न विराजते।
चमरी छिन्नपुच्छेव वल्लीवालूनपल्लवा।। सु. ति. २/२२
(ख) द्वितीयार्द्धे समस्ताभ्यां पादाभ्यां मालिनी वरा।
प्रथमार्द्धे समस्ताभ्यां पादाभ्यामवरा मता।। वही, २/२३

८. कुर्यात्सर्गस्य पर्यन्ते मालिनीं द्रुततालवत्।। वही, ३/१९

राजशेखर क्षेमेन्द्र से सहमत नहीं थे, क्योंकि उन्होंने पूर्वार्द्ध में समस्तपदों का प्रयोग किया है, उत्तरार्द्ध में नहीं।

नवम अङ्क के अन्त में रावण वध के पश्चात् चारण नामक पात्र राम के रथ से उतरने की सूचना देता हुआ कहता है—

१११ १११ SSS १SS १SS
रणर सिकसु रस्त्रीमु त्तमन्दा रदामा,
स्वयमयमवतीर्णो लक्ष्मणन्यस्तहस्तः।
विरचितजयशब्दो बन्दिभिः स्यन्दनाङ्का-
दिनकरकुललक्ष्मीवल्लभो रामचन्द्रः।।[1]

अर्थात् रण-प्रिय देवाङ्गनाओं के द्वारा जिनके ऊपर मन्दार की माला बरसायी गयी है, लक्ष्मण पर जिन्होंने हाथ रखा हुआ है, बन्दी लोगों ने जिनका जयकार किया है और जो सूर्यकुल की लक्ष्मी के वल्लभ हैं, वे रामचन्द्र स्वयं ही रथ से उतर गये हैं।

इसमें द्वितीय और चतुर्थ पाद के अन्त में विसर्ग है, अङ्क के अन्त में पद्य है और पूर्वार्ध समासयुक्त है, अतः मालिनी छन्द है।

उपर्युक्त पद्य सुवृत्ततिलक के प्रथम और तृतीय प्रयोग के समीप है। इसमें गणों का प्रयोग भी प्राप्त होता है। अतः मालिनी छन्द है। इसके अतिरिक्त रावण के बाहुबल वर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में मालिनी छन्द का प्रयोग राजशेखर ने बालरामायण में किया है।

प्रसन्नराघव नाटक में १६ पद्यों में जयदेव ने मालिनी छन्द का प्रयोग किया है। प्रथम अङ्क में सूत्रधार प्रसन्नराघव की उक्तियों के विषय में कहता है—

१११ १११ SSS १SS १SS
अपिमु दमुप यान्तोवा ग्विलासैः स्वकीयैः,
परभणितिषु तोषं यान्ति सन्तः कियन्तः।
निजघन-मकरन्द-स्यन्द-पूर्णालवालः,
कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः?[3]**।।**

अर्थात् अपने वचनों के विलास से हर्ष को पाते हुये भी कुछ सज्जन कवियों की उक्तियों से सन्तोष प्राप्त करते हैं, क्योंकि अत्यधिक मकरन्द के प्रवाह से भरी हुयी क्यारी वाला आम का वृक्ष कलशों के जल से सींचा जाना क्या पसन्द नहीं करता है? अर्थात् पसन्द करता है।

---

१. बालरा. ६/५६

२. परिषदियमृषीणामेष वृद्धो नरेन्द्रः, कथमथ तदमुष्मिन्मैथिलीलालसोऽपि।
निजभुजबलदृप्यद्वीरवर्ये समाजे हठहरणविनोदं राक्षसेन्द्रः करोतु।। वही, १/६०

३. प्रसन्नरा. १/१६

इसमें दो नगण, एक मगण और अन्त में दो यगण हैं, अतः मालिनी छन्द दिखायी पड़ता है। इसके अतिरिक्त नायिका वर्णन[1] और चन्द्रवर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में मालिनी छन्द दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार राजशेखर ने बालरामायण में जयदेव के प्रसन्नराघव नाटक की तुलना में अधिक पद्यों में मालिनी छन्द का प्रयोग किया है। राजशेखर ने गणानुसार तो मालिनी छन्द का प्रयोग किया ही है इस छन्द के प्रयोग में सुवृत्ततिलक के सभी नियमों का पालन नहीं हुआ है, जबकि जयदेव ने केवल गणों के आधार पर ही छन्द रचना की है।

शिखरिणी

यह सत्रह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है—

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।[3]

अर्थात् जिस छन्द में यगण, मगण, नगण, सगण और भगण हों और अन्त में लघु और गुरु हों, उसे शिखरिणी नामक वृत्त कहते हैं। इसमें छः और ग्यारह अक्षरों के बाद यति होती है।

क्षेमेन्द्र कहते हैं कि शिखरिणी की रचना में ओजोगुण की स्थिति, अन्त में विसर्ग का लोप तथा पदों की अविच्छिन्नता होनी चाहिये।[4] वे पुनः लिखते हैं कि उपपन्नपरिच्छेदकाल में शिखरिणी अच्छी लगती है।[5]

राजशेखर सम्भवतः क्षेमेन्द्र से सहमत नहीं हैं, शिखरिणी छन्द के प्रयोग में वे क्षेमेन्द्र से अधिक भवभूति से प्रभावित हैं उन्होंने कहा भी है कि भवभूति की शिखरिणी स्वच्छन्द नदी की भाँति है। जिस प्रकार मयूरी घने बादलों को देखकर नाचने लगती है उसी प्रकार उनकी शिखरिणी घने सन्दर्भ से समास बहुला, समस्त पदावली से युक्त होकर अधिक सुन्दर लगती है।[6]

---

१. अयि तव मुखलेखा चन्द्रविम्बे सस्नेहा, दशनकिरणलक्ष्मीरच्छज्योत्स्नासदृक्षा।
कुवलयदलद्रोणीकन्दरायां वहन्ती, तरलवहलमिष्टा दुग्धधारेव दृष्टिः।। प्रसन्नरा. २/२६

२. सितकिरणकपोलामालिमालोकयन्ती, तिमिरविरहतापव्याकुलां व्योमलक्ष्मीम्।
रजनिरमलताराशीकरैः सिक्तमस्याः, परिमलयति गात्रं चन्द्रिकाचन्दनेन।। वही, ७/६३

३. वृ. र. ३/९३

४. (क) शिखरिण्याः समारोहात्सहजैवौजसः स्थितिः।
सैव लुप्तविसर्गान्तैः प्रयात्यत्यन्तमुन्नतिम्।। सु. ति. २/३१

(ख) शिखरिण्याः पदैश्छिन्नैः स्वरूपं परिहीयते।
मुक्तालतायाा निःसूत्रमुक्तैर्मुक्ताफलैरिव।। वही, २/३२

५. उपपन्नपरिच्छेदकाले शिखरिणी मता। वही, ३/२०

६. भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।

बालरामायण में १५ पद्यों में शिखरिणी छन्द प्रयुक्त हुआ है। राजशेखर ने नाटक का आरम्भ ही शिखरिणी छन्द से किया है। प्रथम अङ्क में नान्दी में राजशेखर कहते हैं—

१ऽऽ ऽऽऽ १११ ११ऽ ऽ११ १ऽ
प्रसत्ते यं:पात्रं तिलक यतियं सूक्तिर चना,
य आद्यः स्वादूनां श्रुतिचुलकलेह्येन मधुना।
यदात्मानो विद्याः परिणमति यश्चार्थवपुषा,
स गुम्फो वाणीनां कविवृषनिषेव्यो विजयते।।[1]

अर्थात् श्रेष्ठ कवियों द्वारा लिखा गया काव्य सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त करें, क्योंकि वह प्रसाद गुण से पूर्ण है, जिसे सूक्तियाँ अलङ्कृत करती हैं, जो कर्ण को मधुर लगने वाला है, तत्त्वज्ञान से पूर्ण और अर्थरूपी शरीर से परिणाम को प्राप्त होता है।

यह पद्य घने सन्दर्भ से युक्त है, यहाँ समास बहुल पदावली का प्रयोग हुआ है और लक्षणानुसार यगण, मगण, नगण, सगण, भगण और अन्त में लघु और गुरु सभी गणों का प्रयोग है। अतः शिखरिणी छन्द है। आचार्य लक्ष्मणसूरि ने भी बालरामायण पर लिखी गयी अपनी तत्त्वालोक टीका में प्रथम अङ्क के प्रथम पद्य में शिखरिणी छन्द बताया है। इसके अतिरिक्त औदार्य[2] और नायिकावर्णन[3] इत्यादि प्रसङ्गों में यह छन्द प्रयुक्त हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में ३६ पद्यों में यह छन्द प्रयुक्त हुआ है। प्रयोग लक्षणानुसार गणों के आधार पर हुआ है। चतुर्थ अङ्क में राम परशुराम के कुल को प्रसिद्ध बताते हुये उनसे निवेदन करते हुये कहते हैं—

१ऽऽ ऽऽऽ १११ ११ऽ ऽ११ १ऽ
तपःशा न्तंचेतः स्फटिक मणिमा लापरि करः
कुशाः कुण्डी दण्डः सततमुटजावासनिरतिः।
मुनिनामेतद्वः समुचितमुदग्रं न वचनं
न वक्रभ्रूभङ्गो न शरधनुषी नापि परशुः।।[4]

रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति।। सु. ति. ३/३३
उपर्युक्त मत राजशेखर का है ऐसा वृत्तरत्नाकर में उद्धृत है। वृ. र. ३/पृ.११०

१. बालरा. १/१
२. स्थितिः पुण्येऽरण्ये सह परिचयो हन्त हरिणैः, फलैर्मेध्या वृत्तिः प्रतिदिनं च तल्पानि दृषदः।
इतीयं सामग्री फलति हि विरक्तयै स्पृहयतां, वनं वा गेहं वा सदृशमुपशान्तस्य मनसः।।
वही, ३/१७
३. नरनागक्रियामिश्रा हतरूद्राम्बकक्रियाः।
दुर्धरा हन्त हेरम्बरणव्यापारकेलयः।। वही, ३/२१
४. प्रसन्नरा. ४/३१

अर्थात् चित्त तपस्या से शान्त, स्फटिक मणि की माला को ग्रहण करने में तत्परता, कुश, कमण्डल, दण्ड और निरन्तर पर्णशाला में निवास करने की इच्छा यह सब कुछ आप मुनियों के लिये उचित है। इसके साथ ही आप लोगों के लिये न तीखा वचन, न टेढ़ी भौंह, न बाण-धनुष और न परशु का धारण करना उचित है।

इसमें लक्षणानुसार यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरु क्रमानुसार प्रयुक्त हुये हैं, अतः शिखरिणी छन्द है। प्रसन्नराघव के सभी अङ्कों में इस छन्द का प्रयोग दिखलायी पड़ता है। नायिका वर्णन[१] और विश्वामित्र की प्रशंसा[२] इत्यादि प्रसङ्गों में इस छन्द का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार बालरामायण की अपेक्षा प्रसन्नराघव में शिखरिणी छन्द का प्रयोग अधिक पद्यों में किया गया है।

वंशस्थ

यह बारह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है।

जतौ तु वंशस्थमुरीरितं जरौ।[३]

अर्थात् जिस छन्द में जगण, तगण, जगण और अन्त में रगण हो, और पाद के अन्त में विराम होता हो, वहाँ पर वंशस्थ छन्द होता है। क्षेमेन्द्र कहते हैं कि वंशस्थ छन्द में यदि पद असमस्त हों, पाद विच्छिन्न हों तथा सभी चरण विसर्गान्त हों तो यह छन्द अपनी सुन्दरता को प्राप्त होता है।[४]

बालरामायण में १५ पद्यों में राजशेखर ने वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया है। अष्टम अङ्क में सुमुख नामक पात्र राम और कुम्भकर्ण के मध्य युद्ध का वर्णन करते हुये कहता है-

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ

अमीपु रोऽभ्राणि विभिव्य पत्रिणः, प्रयान्ति धारासलिलैः सह क्षितिम्।
वहन्त्यथैतानि च पश्य विश्वतः, पृषत्करन्ध्रैः स्थितयोरनुक्रियाम्।।[५]

---

१. वहत्यस्या दृष्टिर्विकचनवनीलोत्पलतुलामखण्डस्याभिख्यां वदनमिदमिन्दोः कलयति।
कुचौ किञ्चिन्मीलत्कमलतुलनां कन्दलयतस्तमः शोभां चित्रां चिमुरनिकुरम्बं हि कुरुते।।
प्रसन्नरा. २/१६

२. शलाकीकृत्य स्वां दृशमसमकोपारुणरुचिं, सुरश्रेणीचित्रं गगनतलभित्तौ रचयतः।
सुधांशोर्भानोश्च प्रथमरचितं बिम्बयुगलं, सुधालाक्षासान्द्रद्रवभरितपात्रद्वयमभूत्।। वही, ३/१४

३. वृ. र. ३/४६

४. असमस्तपदैः पादसन्धिविच्छेदसुन्दरम्।
सर्वपादैर्विसर्गान्तैर्वंशस्थं यात्यनर्घताम्।। सु. ति. २/१७

५. बालरा. ८/४६

अर्थात् ये बाण मेघों को फोड़कर जलवृष्टि करते हुये पृथ्वी पर गिर रहे हैं तथा ये बादल भी जल-बिन्दुओं के द्वारा उनका अनुकरण कर रहे हैं अर्थात् उन पर जल गिरा रहे हैं।

इसमें असमस्त पदों का प्रयोग हुआ है, सभी पाद विच्छिन्न हैं और प्रथम और तृतीय पाद के अन्त में विसर्ग आया है।

यद्यपि क्षेमेन्द्र के मतानुसार इसके सभी पाद विसर्गान्त नहीं हैं तथापि लक्षणानुसार सभी गणों का प्रयोग होने के कारण यहाँ पर वंशस्थ छन्द है। इसके अतिरिक्त सूर्योदय[1] और युद्धवर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में यह छन्द दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव में जयदेव ने केवल ३ पद्यों में वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया है। तृतीय अङ्क में राजा जनक राम और लक्ष्मण की सुन्दरता का वर्णन करते हुये कहते हैं—

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ
तनुश्रि यानिर्जि तचम्प कोत्पलौ, सुवर्णनीलोत्पलकोशकमलौ।
अहो दृशामुत्सवदानदक्षिणौ, सुलक्षणौ लक्ष्मणलक्ष्मणाग्रजौ।।[3]

अर्थात् ये राम और लक्ष्मण शरीर की कान्ति से चम्पा के समान गौर और नीलकमल के समान श्याम, सुवर्ण तथा नीलकमल के भीतरी भाग की तरह कोमल, नेत्रों को आनन्द प्रदान करने में निपुण सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न हैं।

इस पद्य में लक्षणानुसार जगण, तगण, जगण और अन्त में रगण है। अतः यहाँ वंशस्थ छन्द है। नायक के पराक्रम वर्णन[4] और साधुवाद[5] के प्रसङ्गों में यह छन्द प्रयुक्त हुआ है।

यहाँ पर बालरामायण की तुलना में प्रसन्नराघव में वंशस्थ छन्द का प्रयोग कम हुआ है, क्योंकि बालरामायण में १५ पद्य इस छन्द में निबद्ध हैं, जबकि प्रसन्नराघव में केवल ३ पद्य ही प्राप्त होते हैं। क्षेमेन्द्र के अनुसार इस छन्द में राजनीतिविवेचन अच्छा बन पड़ता है। चूँकि बालरामायण में वीर रस को प्रधानता दी गयी है इसलिये वहाँ

---

१. उषः प्रवालद्रुम बाल पल्लवास्त्रि लोकहर्म्याङ्गणहस्तदीपिकाः।
दिनद्विपेन्द्रारुणकर्णचामरा मरीचयोऽर्कस्य लुठन्ति कोमलाः।। बालरा. १/२१

२. अमी कबन्धैः प्लवगा रणाङ्गणे शिरस्सु कण्ठात्पतितेषु रक्षसाम्।
मिथो विरोधाज् जनहासदायिनीं सृजन्ति सृष्टिं कपिराक्षसात्मिकाम्।। वही, ७/६१

३. प्रसन्नरा. ३/२१

४. सुबाहुमारीचपुरस्सरा अमी, निशाचराः कौशिकयज्ञघातिनः।
वशे स्थिता यस्य शराग्रवर्तिनः, प्रतापलेशस्य गताः पराभवम्।। वही, ४/८

५. अथाविरासीत् कुरुविन्दलोचनो, द्रुमान्तरे विद्रुमशृङ्गशोभितः।
विभक्तमुक्तामयचित्रमण्डनो, मनोऽपहारी हरिणो हिरण्मयः।। वही, ५/३६

राजनीतिविषयक पद्य अधिक प्राप्त होते हैं जिसके कारण इस छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है, जबकि प्रसन्नराघव शृङ्गार रस प्रधान है जिसके कारण यहाँ राजनीति विषयक चर्चा बालरामायण की अपेक्षाकृत कम की गयी है इसलिये प्रसन्नराघव में वंशस्थ छन्द में निबद्ध पद्यों की संख्या कम है।

आर्या

यह ५७ मात्रा वाला मात्रिक छन्द है।

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या।।[1]

अर्थात् प्रथम तथा तृतीय चरण में बारह मात्रायें होती हैं। (ह्रस्व स्वर की एक मात्रा तथा दीर्घ की दो मात्रायें गिनी जाती हैं)। दूसरे चरण में अट्ठारह तथा चौथे चरण में पन्द्रह मात्रायें होती हैं।

भरतमुनि ने शृङ्गाररस में इस आर्या मृदुवृत्त का विधान बतलाया है।[2]

बालरामायण में १० पद्यों में आर्या छन्द का प्रयोग राजशेखर ने भरतमुनि के अनुसार किया है। पञ्चम अङ्क में रावण हेमन्त की चर्चा करते हुये कहता है कि—

लम्पाकीनां किरन्तश्चिकुरविरचनां रल्लकाञ्छ्वासयन्त-
श्चुम्बन्तश्चन्द्र भागासलिलमविकलं भूर्जंकाषैकचण्डाः।
एते कस्तूरिकैणप्रणयसुरभयो वल्लभा बाह्लवीनां,
कौन्तालीकेलिकाराः परिचयितहिमं हैमना वान्ति वाताः।।[3]

अर्थात् लम्पाक देश की स्त्रियों के केशों को फैलाते हुये, मृगों को उच्छ्वसित करते हुये, चन्द्रभाग के सलिल का पूर्णतः चुम्बन करते हुये, भूर्जों को रगड़ने में प्रचण्ड, कस्तूरी हिरनों के प्रेम से सुरभित, बाह्लवदेश की ललनाओं के प्रिय, कुन्तलदेश की स्त्रियों से केलिकर्त्ता तथा हिम द्वारा सींचे गये हेमन्तकालीन वायु बह रही है।

इसमें शृङ्गाररस का वर्णन होने के कारण आर्या छन्द है। इसके अतिरिक्त नाट्यवर्णन[4] इत्यादि प्रसङ्गों में आर्या छन्द प्रयुक्त हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में जयदेव ने १४ पद्यों में आर्या छन्द का प्रयोग किया है। द्वितीय अङ्क में राम देवीदुर्गा को प्रणाम करते हुये कहते हैं—

---

१. श्रु. बो. ४

२. रूप दीपक संयुक्तमार्यावृत्तसमाश्रयम्।
शृङ्गारे तु रसे कार्यं मृदुवृत्तं तथैव च।। ना. शा. १७/१०६

३. बालरा. ५/३३

४. प्रथयति पात्रविशेषान् सामाजिकमनांसि रञ्जयति।
अनुसंदधाति च रसान नाट्यविधाने ध्रुवागीतिः।। वही, १/२०

करुणतरङ्गतरङ्गिणी विकसन्नयनामृतार्मिसाकरिणि।
तरुणतुहिनकरचूडामणिरमणि त्वां नमस्यामि।।[1]

अर्थात् हे करुण रूप तरङ्गों की नदि! हे दयारूप अमृतमयी! हे अष्टमी के चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण करने वाले भगवान शङ्कर की अर्द्धाङ्गिनी! आपको प्रणाम करता हूँ।

इसमें प्रथम पाद में १२, द्वितीय पाद में १८, तृतीय पाद में १२ और चतुर्थ पाद में १५ मात्रायें हैं। यहाँ लयात्मकता की दृष्टि से आर्या छन्द दिखलायी पड़ता है। इसके अतिरिक्त वासन्ती लता के वर्णन में[2] और राम के वनगमन से दुःखित जनों[3] इत्यादि के वर्णन में आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है।

बालरामायण में राजशेखर ने पूर्ण रूप से आचार्य भरतमुनि का अनुसरण इस छन्द के प्रयोग में किया है, जबकि प्रसन्नराघव में जयदेव ने लक्षणानुसार आर्या का प्रयोग किया है। बालरामायण में प्रसन्नराघव की तुलना में कम पद्यों में आर्या प्रयुक्त हुई है।

उपजाति

यह ग्यारह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है।

अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।[4]

अर्थात् जिस छन्द में इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा आपस में मिले रहते हैं उसे उपजाति कहते हैं।

क्षेमेन्द्र कहते हैं कि उपजाति छन्द के प्रथम पाद का प्रथम अक्षर लघु होना चाहिये।[5]

बालरामायण नाटक में ११ पद्यों में राजशेखर ने उपजाति छन्द का प्रयोग किया

---

१. प्रसन्नरा. २/६

२. वासन्तीरसबिन्दुं सुन्दरमिन्दिन्दिरा इह चरन्ति।
चिरमन्दिरमरविन्दं मन्दं मन्दं परिहरन्ति।। वही, २/१८

३. प्रोषितवति रजनिकरे, बन्धुतया न खलु कैरवाण्येव।
म्लायन्ति किन्तु सहसा भुवनान्यपि तमसि मज्जन्ति।। वही, ५/५

४. वृ. र. ३/३०

५. (क) उपजातिविकल्पानांसिद्धो यद्यपि सङ्करः।
तथापि प्रथमं कुर्यात्पूर्वपादाक्षरं लघु।। सु. ति. २/६

(ख) सूत्रस्येवात्र तीक्ष्णाग्रं श्लोकस्य लघुना मुखम्।
कर्णं विशति निर्विघ्नं सरलत्वं च नोज्झति।। वही, २/७

(ग) गुर्वक्षरेण संरुद्धं ग्रन्थियुक्तमिवाग्रतः।
करोति प्रथमं स्थूलं किञ्चित्कर्णकदर्थनाम्।। वही, २/८

है। प्रथम अङ्क में शुनः शेप नामक पात्र आकाश में चलती हुयी ज्योति को देखकर कहता है-

ऽऽ ऽऽऽ ऽऽ ऽऽऽ ऽ ऽ ऽ ऽऽ ऽऽऽ ऽ

यदेत दग्रेस रमम्ब रस्थज्यो तिःसपू षापुरु षःपुरा णः।

ऽऽ ऽऽऽ ऽऽ ऽऽऽ ऽ ऽ ऽ ऽऽ ऽऽऽ ऽ

अथास्य शिष्यःकि लयाज्ञ वल्क्यस्त स्यापिरा जाजन कःसयो गी।।[1]

अर्थात् आकाश में जो यह ज्योति चल रही है, वह पुराण पुरुष पूषा हैं। इनके शिष्य याज्ञवल्क्य हैं और याज्ञवल्क्य के शिष्य वे योगी राजा जनक हैं।

इसमें क्षेमेन्द्र के लक्षणानुसार प्रत्येक पाद का आरम्भ लघु अक्षर से होता है। इसके पहले और तीसरे पाद में उपेन्द्रवज्रा और दूसरे तथा चौथे पाद में इन्द्रवज्रा का प्रयोग होने के कारण यह पद्य पूर्ण रूप से उपजाति छन्द की शोभा को बढ़ा रहा है। इसके अतिरिक्त विरहवर्णन[2] और शङ्कर के धनुष को राम द्वारा नमस्कार करने[3] इत्यादि प्रसङ्गों में यह छन्द दिखलायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में ७ पद्यों में उपजाति छन्द का प्रयोग किया गया है। प्रथम अङ्क में सूत्रधार रामाश्रित कविता की प्रशंसा करते हुये कहता है—

ऽऽ ऽऽऽ ऽऽ ऽऽऽ ऽऽऽ ऽऽऽ ऽऽऽ ऽ

नब्रह्म विद्यान चराज लक्ष्मीस्त थायथे यंकवि ताकवी नाम्।

ऽऽऽ ऽ ऽऽ ऽ ऽऽ ऽऽऽ ऽऽऽ ऽऽऽ ऽऽऽ ऽ

लोकोत्त रेपुंसि निवेश्य मानापु त्रीवह र्षहृद येकरो ति।।[4]

अर्थात् कवियों की यह कविता श्रीराम आदि में लगायी जाने पर जिस प्रकार पुत्री के समान हृदय में हर्ष उत्पन्न करती है उसी प्रकार वेदान्तादि शास्त्र और राजलक्ष्मी हर्ष नहीं उत्पन्न करती हैं। जिस प्रकार पिता अपनी कन्या को किसी योग्य वर के हाथों में सौंपकर प्रसन्न होता है उसी प्रकार श्रीराम आदि वर्णनीयपुरुष के साथ कविता को सम्बद्ध करके कवि भी प्रसन्न होता है।

इस पद्य में प्रथम द्वितीय और चतुर्थ पाद में उपेन्द्रवज्रा तथा तृतीय पाद में इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग हुआ है, इस प्रकार यहाँ उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्रा का मिश्रित प्रयोग होने के कारण उपजाति छन्द सुशोभित हो रहा है।

---

१. बालरा. १/२२

२. अपि प्रहर्त्ता मम वल्लभोऽसि मृगाङ्कबन्धो निखिलामरेषु।
यैर्व्यापृतस्त्वं मयि रावणेऽपि तैरेव बाणैर्यदि तां प्रति स्याः।। वही, २/१८

३. मद्दोर्दण्डद्वयाक्रान्त्या वत्स लक्ष्मण लक्षय।
स्फुटिष्यति न कोदण्डं त्रुटिष्यति न वा गुणः।। वही, ३/७४

४. प्रसन्नरा. १/२३

डॉ० रमाशङ्करत्रिपाठी[१], आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मी[२] और पं० रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री३ ने भी अपनी टीकाओं में इस पद्य में उपजाति छन्द बतलाया है। इसके अतिरिक्त नायिका वर्णन[४] और जटायु[५] इत्यादि प्रसङ्गों में यह छन्द प्राप्त होता है।

बालरामायण में प्रसन्नराघव की तुलना में इस छन्द में अधिक पद्य निबद्ध हैं।

पुष्पिताग्रा

यह पच्चीस वर्णों वाला अर्धसमवृत्त है। अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।[६]

अर्थात् जिस पद्य में विषमपाद में दो नगण, रगण तथा यगण हों और समपाद में नगण, दो जगण, रगण तथा गुरु होते हैं, वहाँ पुष्पिताग्रा छन्द होता है।

बालरामायण में राजशेखर ने ४ पद्यों में पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग किया है। पञ्चम अङ्क में रावण काम पीड़ित होकर ग्रीष्म ऋतु के प्रति कहता है—

।।। ।।। ऽ।ऽ ।ऽऽ ।।। ।ऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ ।

अयिशि शिरत रोपचा रयोग्ये द्वितय मिदंयु गपन्न सह्यमे व।
जरठितरविदीधितिश्च कालो दयितजनेन समं च विप्रयोगः।[७]

अर्थात् अरे शिशिर उपचार योग्य दो ग्रीष्म वस्तुयें एक साथ सहन नहीं हो सकतीं—एक तो बढ़ी हुयी सूर्य की किरणों वाला समय और उसके साथ ही प्रियजनों का वियोग।

इसमें विषमपाद में दो नगण, रगण तथा यगण हैं और समपाद में नगण, दो जगण, रगण तथा गुरु हैं। विषमपाद में यद्यपि गुरु नहीं है तथापि लयात्मकता की दृष्टि से यहाँ पर गुरु है, अतः पुष्पिताग्रा छन्द है।

आचार्य लक्ष्मणसूरि ने भी अपनी तत्त्वालोक नामक टीका में इस पद्य में पुष्पिताग्रा छन्द बताया है। इसके अतिरिक्त ऋतुवर्णन[८] और किसी नई बात

---

१. उपजाति वृत्तम्। प्रसन्नरा. १/पृ. २६
२. चेन्द्रवज्रोपेन्द्र वज्रयोर्मिथः समिश्रणादुपजातिवृत्तम्। वही, १/पृ. ३३
३. द्वयोर्मिथः समिश्रणादुपजातिवृत्तम्। वही, १/पृ. ३७
४. श्यामच्छवीनामियमन्तराले प्रादुर्भवन्ती कदलीदलानाम्।
कलेव चान्द्री नवनीरदानां चकोरवन्मां मुदितं करोति।। वही, २/१३
५. नखैस्तदीयैः कुलिशात्कठोरै र्भिन्दद्भिरङ्गानि निशाचरस्य।
रथः स हेमा भरणो बभञ्जे न जानकीलाभमनोरथोऽस्य।। वही, ५/४७
६. वृ. र. ४/१०
७. बालरा. ५/२५
८. मसृणचरणपातं गम्यतां भूः सदर्भा विरचयसिचयान्तं मूर्ध्नि धर्मः कठोरः।
तदिति जनकपुत्री लोचनैरश्रुगर्भैः पथि पथिक वधूभिर्वीक्षिताशिक्षिता चं।। वही, ६/३६

कहने[1] इत्यादि प्रसङ्गों में यह छन्द दिखलायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव में ११ पद्यों में जयदेव ने पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग किया है। प्रथम अङ्क में सूत्रधार कवि की शङ्का को झूठा साबित करते हुये कहता है—

> ।।। ।।। ऽ।ऽ ।ऽऽ ।।। ।ऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ ऽ
> **सुललि तवच नामुदा रवृत्तां कृतिम थवायु वतिंप रस्यहृ त्वा।**
> **तटमपि परमर्णवस्य गत्वा वद कतरः सुखभाजनं जनः स्यात्।।**[2]

अर्थात् कृति के पक्ष में—सुन्दर ललित वाक्यों से रचित वर्णनीय व्यक्ति के उदार चरित्र से युक्त, युवती के पक्ष में—सुललित वचन बोलने वाली, उदार चरित से युक्त, दूसरे की रचना या युवती को चुराकर समुद्र को पार करके कौन व्यक्ति सुखी हो सकेगा? अर्थात् कोई भी नहीं।

उपर्युक्त उदाहरण में विषमपाद में दो नगण, रगण तथा यगण हैं तथा समपाद में नगण, दो जगण, रगण तथा गुरु हैं अतः पुष्पिताग्रा छन्द है।

इसके अतिरिक्त सीताविवाह के लिये जनक की उक्ति में[3] और परशुराम के क्रोध[4] इत्यादि प्रसङ्गों में पुष्पिताग्रा छन्द प्रयुक्त हुआ है।

विवेच्य नाटकों में अर्धसमवृत्त की श्रेणी में पुष्पिताग्रा छन्द का ही प्रयोग किया गया है। प्रसन्नराघव में बालरामायण की अपेक्षा अधिक पद्य पुष्पिताग्रा में प्रयुक्त हुये हैं।

स्वागता

यह ग्यारह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है।

> **स्वागतेति रनभाद्गुरुयुग्मम्।**[5]

अर्थात् जहाँ पर रगण, नगण और भगण के पाद में दो गुरु हों वहाँ स्वागता छन्द होता है। इसमें पाद के अन्त में ही विराम (यति) होता है मध्य में नहीं।

क्षेमेन्द्र कहते हैं कि स्वागता छन्द में आकारादि से पद्य का आरम्भ और सभी पादों के अन्त में विसर्ग होना चाहिये।[6]

---

१. उपदिशति समानं कर्म कृत्स्नं पिनाकी, सममपि च यतन्ते कर्तुमभ्यासमेते।
तदपि भृगुकुलेन्दुः काममुत्कृष्यतेऽसौ ननु भवति निवीतं द्रव्यमेव क्रियाभिः।। बालरा. ४/१५

२. प्रसन्नरा. १/१७

३. असुरसुरनिशाचरोरगाणामपि नरकिन्नरसिद्धचारणानाम्।
नमयति यदि कोऽपि चापमेतन्ममदुहितुः सकरग्रहं तनोतु।। वही, १/५३

४. सकलनृपकठोरकण्ठपीठीबहलगलद्रुधिरौघधौतधारः।
तदिदमजनकं जद्विधत्ते परशुरयं जमदग्निनन्दनस्य।। वही ४/३

५. वृ. र. ३/३६

६. साकाराद्यैर्विसर्गान्तैः सर्वपादैः सविभ्रमा।
स्वागता स्वागता भाति कविकर्मविलासिनी।। सु.ति. २/१५

बालरामायण में राजशेखर ने ३ पद्यों में स्वागता छन्द का प्रयोग किया है, उसमें भी क्षेमेन्द्र के अनुसार पूर्ण रूप से इस छन्द का प्रयोग नहीं प्राप्त होता है। छठे अङ्क में वामदेव नामक दशरथ से कैकेयी द्वारा माँगे गये दो वरों को कहता है—

ऽ।ऽ ।।। ऽ।। ऽऽ
केकय स्यसुत यावर युग्मं याचितोऽसि भवता च वितीर्णम्।
यत्किलास्तु भरतो युवराजः स प्रयातु वनमद्य च रामः।।[1]

अर्थात् केकय की कुमारी ने दो वर माँगे और आपने उन्हें दे दिये पहला भरत युवराज हों और दूसरा राम आज ही वन को जायँ।

यहाँ पद्य का आरम्भ आकारादि से तो नहीं पर दीर्घ स्वरों (के) से हुआ है और दो पादों के अन्त में विसर्ग का प्रयोग हुआ है। यह पद्य सुवृत्ततिलक के थोड़ा-सा निकट प्रतीत होता है। इसी प्रकार युद्धवर्णन[2] इत्यादि के प्रसङ्गों में स्वागता छन्द प्रयुक्त हुआ है।

प्रसन्नराघव में जयदेव ने १० पद्यों में स्वागता छन्द का प्रयोग किया है। प्रथम अङ्क में स्वयंवर में उपस्थित राजाओं के शिवधनुष को उठाने में असफल रहने पर मञ्जीरक नामक पात्र कहता है—

ऽ।ऽ ।।। ऽ।। ऽऽ
पश्यप श्यसुभ टैःस्फुट भवं भक्तिरेव गमिता न तु शक्तिः।
अञ्जलिर्विरचितो न तु मुष्टिर्मौलिरेव नमितो न तु चापः।।[3]

अर्थात् राजाओं ने शिव धनु उठाने के लिये शिर नहीं झुकाया है, अपितु उसकी गुरुता को देखकर मानो श्रद्धा से उसको प्रणाम किया है, धनुष को पकड़ने के लिये मुट्ठी नहीं बाँधी है, अपितु मानो उसको हाथ जोड़ा है।

इस पद्य में रगण, नगण और भगण के बाद दो गुरु हैं। अतः यहाँ स्वागता छन्द है।

इसके अतिरिक्त रावण द्वारा शिवधनुष को उठाने में[4] और राम द्वारा सूर्य को नमस्कार करने[5] इत्यादि प्रसङ्गों में स्वागता छन्द दिखायी देता है।

---

१. बालरा. ६/१४
२. अच्छभल्लकपयः स्वकबन्धैर्व्ययादधिनिविष्ट शिरस्कैः।
मायायारचितचित्रशरीरा राक्षसाइवविभान्तिमुहूर्तम्।। बालरा. ७/६३
३. प्रसन्नरा. १/३१
४. सावलेपकमनीयमुदस्य क्रीडयैव विनिबध्य च मौर्वीम्।
कृष्टमेव हरकार्मुकमेतद्दृश्यमत्र सुदृशो हृदयं च।। वही, १/३६
५. लालयन्तमरविन्दवनानि क्षालयन्तमभितो भुवनानि।
पालयन्तमथ कोककुलानि ज्योतिषां पतिमहं महयामि।। वही, ३/३

बालरामायण में प्रसन्नराघव की अपेक्षा कम पद्यों में यह छन्द दिखायी देता है, बालरामायण में सुवृत्ततिलक के अनुसार ही यह छन्द प्राप्त होता है गणों के अनुसार नहीं, जबकि जयदेव ने गणों को आधार बनाकर इस छन्द का प्रयोग किया है।

हरिणी

यह सत्रह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है—

रसयुगहयैन्सौं म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा।[1]

अर्थात् नगण, सगण, मगण, रगण, सगण तथा अन्त में लघु और गुरु जिस पद्य में हों, वहाँ हरिणी नामक छन्द होता है।

क्षेमेन्द्र कहते हैं कि हरिणी छन्द तीन पादों में विच्छिन्न गति वाला तथा चतुर्थ पाद तरलता पूर्ण होना चाहिये।[2] इस छन्द का प्रयोग औदार्य और औचित्य के प्रयोग में होता है।[3] छठे अङ्क में सुमन्त्र वनवास को गये हुये राम का वर्णन करते हुये कहते हैं—

।।। ।।ऽ ऽऽऽ ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ
विहित शयनो ऽनेकन्या सैरनो कहप ल्लवैः,
कलितकलशीपाणिः कुम्भीदलैश्च पुटीकृतैः।
अथ विरचितः किंचित्तालप्रभेऽह्नि सुतेन ते,
परिसरसरिज्जम्बूकुञ्जे निकेतपरिग्रहः।।[4]

आपके पुत्र राम ने जब सूर्य की किरणें तालवृक्ष पर पड़ रही थीं, उस समय वृक्षों के पत्तों से शय्या तैयार करके तथा कुम्भीलता के पत्तों को दोना बनाकर उनसे घड़ा बनाया और पास की नदी के जम्बू के कुञ्ज में कुटी का निर्माण किया।

इसमें तीन पाद विच्छिन्न हैं और एक पाद तरलता से पूर्ण है। इस पद्य का प्रयोग औचित्य के अर्थ में हुआ है। अतः यहाँ पर हरिणी छन्द है। इसके अतिरिक्त औदार्य[5] और भयानक रस[6] इत्यादि प्रसङ्गों में यह छन्द व्यञ्जित हुआ है।

१. वृ. र. ३/९६
२. (क) त्वरातरलविच्छेदैर्विभाति हरिणीपदैः।
मन्थरैर्ग्रन्थिबद्धेव याति निष्पन्दसङ्गताम्।। सु. ति. २/२९
(ख) त्रिषु पादेषु विश्रान्तविलासैर्ललिता पदैः।
अन्ते तरङ्गितगतिर्हरिणी हारिणीतराम्।। वही, २/३०
३. औदार्यरुचिरौचित्यविचारे हरिणी वरा वही, ३/२०
४. बालरा. ६/५१
५. वहति भुवनश्रेणीं शेषः फणाफलकस्थितां कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स च धार्यते।
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरादहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः।। वही, ७/४०
६. जरदगरश्वासत्रासप्रनष्टमृगाङ्गनं, हरिनखमुखन्यासादस्तद्विपोज्झितचीत्कृतम्।
शबरवनितोत्खातैः कन्दैः स्फुटस्थपुटान्तरं, तदनु सरितां बन्धुं विन्ध्यं गतास्त इमे गिरिम्।।
वही, ६/४८

प्रसन्नराघव में १० पद्य हरिणी छन्द में प्रयुक्त हुये हैं। प्रथम् अङ्क में सूत्रधार प्रतिभाशाली कवियों की रचनाओं का महत्त्व बताते हुये कहता है—

१११ ११ऽ ऽऽऽ ऽ१ऽ ११ऽ १ऽ
अमृत जलधेः पायंपा यंपयां सिपयो धरः,
किरति करकास्ताराकारा यदि स्फटिकावनौ।
तदिह तुलनामानीयन्ते क्षणं कठिनाः पुनः,
सततममृतस्यन्दोद्गारा गिरः प्रतिभावताम्।।[1]

अर्थात् यदि अमृत के सागर का जल पीकर यदि बादल उसे ओलों के रूप में वर्षावे तो वे क्षण भर के लिये तो कठोर प्रतीत होंगे, किन्तु जब पिघलने लगेंगे तो उन्हें खाने वाला व्यक्ति निःसन्देह अमृत का आस्वादन करता है। इसी प्रकार प्रतिभायुक्त कवियों की रचनायें भले ही पहले कठिन प्रतीत हों, किन्तु जब वे पाठक की समझ में ठीक-ठीक बैठने लगेंगी तो उनसे अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा।

इसमें लक्षणानुसार नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु और गुरु का प्रयोग हैं, अतः यहाँ हरिणी छन्द अपनी शोभा को प्राप्त हो रहा है। इसके अतिरिक्त वसन्त वायु वर्णन में[2] और कमलों के वन वर्णन[3] इत्यादि प्रसङ्गों में यह छन्द प्राप्त होता है।

प्रसन्नराघव में बालरामायण की अपेक्षा अधिक पद्य इस छन्द में प्रयुक्त हुये हैं। सम्भवतः राजशेखर इस छन्द के वर्णन में उदासीन रहे हैं, जबकि जयदेव उदासीन नहीं हैं, यही कारण है कि राजशेखर ने यह छन्द केवल ३ पद्यों में ही प्रयुक्त किया है, जबकि जयदेव ने १० पद्यों में यह छन्द प्रयुक्त किया है।

रथोद्धता

यह ग्यारह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है।

रान्नराविह रथोद्धता लगौ।[4]

जिस पद्य में रगण, नगण तथा पुनः रगण हो और अन्त में लघु और गुरु हों वहाँ रथोद्धता नामक छन्द होता है। इसमें पाद के अन्त में यति होती है, मध्य में नहीं।

---

१. प्रसन्नरा. १/२१

२. पथि पथि लतालोलाक्षीभिः स्रवन्मधुसीकरं, कुसुमनिकरं वर्षन्तीभिः सहर्षमिवार्चितः।
मधुकरवधूगीतासक्तं कुरङ्गकमास्थितः, प्रसरति वने मन्दं मन्दं वसन्तसमीरणः।।
वही, २/५

३. तरुरयमितः शीतच्छायः स्रवन्मधुशीकरः, सरिदियमितः स्वल्पस्वच्छप्रवाहमनोहरा।
इदमिदमितः स्निग्धामोदं मुहुर्मधुरध्वनन्मधुकरवधूमुग्धाभोगं वनं सरसीरुहाम्।। वही, ५/२२

४. वृ. र. ३/३८

क्षेमेन्द्र कहते हैं कि पादान्त में विसर्गयुक्त रथोद्धता ही सुन्दरता को प्राप्त होती है।[1]

बालरामायण में ५ पद्यों में रथोद्धता छन्द प्रयुक्त हुआ है। बालरामायण में जितनी रथोद्धतायें आयी हैं, उनमें चार चरणों के बीच किसी न किसी एक चरण के अन्त में विसर्ग आया है। पञ्चम अङ्क में रावण सीता के प्रति कहता है—

ऽ।ऽ ।।। ऽ।ऽ । ऽ
प्रेमर म्यमुभ योःसमं दिशोः कामिनां यदिह चाषपिच्छवत्।
एकतस्तु न चकास्ति साध्वपि श्यामपृष्ठमिव बर्हिणश्छदम्।।[2]

अर्थात् प्रेमियों का समान प्रेम नीलकण्ठ के पङ्ख के समान रमणीय होता है और एक तरफ का प्रेम मोर पङ्ख की काली पीठ के समान सुशोभित नहीं होता है।

इस पद्य में रगण, नगण तथा रगण और अन्त में लघु और गुरु हैं। अतः रथोद्धता छन्द है। इसका प्रथम पाद विसर्गान्त है, अन्य तीन पादों के अन्त में विसर्ग नहीं है।

बालरामायण में यह छन्द नीति और शृङ्गाररस के वर्णन में दिखायी देता है[3] जबकि क्षेमेन्द्र के अनुसार विभाव वर्णन में इसका प्रयोग होता है।[4]

प्रसन्नराघव में ६ पद्यों में रथोद्धता छन्द प्रयुक्त हुआ है। द्वितीय अङ्क में सीता की सखी, सीता के विवाह के लिये माँ पार्वती के मन्दिर में प्रार्थना करते हुये कहती है—

ऽ।ऽ ।।। ऽ।ऽ । ऽ
कान्तमि न्दुमणि दामको मले कोमलेन्दुमुकुटाङ्कशायिनि।
इन्दुचारुमचिरेण विन्दतामिन्दुसुन्दरमुखी सखी मम।।[5]

अर्थात् चन्द्रकान्तमणि की माला के समान कोमल और द्वितीया के चन्द्रमा को मुकुट पर धारण करने वाले भगवान शङ्कर की गोद में शयन करने वाली, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली मेरी सखी शीघ्र ही चन्द्र के समान मनोहर पति को प्राप्त करें।

इसमें रगण, नगण, रगण और अन्त में लघु और गुरु का प्रयोग है, अतः रथोद्धता छन्द है। यहाँ पर सुवृत्ततिलक के अनुसार छन्दः प्रयोग नहीं हुआ है, क्योंकि कोई भी पाद विसर्गान्त नहीं है, जबकि लक्षणानुसार सभी गणों का प्रयोग प्राप्त होता

---

१. विसर्गयुक्तैः पादान्तैर्विराजति रथोद्धता। कलापरिचयैर्याता लटभेव प्रगल्भताम्।। सु. ति. २/१३
२. बालरा. ५/१३
३. रूपसम्पदमरीषु नेदृशी स्पर्श एष च दृषत्सहोदरः।
तन्मतिर्मम विदेहजन्मनो मां परीक्षितुमियं विजानतां।। बालरा. ५/२०
४. रथोद्धता विभावेषु भव्या चन्द्रोदयादिषु। सु. ति. ३/१८
५. प्रसन्नरा. २/१०

है। इसके अतिरिक्त शृङ्गार रस[1] और राम-लक्ष्मण के सौन्दर्य वर्णन[2] इत्यादि प्रसङ्गों में रथोद्धता छन्द प्रयुक्त हुआ है।

पृथ्वी

यह सत्रह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है। इसका लक्षण है—

जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।।[3]

अर्थात् जिस पद्य में जगण, सगण, जगण, सगण यगण तथा अन्त में लघु और गुरु हों तो वहाँ पृथ्वी छन्द होता है। यहाँ आठ और नौ अक्षरों के बाद यति होती है।

क्षेमेन्द्र कहते हैं कि पृथ्वी छन्द प्रायः असमस्त पदों से अच्छा लगता है, कहीं-कहीं आ प्रभृति दीर्घ स्वरों से गम्भीर और ओज गुणयुक्त अक्षरों के होने पर समासयुक्त भी पृथ्वी छन्द अच्छा लगता है।[४,५] उनके अनुसार यही एक ऐसा छन्द है जो तिरस्कार-युक्त क्रोध और धिक्कार व्यञ्जक शब्दों का भार उठाने में सक्षम है।[६]

बालरामायण में ६ पद्यों में पृथ्वी छन्द प्रयुक्त किया गया है। राजशेखर ने धिक्कार[७], क्रोध[८], नायिकासौन्दर्य[९] और औदात्य[१०] के वर्णन में इस छन्द का प्रयोग

---

१. उत्तरङ्गय कुरङ्गलोचने लोचने कमलगर्वमोचने।
अस्तु सुन्दरि कलिन्दनन्दिनीवीचिडम्बरगभीरमम्बरम्।। प्रसन्नरा. २/२२

२. एतयोः प्रकृतिरम्यरूपयोरुल्लसत्सहजसौहृदश्रियोः।
आन्तरः स्फुरति कोऽपि संनिधिः प्रत्यगात्मपरमात्मनोरिव।। वही, ३/२०

३. वृ. र. ३/६४

४. असमासैः पदैर्भाति पृथ्वी पृथ्वी पृथक्स्थितैः।
समासग्रन्थिभिः सैव याति सङ्कोचखर्वताम्।। सु. ति. २/२७

५. पृथ्वी साकारगम्भीरैरोजः सर्जिभिरक्षरैः।
समासग्रन्थियुक्तापि याति प्रत्युत दीर्घताम्।। वही, २/२८

६. साक्षेपक्रोधधिक्कारे परं पृथ्वी भरक्षमा। वही, ३/२१

७. घुणव्रणन भङ्गुर पशुपतेः पुराणं धनुर्निरीक्ष्य भजमण्डलीबलमदाद्विकीर्णं मया।
स एष न तितिक्षते समरसीम्नि सीरध्वजः, समं हसत हे मुखान्यसममेतदुद्धट्टनम्।।
बालरा. १/५५

८. स एष भृगुपुङ्गवो गिरिशबालशिष्यो मुनिः, परश्वधशिखाशुशुक्षणिहुताखिलक्षत्रियः।
उपैति धृतमत्सरो गुरुशरासनन्यक्कृतेः, क्व नाम दशकन्धरो वहतु चन्द्रहासं करे।।
वही, २/२४

९. तरङ्गय दृशोऽङ्गने पततु चित्रमिन्दीवरं, स्फुटीकुरु रदच्छदं व्रजतु विद्रुमः श्वेतताम्।
क्षणं वपुरपावृणु स्पृशतु काञ्चनं कालिकामुदञ्चय मनाङ्मुखं भवतु च द्विचन्द्रं नभः।।
वही, ३/२५

१०. क्वणत्कनककिङ्किणीमुखरतोरणैर्गोपुरैर्विचित्रमणिदीधितिस्फुरणसूचितेन्द्रायुधैः।
चकास्त्ययमवाङ्मुखीकृतनभश्चरीलोचनः, स्थितोन्नतनरेश्वरः किमपि मञ्चहर्म्योच्चयः।।
वही, ३/१८

किया है जबकि प्रसन्नराघव में जयदेव ने केवल २ ही पद्य इस छन्द में निबद्ध किये हैं। प्रसन्नराघव में चन्द्रवर्णन[1] और राम के यश वर्णन[2] के प्रसङ्ग में पृथ्वी छन्द दिखायी पड़ता है।

द्रुतविलम्बित

यह बारह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है—

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।[3]

अर्थात् जिस पद्य में नगण, दो भगण और अन्त में रगण हों, वहाँ द्रुतविलम्बित छन्द होता है। इसके पाद के अन्त में यति होती है।

क्षेमेन्द्र कहते हैं कि द्रुतविलम्बित का वर्णविन्यास प्रथम और तृतीय चरणों में द्रुत तथा शेष चरणों में विलम्बित गति वाला होना चाहिये।[4]

बालरामायण में एक ही पद्य में द्रुतविलम्बित छन्द दिखायी पड़ता है, द्वितीय अङ्क में रावण और परशुराम युद्ध वर्णन के प्रसङ्ग[5] में इसका प्रयोग हुआ है।

प्रसन्नराघव में ३ पद्यों में द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग किया गया है। राम-परशुराम वार्तालाप[6], राम-वनवास प्रसङ्ग[7] और सीता-हनुमान वार्तालाप[8] के प्रसङ्गों में यह छन्द दिखायी पड़ता है।

प्रहर्षिणी

यह तेरह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है—

---

१. मयूखनखरत्रुटत्तिमिरकुम्भिकुम्भस्थलोच्छलत्तरलतारकाकपटकीर्णमुक्तागणः।
पुरन्दरहरिद्दरीकुहरगर्भसुप्तोत्थितस्तुषारकरकेसरी गगनकानन गाहते।। प्रसन्नरा. ७/६१

२. समुन्नतघनस्तनस्तवकचुम्बितुम्बीफलक्वणन्मधुरवीणया विबुधलोकवामभ्रुवा।
त्वदीयमुपगीयते हरकिरीटकोटिस्फुरत्तुषारकरकन्दलीकिरणपूरगौरं यशः।। वही, ७/६८

३. वृ. र. ३/४६

४. प्रारम्भे द्रुतविन्यासं पर्यन्तेषु विलम्बितम्।
विच्छित्या सर्वपादानां भाति द्रुतविलम्बितम्।। सु. ति. २/१८

५. विरम भार्गव संहर सङ्गरं त्यज धनूंषि दशापि दशानन।
विषहते न परस्पर वैशसं स भवतोर्भगवान् वृषभध्वजः।। बालरा. २/६०

६. कमलबन्धुविलोचन यस्त्वया स्वमहिमोन्नमनैरधरीकृतः।
न किमसावधरीकुरुते नरस्त्रिदशकोटिकिरीटमणीनपि।। प्रसन्नरा. ४/४६

७. गमय वत्स निमील्य विलोचने कतिचिदत्र निमेषसमाः समाः।
अपि च मामिव शीलसुशीतलं शुभरतं भरतं परिशीलय।। वही, ५/७

८. बहुलपक्षशशीव दिने दिन रघुपतिः कृशतामुपयाति सः।
कुवलयप्रतिमद्युतिरस्य तु प्रविकसत्यनुभाववशंवदा।। वही, ६/४२

म्नौ ज्रौ गः त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्।[१]

अर्थात् जिस पद्य में मगण, नगण, जगण और अन्त में रगण होता है। वहाँ प्रहर्षिणी छन्द होता है। तीन और दश अक्षरों के बाद यति होती है।

क्षेमेन्द्र का कथन हैं कि प्रहर्षिणी प्रायः आ कार सहित, तीन-तीन अक्षरों के पाद वाली अधिक आकर्षक बन जाती है।[२]

बालरामायण नाटक में ४ पद्यों में प्रहर्षिणी छन्द प्रयुक्त हुआ है। राजशेखर ने विरह वर्णन[३] और वीररस[४] के प्रसङ्गों में प्रहर्षिणी छन्द बताया है।

प्रसन्नराघव नाटक में जयदेव ने केवल २ ही पद्यों में प्रहर्षिणी छन्द का प्रयोग किया है।

प्रसन्नराघव में राम द्वारा मारीच वध[५] और नील-रावण युद्ध[६] के प्रसङ्ग में प्रहर्षिणी छन्द प्रयुक्त हुआ है।

(ख) केवल बालरामायणम् में प्रयुक्त छन्द

शालिनी

यह ग्यारह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है। इसका लक्षण है—

शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः।[७]

अर्थात् जिस पद्य में एक मगण, दो तगण और अन्त में दो गुरु हों वहाँ शालिनी छन्द होता है। इसमें चार और सात अक्षर के बाद यति होती है।

---

१. वृ. र. ३/७०

२. आकारमन्थरैः प्रायः पादे-पादेऽक्षरैस्त्रिभिः।
शेषाक्षरैर्द्रुततरैः प्रहर्षाय प्रहर्षिणी।। सु. ति. २/१६

३. यद्वा मन्मथ तां च मां च युगपद्विध्येः समग्रायुधो।
येनाहं जनकात्मजा च सदृशं प्रेम प्रपद्यावहे।। बालरा. ५/४३

४. (क) कोदण्डात्तरलमुदञ्चतः शरस्य द्राग्द्वेधा व्यधितसुधारया सुबाहुम्।
मारीचं सपदि च पुङ्खपत्रवातैरम्भोधेः पुलिनचरं चकार रामः।। वही., ३/८
(ख) एषोऽहं जलमयरत्नकामधेनुं पक्षाभ्यां सपदि विघूर्ण्य ताम्रपर्णीम्।
द्राक्कृत्वा मलयतरून् द्रुताहिपाशानादेशाद्दशरथमागतो जटायोः।। वही., ६/५७
(ग) पौलोमीकुचसिचयं हठेन हत्वा यः क्लृप्तो नृहरिसटौघचामराङ्कः।
त्वत्सूनोः शिखिरथकेतने च तस्मिन् सौमित्रेः सपदि पतन्ति बाणदण्डाः।। वही., ८/४२

५. भ्रूवल्लीविजितमनोजचारुचापश्चापश्रीजितयुवतीमनोरमभ्रूः।
सीतायास्तमनुससार लोचनान्तः, कान्तश्च स्फुरदसितोत्पलाभिरामः।। प्रसन्नरा. ५/३७

६. नीलोऽयं दशमुखपाणिपङ्कजानामङ्केषु भ्रमरतुलां भ्रमन्बिभर्ति।
अप्येको दशसु किरीटपीठिकासु, द्राक्प्रेङ्खन्ननुभवतीन्द्रनीललीलाम्।। वही, ७/२७

७. सु. ति. ३/३४

क्षेमेन्द्र कहते हैं कि श्लथबन्ध वाली शालिनी अच्छी लगती है, आवश्यकता पड़ने पर इसे थोड़ा-सा उत्तेजित भी किया जा सकता है।[1]

बालरामायण नाटक में इस छन्द का प्रयोग किसी पवित्र वस्तु का प्रशंसात्मक सङ्कीर्तन करने के लिये किया गया है। राजशेखर ने ६ पद्य शालिनी छन्द के लिये प्रयुक्त किये हैं। तीसरे अङ्क में चित्रशिखण्ड नामक पात्र, सुवेगा नामक पात्र को राम को धनुर्वेद की प्राप्ति कैसे हुयी, इस विषय में बताते हुये कहता है—

ऽऽऽ ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ

साकंले मेजृम्भ कास्त्रैःस मन्त्रै विंश्वामित्रस्तुण्यतो यं कुशाश्वात्।
रामायासौ तं धनुर्वेदमाद्यं प्रीतः प्रादात् तत्र सौमित्रये च।।[2]

अर्थात् त्रिशङ्कु के शोक को दबाने वाले विश्वामित्र ने सुन्दासुर की स्त्री के वध से प्रसन्न होते हुये कृशाश्व से जिन जृम्भकास्त्रों को मन्त्र के साथ लिया था, उस आद्य धनुर्वेद को प्रसन्न होकर उन्होंने राम और लक्ष्मण को दे दिया।

इसमें लक्षणानुसार एक मगण, दो तगण और अन्त में दो गुरु का प्रयोग किया गया है और इस पद्य में पदों का प्रयोग शिथिल मालूम पड़ता है। चूँकि ऐसा इस छन्द का स्वभाव ही है इसलिये श्लथबन्धतायुक्त शालिनी छन्द का प्रयोग इस पद्य में हुआ है। इसके अतिरिक्त राम का दर्शन[3] और वाराणसी की स्तुति[4] इत्यादि प्रसङ्गों में यह छन्द दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में शालिनी छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है।

उपेन्द्रवज्रा

यह ग्यारह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है—

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।।[5]

अर्थात् जिस पद्य में जगण, तगण, जगण तथा दो गुरु होते हैं, वहाँ पर उपेन्द्रवज्रा छन्द होता है।

---

१. शालिनी श्लथावन्धैव स्वभावेन विभाव्यते।
उत्तेजयेत्तां यत्नेन मन्ददीपशिखामिव।। सु. नि. २/१०

२. बालरा. ३/७

३. प्रीतिस्निग्धैः खेचरैरर्च्यमानो बिभ्रद्व्योम्नः सीम्नि वैमानिकत्वम्।
सेतोर्बन्धाद्राक्षसानां निरोधाद्दिष्टया रामो दृश्यते पूर्णकामः।। बालरा. १०/६२

४. यद्वाचंयमवृत्तयः किमपरं नीवारमुष्टिंपचाः,
सत्यं ज्योतिरुपासते सुकृतिनो द्राक् संवदन्ते च नः।
नित्यासन्नतयाऽत्र खण्डपरशोर्वाराणसीवासिनः,
सम्भोगैरपि सुश्रुवां तदजरं विन्दन्ति नन्दन्ति च।। वही, १०/६२

५. वृ. र. ३/२९

बालरामायण नाटक में सामान्य वर्णन के लिये उपेन्द्रवज्रा का प्रयोग हुआ है[1] जबकि प्रसन्नराघव नाटक में उपेन्द्रवज्रा छन्द नहीं दिखायी पड़ता है।

रुचिरा

यह तेरह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है।

रुचिरा ज्भौ स्जौ ग् चतुर्नवर्कौ।[2]

अर्थात् जिस पद्य में जगण, भगण, सगण, जगण और गुरु होते हैं, वहाँ रुचिरा छन्द होता है।

बालरामायण नाटक में ३ पद्यों में रुचिरा छन्द का प्रयोग किया गया है, युद्धवर्णन[3] और शिवचरित[4] के प्रसङ्ग में रुचिरा छन्द दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में रुचिरा छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है।

गाहा

यह सत्तावन मात्रा वाला प्राकृत छन्द है।

पढमं बारह मत्ता बीए अट्ठारहेहिं संजुत्ता।
जह पढमं तह तीअं दहपंच विहूसिआ गाहा।।[5]

अर्थात् प्रथम और तीसरे चरण में १२-१२ मात्रायें होती हैं, दूसरे चरण में १८ मात्रायें और चतुर्थ चरण में १५ मात्रायें होती हैं।

बालरामायण नाटक में रामानुज लक्ष्मण द्वारा वैष्णव धनुष के विनाश[6] और

---

१. स्वयं मया प्रेमपरीक्षणाय प्रवर्तितः स्वाकृतियन्त्रयोगः।
अथाहमेवागणितैरहोभिर्दशाननान्तं नियतं प्रवत्स्ये।। बालरा. ६/३

२. छ. शा. ७/२

३. (क) गतं परप्रणतिपरायणं शिरस्समित्सुहृत्करयुगलं च तिष्ठति।
इतीव ही विकसितसमदोत्सवं प्रवर्तते किमपि कबन्धताण्डवम्।। बालरा. ७/६४
(ख) यथा यथा प्रहरति वालिनन्दनस्तथातथा हरिहरिभिः स्थितं मुदा।
यथा यथा प्रहरति रावणात्मजस्तथातथा किलिकिलितं च राक्षसैः।। वही, ८/८

४. दिगम्बरो वहति भुजङ्ग भूषणं कपालवान् कलयति दाम कौणपम्।
वृषप्रियो रचयति भस्मगुण्ठनामुमापतेश्चरितमचिन्त्यकारणम्।। वही, २/३

५. प्रा. पैङ्ग. १/५४

६. (क) ब्रह्माण्ड भाण्डभेदन व्यापृत पटुरवगुणमिश्रः।
सन्धीयते प्रकटपयोदमण्डनाडम्बरोड्डामरः।। बालरा. ४/७६
(ख) भुजयुगलदण्डमण्डलितचण्डकोदण्डदण्डभङ्ग भवः।
पिण्डयते अथ च ब्रह्माण्डभाण्डे कटु कटत्कारः।। वही, ४/७८
(ग) इति वलयितसन्धि आकृष्टस्य धनुषो नरेन्द्रसदनेषु।
रघुकुलविक्रममेकं कथयतीव विदलनटङ्कारः।। वही, ४/७९

रावण द्वारा कठपुतलीरूपी सीता की प्रशंसा[1] के प्रसङ्ग में यह छन्द व्यक्त हुआ है। इस प्रकार ५ पद्य गाहा के लिये प्रयुक्त हुये हैं।

प्रसन्नराघव में गाहा छन्द का प्रयोग नहीं किया गया है।

गाहू

यह चौवन मात्रा वाला प्राकृत छन्द है।

पुव्वद्धे उत्तद्धे सत्तग्गल मत्त वीसाइँ।
छट्ठमगण पअमज्झे गाहू मेरू त्व जुअलाइँ।।[2]

अर्थात् इसमें पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों में २७ मात्रायें होती हैं, दोनों अर्धालियों में छठा गण, दो लघु (मेरु) होता है। इस तरह गाहू छन्द में चार चरणों में क्रमशः १२,१५ (२७), १२,१५ (२७) मात्रायें होती हैं।

बालरामायण नाटक में लक्ष्मण द्वारा वैष्णव धनुष के विनाश[3] के प्रसङ्ग में यह छन्द दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में इस छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है।

उग्गाहा

यह साठ मात्रा वाला प्राकृत छन्द है।

पुव्वद्धे उत्तद्धे मत्ता तीसंति सुहअ सम्भणिआ।
सो उग्गाहो वुत्तो पिंगल कइ दिट्ठ सट्ठिमत्तंगो।।[4]

अर्थात् जिस छन्द में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों में ३० मात्रायें मिलती हैं, वह उग्गाहा छन्द कहलाता है।

---

१. (क) स्वादूनां प्रथमाय रूपविभवमिथ्या मिथस्तन्वते,
प्रेम्णे स्वस्ति मनोभवैकसुहृदे यस्य प्रसादादिह।
दम्पत्योरनपेक्षितप्रियसखीचित्रप्रकारोक्तयो,
जायन्ते प्रहरान्तरे शतशः कोपप्रसादोदयाः।। बालरा. ५/१६

(ख) दृग्लीलासु सकौतुकं यदि मनस्तन्मे दृशां विंशति-
र्निसन्धौ परिम्भणे रतिरथो दोर्मण्डली दृश्यताम्।
प्रेमा चेत्परिचुम्बने दशमुखी वैदेहि सज्जा पुरः,
पौलस्त्यस्य च राघवस्य च महत् पश्योपचारेऽन्तरम्।। वही, ५/१७

२. प्रा. पैङ्ग. १/५२

३. (क) श्रवणान्तघटितगुणयष्टि निबिडकुटिलान्तकोटिकुण्डलितम्।
झक्षझणायते झटिति पुनरुक्तिमञ्जुसिञ्जारवं चापम्।। बालरा. ४/७७

(ख) हरधनुषि हठाधिरोपणेन क्षितितनयापरिभाषितः पणोऽभूत्।
विहितमपरिपरिभाषितं पणत्वं पुनरिदमूर्मिलया मुरारिचापे।। वही, ४/८०

४. प्रा. पैङ्ग. १/६८

संस्कृत छन्दःशास्त्री इसे गीति छन्द कहते हैं, जहाँ १२,१८ : १२,१८ मात्रा पायी जाती हैं—

आर्या पूर्वार्धसमं द्वितीयमपि यत्र भवति हंसगते।
छन्दो विदस्तानीं गीतिंताममृतवाणि भाषन्ते।।[1]

बालरामायण में पाँचवें अङ्क में कठपुतली सीता की रावण के प्रति कही गयी उक्ति[2] में यह छन्द दिखायी पड़ता है।

प्रसन्नराघव नाटक में यह छन्द नहीं प्राप्त होता है।

(ग) केवल प्रसन्नराघवम् में प्रयुक्त छन्द

गाथा

यह ५७ मात्रा वाला विषमवृत्त है।

विषमाक्षरपादं वा पादैरसमं दशधर्मवत्।
यच्छन्दो नोक्तमत्र गाथेति तत् सूरिभिः प्रोक्तम्।।[3]

अर्थात् जो विषम अक्षर वाले पद्य हैं और जो त्रिपाद तथा षट्पादी पद्य हैं, वे गाथा कहलाते हैं।

बालरामायण में गाथा छन्द नहीं दिंखायी पड़ता है, जबकि प्रसन्नराघव में सीता और त्रिजटा के वार्तालाप[4] इत्यादि प्रसङ्गों में गाथा वृत्त दिखायी पड़ता है।

इन्द्रवज्रा

यह ग्यारह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।[5]

जिस पद्य में दो तगण, जगण तथा दो गुरु होते हैं, वहाँ इन्द्रवज्रा छन्द होता है। इस छन्द में पाद में विराम होता है।

बालरामायण नाटक में इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग नहीं दिखायी पड़ता है जबकि

---

१. प्रा. पैङ्ग. में उद्धृत १/पृ.६२

२. एकदिगूरम्येणापि अलं स्नेहेन शिखिदलच्छविना।
स्तुमः समद्विपार्श्वं प्रेक्ष्यं च पिच्छोपमं प्रेम।। बालरा. ५/१४

३. वृ. र. ५/१२

४. (क) वाचालेनापि कथिता नाहं नाथस्य नूपुररवेण।
अथवा विधिविधुग्बलात्तेनापि मूकत्वं प्राप्तम्।। प्रसन्नरा. ६/२१

(ख) बहलगत्रयनजलनिर्झरपर्याकुलापि मम दृष्टिः
तव सुभग वदनशशधरलावण्यरसं पिपासति।। वही, ६/४५

५. वही, ३/२८

प्रसन्नराघव नाटक में ४ पद्यों में जयदेव ने इस छन्द का प्रयोग किया है। राम जामदग्न्य वार्तालाप[1] और लङ्का में सीता-हनुमान वार्तालाप[2] इत्यादि प्रसङ्गों में यह छन्द दिखायी पड़ता है।

गीति

यह साठ मात्रा वाला मात्रिक छन्द है।

आर्याप्रथमदलोक्तं यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः।
दलयोः कृतपतिशोभां तां गीतिं गीतवान् भुजङ्गेशः।।[3]

अर्थात् जिसके पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दोनों में आर्या के पूर्वार्ध के समान ७ गण तथा गुरु हों तो यति के कारण उस छन्द को नागराज गीति कहते हैं।

बालरामायण नाटक में गीति छन्द का प्रयोग राजशेखर ने नहीं किया है।

प्रसन्नराघव नाटक में २ पद्यों में गीति छन्द प्रयुक्त हुआ है। वाटिका प्रसङ्ग में राम के लता के प्रति कहे गये वचन[4] और राम द्वारा सूर्य की वन्दना[5] के प्रसङ्गों में गीति छन्द दिखायी पड़ता है।

प्रमिताक्षरा

यह बारह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है—

प्रमिताक्षरा सजससैरुदिता।।[6]

अर्थात् जिस पद्य में सगण, जगण और अन्त में सगण हों तो वहाँ प्रमिताक्षरा छन्द होता है। इसमें पाद के अन्त में विराम होता है।

बालरामायण नाटक में प्रमिताक्षरा छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में प्रमिताक्षरा का प्रयोग एक स्थान पर किया गया है। सप्तम

---

१. किं नाम वाग्डम्बरपण्डितेषु युष्मासु वाणीः प्रचुराः प्रयुञ्जे।
वाणान्रिपुप्राणहरान्मदीपान्सर्वेऽपि यूयं सहिताः सहध्वम्।। प्रसन्नरा. ४/३६

२. (क) यो वालिनः शौर्यनिधेरमित्रं त्रैलोक्यवन्धोस्तपनस्य सूनुः।
रामस्य पादाब्जतलाभिवर्ती सुग्रीवनामा कपिचक्रवर्ती।। वही., ६/४०

(ख) वालिने विसृजता धनुरङ्कं नाकलोकललनाकुचकेलिः।
तारया सममदीयत चास्मै वानरेन्द्रपदवीमाणमौलिः।। वही., ६/४१

३. वृ. र. २/८

४. स्तनविजितस्तबकश्रीरधराधरितप्रवालनवलक्ष्मीः।
अयि लतिके तिरयन्ती तरलदृशं मावलम्बसे लज्जाम्।। प्रसन्नरा. २/१२

५. प्राचीकुङ्कुमतिलकं पूर्वाचलशेखरैकमाणिक्यम्।
त्रिभुवनगृहैकदीपं वन्दे लोकैकलोचनं देवम्।। वही, ७/६०

६. वृ. र. ३/६०

अङ्क में लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर राम के लक्ष्मण के लिये किये गये विलाप के प्रसङ्ग[1] में यह छन्द प्राप्त होता है।

पञ्चचामर

यह बारह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है—

जभौ जरौ वदति पञ्चचामरम्।।[2]

अर्थात् जिस पद्य में जगण, भगण, जगण और रगण होता है, वहाँ पर पञ्चचामर नामक वृत्त होता है।

बालरामायण नाटक में यह छन्द नहीं प्राप्त होता है, जबकि प्रसन्नराघव में एक पद्य में इसकी चर्चा जयदेव ने की है। द्वितीय अङ्क में राम के लिये सीता की उक्ति[3] में यह छन्द दिखायी पड़ता है।

नर्कुटकम्

यह सत्रह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है—

हयदशभिर्नजौ भजजला गुरुनर्कुटकम्।।[4]

अर्थात् जिस पद्य में नगण, जगण, भगण, दो जगण और अन्त में लघु तथा गुरु हों, वहाँ नर्कुटक नामक छन्द होता है। इसमें सात और दश अक्षरों पर यति होती है।

बालरामायण नाटक में नर्कुटकम् छन्द की चर्चा नहीं की गयी है।

जबकि प्रसन्नराघव नाटक में एक पद्य में नर्कुटकम् छन्द प्राप्त होता है। द्वितीय अङ्क में राम द्वारा सीता के सौन्दर्य वर्णन[5] के प्रसङ्ग में यह छन्द दिखायी पड़ता है।

तोटक

यह बारह अक्षरों वाला वार्णिक समवृत्त है—

इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्।[6]

---

१. अयि राघवाविति सुधामधुरं विनिपीय पौरमुनिलोकवचः।
अयि राघवेति गरलप्रतिमं कथमद्य रामहतकः पिबतु।। प्रसन्नरा. ७/३१

२. वृ. र. ३/६७

३. विकसितपेशलोत्पलोत्पलाशपुञ्जश्यामलो महेशसौम्यशेखरस्फुरत्सोमकोमलः।
लतागृहे कोऽयमनङ्गरूपखण्डनो, विलोचनयोर्ददाति मे सुखं शिखण्डमण्डनः।।
प्रसन्नरा. २/२१

४. वृ. र. ३/६८

५. अमलमृणालकाण्डकमनीयकपोलरुचे, स्तरलसलीलनीलनलिनप्रतिफुल्लदृशः।
विकसदशोकशोणकरकान्तिभृतः सुतनोर्मदलुलितानि हन्त ललितानि हरन्ति मनः।।
प्रसन्नरा. २/२०

६. वृ. र. ३/४८

अर्थात् जिस पद्य में चार सगण हों वहाँ तोटक छन्द होता है। इसके पाद के अन्त में विराम होता है।

बालरामायण नाटक में तोटक छन्द की चर्चा नहीं है जबकि प्रसन्नराघव नाटक में प्रथम अङ्क में रावण द्वारा सीता की प्रशंसा[1] के समय यह छन्द प्राप्त होता है।

बालरामायण में राजशेखर ने ७६४ पद्यों में २३ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है जबकि प्रसन्नराघव में जयदेव ने ३६३ पद्यों में २६ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर और जयदेव ने अपने नाटकों में शार्दूलविक्रीडित छन्द को प्रधानता दी है।

राजशेखर ने अपने नाटक में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग मुख्य रूप से किया है, चूँकि इस छन्द का स्वभाव उग्र होता है और उन्होंने इसी के अनुकूल वीर रस का भी प्रयोग मुख्य रूप से बालरामायण में किया है। ऐसा प्रतीत होता है इन दोनों का स्वभाव परस्पर अनुकूल होने के कारण इस नाटक की उपादेयता बढ़ गयी है।

यद्यपि जयदेव ने भी प्रसन्नराघव में वीर रस के स्थान पर शृङ्गार रस को प्रधानता दी है तथापि उन्होंने भी राजशेखर के समान ही शार्दूलविक्रीडित छन्द को ही मुख्य रूप से प्रयुक्त किया है। यद्यपि यहाँ पर रस की दृष्टि से इस छन्द के प्रयोग की प्रतिकूलता दृष्टिगोचर होती है, तथापि कोमल भावों की प्रवणता में भी यह छन्द समजता से मुखरित होता हुआ दिखलायी पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः जयदेव प्रसन्नराघव नाटक में रस के माध्यम से राम के कोमल पक्ष और इस छन्द के माध्यम से राम के वीरता पक्ष को उभारकर सहृदय सामाजिक के सामने राम के चरित के दोनों पक्षों को उभारना चाहते थे।

बालरामायण में राजशेखर ने प्राकृत छन्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे—गाहा, गाहू, उग्गाहा इत्यादि जबकि प्रसन्नराघव में जयदेव ने एक भी प्राकृत छन्द का उल्लेख नहीं किया है। इसी प्रकार कतिपय वार्णिक छन्द ऐसे हैं जिनका उल्लेख जयदेव ने प्रसन्नराघव में किया है जैसे—प्रमिताक्षरा, पञ्चचामर, नर्कुटकम् और तोटक इत्यादि जबकि बालरामायण में राजशेखर ने इन छन्दों का प्रयोग कहीं पर भी नहीं किया है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि विवेच्य नाटकों में छन्दों के प्रयोग में परस्पर समानता होते हुये भी विषमता दिखायी पड़ती है। छन्दों का प्रयोग दोनों ही नाटककारों ने विषय की दृष्टि से पृथक्-पृथक् रूप से किया है।

❊

---

१. कदली कदली करभः करभः करिराजकरः करिराजकरः।
भुवनत्रितयेऽपि बिभर्ति तुलामिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः।। प्रसन्नरा. १/३७

नवम अध्याय

बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—पात्र योजना

पात्रों के व्यक्तित्व की प्रस्तुति का काव्य के साथ अभिन्न सम्बन्ध है, क्योंकि यही नाटकीय कथा, घटनाओं और परिस्थितियों को प्रभावोत्पादक बनाती है।

सहृदय सामाजिक को पात्र के चरित्र के अनुसार ही कथा में रस, अलङ्कार, छन्द इत्यादि का ज्ञान होता है। दृश्य काव्य में चाक्षुष होने के कारण पात्रों के भावों के माध्यम से दर्शक वर्ग को प्रत्येक पात्र का स्वभाव ज्ञात होता है और नाटक को देखते समय वे उसमें निमग्न हो जाते हैं।

बालरामायण और प्रसन्नराघव नाटकों में कथा के अनुरूप ही चरित्र चित्रण किया गया है। दोनों नाटकों में सभी पात्रों को तीन भागों में विभाजित किया गया है—

(अ) पुरुष पात्र
(आ) स्त्री पात्र
(इ) सहायक तथा सहायिकायें।

(क) बालरामायणम्—पात्र योजना

बालरामायण नाटक में दस अङ्क की कथा के अन्तर्गत राजशेखर ने ६७ पात्रों की योजना की है। पात्रों की बहुलता इस नाटक की विशेषता है। इस नाटक के सभी पात्र जनमानस के समीप प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि कथा में पात्रों की अधिकता का आभास नहीं होता है। यहाँ सभी पात्रों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है—पुरुषपात्र, स्त्रीपात्र और सहायक तथा सहायिकायें।

बालरामायण में आये सभी पात्रों का चरित्र चित्रण न करके कतिपय प्रमुख पुरुष और स्त्री पात्रों का चरित्र यहाँ पर वर्णित किया जा रहा है तत्पश्चात् अन्य पात्रों का उल्लेख सहायक तथा सहायिकाओं के अन्तर्गत किया जायेगा।

(अ) पुरुष पात्र

इस नाटक में पुरुष पात्रों के अन्तर्गत प्रमुख रूप से राम, रावण, लक्ष्मण, परशुराम, दशरथ, जनक, सुग्रीव, विभीषण, विश्वामित्र इत्यादि का चरित वर्णित हुआ है।

राम

नाटक का नायक धीरोदात्त होता है।[1] राजशेखर ने बालरामायण नाटक के आरम्भ में इस बात का उल्लेख किया है।[2] आचार्य धनञ्जय धीरोदात्त नायक की विशेषतायें बताते हुये कहते हैं कि उसे अभिरम्य गुणों से युक्त प्रतापी, कीर्ति की कामना वाले, उत्साहयुक्त, वेद का रक्षक और प्रख्यात राजा होना चाहिये। विनय, मधुरता, त्याग, दक्षता, प्रियभाषित्व, लोकप्रियता, पवित्रता, कुलीनता, बलबुद्धिविद्या से युक्त आदि युवा नामक सामान्य गुणों[3] के साथ धीरोदात्त नायकों में शोक और क्रोध में एक-सा बना रहना, आत्मप्रशंसा न करना, क्षमा-स्थिरता-दृढ़व्रती होना और स्वाभिमानी होना आदि गुण होते हैं।[4]

नाटक के आरम्भ में ही शुनःशेप नामक पात्र राम को राक्षसों से रक्षा के लिये औषधिस्वरूप बताता है[5] क्योंकि त्रिलोक की रक्षा के लिये राक्षसों का विनाश आवश्यक है। उनकी गुरुभक्ति सर्वविदित है, जब विश्वामित्र उन्हें ताड़का राक्षसी का वध करने की आज्ञा देते हैं तब वे उनका विरोध नहीं करते हैं, क्योंकि स्त्री वध से बचाव के लिये, गुरु की आज्ञा एक बहुत बड़ा कारण थी।[6] राम के अन्दर पितृभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी, क्योंकि वे दशरथ का वेष धारण किये हुये राक्षस की भी अवहेलना नहीं करते। वास्तविकता का ज्ञान होने पर भी वे कहते हैं कि मैंने तो इसे पिताजी की आज्ञा समझकर शिरोधार्य किया है, अब वह यक्ष हो या राक्षस हो चाहे रघुपति पिताजी ही हों अब तो मैं वन में १४ वर्ष बिताकर ही लौटूँगा।[7] उनकी आज्ञा से वन में रहना क्या बड़ी बात है, जहाँ प्रशान्त ऋषियों की सेवा का अवसर मिलेगा, यदि पिताजी कहें तो मैं

---

१. अभिगम्यगुणैर्युक्तो धीरोदात्तः प्रतापवान्।
कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपतिः।
प्रख्यातवंशो राजर्विदिव्यो वा यत्र नायकः।। द. रू. ३/२२-२३

२. धीरोदात्तं जयति चरितं रामनाम्नश्च विष्णोः। बालरा. १/६

३. नेता विनीतो मधुरस्त्यागीदक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।। द. रू. २/१-२

४. महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।। वही, २/४-५

५. राक्षसरक्षौषधं रामभद्रम्। बालरा. १/पृ. १०

६. स्त्री ताटकास्तु तद्घाते गुर्वाज्ञा गुरुकारणम्। वही, ७/८६

७. मया मूर्ध्नि प्रह्वे पितुरिति धृतं शासनमिदं सयक्षो रक्षो वा भवतु भगवान् वा रघुपतिः।
निवर्तिष्ये सोऽहं भरतकृतरक्षां निजपुरीं समाः सम्यङ्नीत्वा वनभुवि चतस्रश्च दश च।।
बालरा. ६/११

अकेले ही पर्वतों के द्वारा पुल बाँधकर, खारे समुद्र में भी सुखपूर्वक विचरण कर सकता हूँ।[1] यहाँ उनका दृढ़व्रत और स्थिरता का गुण दिखायी पड़ता है।

राम अपने सामने बड़ों का अपमान नहीं सह सकते। परशुराम से विनयपूर्वक बात करते हुये वे तभी उनसे युद्ध करने के लिये कहते हैं—जब जनक और विश्वामित्र का परशुराम निरादर करते हैं।[2] उनमें विनम्रता, उत्साह और शौर्य के गुणों का भी समावेश है। वनवास प्रसङ्ग में राम के विनम्रतापूर्वक वन के लिये प्रस्थान करने से मायामय जैसा क्रूर राक्षस भी रो देता है।[3] इस प्रकार शिवधनुष के टूट जाने पर जब परशुराम क्रोधित होते हैं तब राम अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहते हैं कि आप बड़े लोगों की मेरे जैसे मूढ़बुद्धि वालों पर अक्षमा कैसी? तपस्विन् आप देखिये कि मैंने न तो अपने बाहुबल का ध्यान रखा और न ही शिव धनुष के हल्केपन का ध्यान किया इसीलिये यह दोष उत्पन्न हो गया। अतः मेरी इस चंचलता को आप क्षमा करें क्योंकि बड़े तो बच्चों की धृष्टता पर प्रसन्न ही होते हैं।[4] सीता के विरह में रावण किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया था जबकि राम गम्भीरतापूर्वक सेतुबन्ध का उपाय कर रहे थे।[5] रावण के साथ युद्ध के समय राम का शौर्य दिखायी पड़ता है रावण दस धनुषों के दस बाणों से राम को लक्ष्य बनाता था, जबकि राम एक ही धनुष के दस बाणों द्वारा उसके दसों शिरों को काटते थे।[6] पुनः उगने वाले सिर अपनी प्रतिज्ञा का एक-एक अक्षर ही कह पाते थे कि राम पुनः उन्हें काट देते थे।[7]

---

१. तातादेशात् कियदिदमहो यद्वनान्ते निवासो यस्मिन् सेव्याः प्रशमनिधयो धामनिःश्रेयसानाम्।
अप्येकाकी किमु पितृगिरा गाढगूढाचलेन्द्रैर्बद्ध्वा सेतुं लवणजलधौ हेलया सञ्चरामि।।
बालरा. ६/१८

२. रामः—भगवन्! किं पुनरिमाः सर्वंकषा रोषवाचः—वोढा वीरव्रतविधिमयैं यद्गुरुर्व्रीडमेति।।
वही, ४/७१

३. क्रूरक्रमं किमपि राक्षसजातिरेका तत्रापि कार्यपरतेति मयि प्रकर्षः।
रामेण तु प्रवसता पितुराज्ञयैव वाष्पाम्भसामहमपीह कृतो रसज्ञः।। वही, ६/६

४. बाह्वोर्बलं न कलितं न च कार्मुकस्य त्रैयम्बकस्य तनिमा तत एष दोषः।
तच्चापलं परशुराम मम क्षमस्व डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरुणाम्।। वही, ४/६०

५. पुलिनोपरि रचितकुशप्रस्तरोपविष्ट उपोषितश्च भगवन्तं भागीरथीवल्लभमुपास्ते। तत्रच—
सुग्रीवे प्रणयोल्लसाः शशधरे बद्धाभ्यसूयाश्चिरं
साश्चर्याः पवनात्मजे धृतरुषः पौलस्त्यवत्पां दिशि।
सोत्साहाश्च शरासने जलनिधौ क्षुब्धाश्च कृत्स्नां निशां
रामस्याद्य नियन्तुमेव न गता नानारसा दृष्टयः।। वही, ७/१७

६. रघुपतिवदनेन्दौ कार्मुकैः पङ्क्तिसङ्ख्यैर्दश विकिरति बाणान् यातुधानप्रधानः।
दशभिरपि च काण्डैरेककोदण्डवाही प्रहरति दशवक्त्रीं राघवो रावणस्य।। वही, ८/२७

७. लङ्कावीरस्य मायाचयचतुरमतेर्मैथिलीनाथचाप-
व्यापारोद्वान्तबाणव्रणनधृतरुषः स्वां प्रतिज्ञां विवक्षोः।

स्वाभाविक कोमलता से युक्त शृङ्गारपरक चेष्टाओं का भी समावेश मर्यादित रूप में राम में दिखायी पड़ता है। स्वयंवर के समय सीता को देखकर उनके हृदय में ये भावनायें उठी हैं।[1]

इस प्रकार राम में नायक के सभी गुण विद्यमान हैं, किन्तु नायक राम का प्रत्यक्ष दर्शन प्रथम अङ्क में न होकर तृतीय अङ्क में होता है। बालरामायण में राम का चरित्र आदर्श रूप में दिखायी पड़ता है।

रावण

बालरामायण में रावण प्रतिनायक के रूप में दिखायी पड़ता है। प्रतिनायक धीरोद्धात, ईर्ष्या, छद्म, अहंभाव, चञ्चलता, रौद्रता तथा आत्मप्रशंसा इत्यादि दुर्गुणों से युक्त होता है।[2]

रावण को अपनी वीस भुजाओं और दस मस्तक[3], चन्द्रहास तलवार[4] युद्धप्रिय भाई कुम्भकर्ण और पुत्र मेघनाद[5] पर अत्यधिक घमण्ड है। वह इतना अधिक अभिमानी है कि शिवधनुष को उठाकर उसका तिरस्कार करते हुये कहता है कि दुर्धर बाहुदण्डों वाले मुझ लङ्केश्वर की इस घुणजर्जर धनुष को तोड़ डालने में क्या प्रशंसा है?[6] प्रेक्षणक में राम द्वारा सीता का पाणिग्रहण देखकर वह ईर्ष्या के कारण क्रोधित हो जाता

ग्रीवागर्भप्रणालीसरणिसमुचितैकैकवर्णक्रमेण
च्छिन्नोद्भिन्नैर्मुखाब्जैः कथमपि हि गिरामेति पङ्क्तिः समाप्तिम्।। बालरा. ९/४३

१. (क) समन्तात् साभोगं न च कुचविभागाञ्चितमुरो
नितम्बः स्वां लक्ष्मीमभिलषति नाद्यापि लभते।
दृशो लीलामुद्रा स्फुरति च न चातिस्थितिमती
तदस्यास्तारुण्यं प्रथममतीर्णं विजयते।। वही, ३/२१

(ख) वहतु धनुरसङ्गादैक्षवं वैणवं वा प्रहरतु च पृषत्कैः कौसुमैरायसैर्वा।
तदपि मकरकेतुर्मूर्ध्नि धन्वीश्वराणामियमिह युवभावं यावदङ्गीकरोति।। वही, ३/२२

(ग) उत्तालालक भञ्जनानि कबरीपाशेषु शिक्षारसो
दन्तानां परिकर्म नीविनहनं भ्रूलास्ययोग्याग्रहः।
तिर्यग्लोचनवर्तितानि वचसां छेकोक्तिसंक्रान्तयः
स्त्रीणां म्लायति शैशवे प्रतिपलं कोऽप्येष केलिक्रमः।। वही, ३/२३

२. दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः।
धीरोद्धातस्त्वहङ्कारी चलश्चण्डो विकत्थनः।। द. रू. २/५-६

३. यस्यान्तस्तोषपोषं व्यधितदशमुखी विंशतिर्बाहवश्च।। बालरा. १/३३

४. बद्धस्पर्द्धस्तव परशुना लज्जते चन्द्रहासः।। वही, २/३७

५. किञ्चाद्यैव प्रियरणरसो बोध्यते कुम्भकर्णस्तूर्णं जेता स च दिविषदां बोध्यते मेघनादः।। वही, ८/१२

६. सोऽहं दुर्मदवाहुदण्डसचिवो लङ्केश्वरस्तस्य मे।
का श्लाघा घुणजर्जरेण धनुषा कृष्टेन भग्नेन वा।। वही, १/५१

है और हाथों में शस्त्र लेकर दाँत पीसता हुआ खड़ा हो जाता है।[1]

वह राक्षस होने के कारण छद्म वेष धारण करने में और झूठ बोलने में माहिर है तथा युद्ध के समय वह राम को सीता के सम्बन्ध में असत्य सूचना देकर व्याकुल कर देता है। वह विमान में अपने साथ कठपुतली सीता को बैठाकर लाता है और राम से कहता है कि मेरे पार्श्व में बैठी हुई सीता को देखो और अपने उस बालिविजयी बल का भी प्रयोग कर डालो, क्योंकि मेरा यह चन्द्रहास इसका मस्तक कदलीदल के समान काट रहा है।[2] रावण अविवेकी है। जब उसको क्रोध आता है तब वह विवेक और अविवेक का विचार नहीं करता है। राम से युद्ध के समय जब वह आकाश में इन्द्रादि को प्रसन्न होता हुआ देखता है तो उनके ऊपर क्रोधित होता हुआ अपशब्दों का प्रयोग करता है।[3] सम्पूर्ण नाटक में रावण की सारी चेष्टायें सीतानुराग से सम्बद्ध हैं। स्वयंवर के समय सीता के भावी पति के प्रति बैर की भावना[4] इस बात की पुष्टि करती है कि उसके लिये सीता प्राप्ति के बढ़कर और कुछ भी नहीं है वह सीता को देखने के लिये व्याकुल है।[5] उन्मत्तदशानन नामक पाँचवें अङ्क में रावण का सीता के प्रति प्रेम चरम पराकाष्ठा पर दिखायी पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर रावण के विरहोन्माद और अभिमानी रूप को अधिक स्पष्ट करना चाहते थे जिसके कारण पूरे एक अङ्क का नाम ही उन्होंने उन्मत्तदशानन रख दिया। यद्यपि सम्पूर्ण नाटक में रावण

---

१. दृष्ट्वैतां रभसादलीकजनकप्रत्तां मृषा मैथिलीं
हस्ताग्रे नटराघवेण विधृतां रागेण रङ्गाङ्गणे।
उत्ताम्यन्ति रुषा कषायितदृशो देवस्य लङ्कापते-
र्दोर्दण्डा विधृतायुधाश्च वदनान्याकृष्टदंष्ट्राणि च।। बालरा. ३/८५

२. भोः पश्य राम मम पार्श्वगताञ्चसीतां तच्च प्रदर्शय निजं जितबालि वीर्यम्।
अस्याः स एष ननु मूर्धनि चन्द्रहासो रम्भाप्रकाण्डदलनोद्यममातनोति।। वही, ७/७१

३. अपि च रे कपिललोमशबाहो! अहल्याजार।
बाणान् स्यन्दनकेतुयष्टि सुहृदो रामस्य नामाङ्कितान्
दृष्ट्वा वासव! किं दृशां दशशती निःशल्यमुत्फुल्लति।
सद्यस्तापसकामिनोऽस्यविमतेराजौ तु कृत्त्वा शिर-
स्त्वां कारागृहदत्तगाढनिगडं कर्ता प्रगे रावणः।। वही, ८/२६

४. कुर्वन् मौर्वीनिवेशक्रमनमदटनि स्पष्टटङ्कारटङ्कं
शम्भोः कोदण्डदण्डं बधिरितभुवनं भूर्भुवः स्वस्त्रयेऽपि।
यस्तामेनां वरीता रसयतु तदसृक् चन्द्रहासो ममासिः
कण्ठास्थिग्रन्थिशल्कीकरणपटुरटत्कारवाचाटधारः।। वही, १/६१

५. न प्रीते परमेश्वरेऽपि शिरसां छेदेन होमेन वा
ज्यावल्लीनहनेन चामरपतौ द्वारार्गलासङ्गिनि।
संयत्यैलबिलात्तथा न च हृते विश्वातिथौ पुष्पके
द्रष्टव्या जनकात्मजेत्यथ यथा लङ्केश्वरो मोदते।। वही, ५/६

का चरित्र धीरोद्धात रूप में दिखायी पड़ता है। तथापि पञ्चम अङ्क में विशेष रूप से रावण की विरह दशा का वर्णन किया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बालरामायण नाटक में रावण का सम्पूर्ण चरित्र प्रतिनायक के रूप में उभरकर सामने आया है।

लक्ष्मण

रामसम्बन्धी सभी काव्यों में लक्ष्मण का चरित प्रायः राम के अनुज के रूप में वर्णित किया गया है। बालरामायण के अन्तर्गत भी लक्ष्मण की चर्चा इसी रूप में हुई है। ये सदैव राम के साथ ही रहते हैं इसलिये बालरामायण में इनका चरित्र उदात्ततर रूप में दिखाया गया है। वे परशुराम के साथ कलह नहीं करते अपितु जब परशुराम राम को अपना वैष्णव धनुष देते हैं तब वे राम के आगे खड़े होकर स्वयं उसको चढ़ाते हैं[1] यहाँ लक्ष्मण की उदात्तता दिखायी पड़ती है। वह जितने राम के भक्त हैं उतने परिवार में अन्य किसी के नहीं, क्योंकि वनवास के समय वह कहते हैं कि पिताजी अनुचित रूप से स्त्री प्रेम कर रहे हैं, अतः पूज्य होते हुये भी त्याग करने योग्य हैं और कुचरित्र वाली कैकेयी को कहा ही क्या जा सकता है? किन्तु यदि भैया भरत सूर्यवंश में कलङ्क लगा रहे हैं तब तो मैं आज ही गूँजती हुयी प्रत्यञ्चा वाला धनुष सम्भाल रहा हूँ।[2] वनवास के समय वन में लक्ष्मण राम और सीता दोनों की सेवा करते हैं। प्रतिदिन राम के पैर दबाना और चलते समय सीता के आगे नये पल्लव बिछाते हैं जिससे सीता के खून से लथपथ चरण और कष्ट न पायें।[3] इसीलिये राम उन्हें सीता से कहीं अधिक स्नेह से देखा करते थे।[4] धैर्य और गम्भीरता के गुण भी लक्ष्मण में पूर्ण रूप से विराजमान थे, क्योंकि युद्ध के समय राक्षसी सेना को देखकर वानर कुछ

१. (क) धनुर्विभ्रमो मध्यनिविष्टमुष्टिनिवन्धरणत्रिजदण्डम्।
चलति जेप्यनिपतच्चटुलगुणघर्घरोच्छोषम्।। बालरा. ४/७५
(ख) इति वलयितसन्धि आकृष्टस्य धनुषो नरेन्द्रसदनेषु।
रघुकुलविक्रममेकं कथयतीव विदलनटङ्कारः।। वही, ४/७६

२. तातः प्रेम यतः करोत्यनुचितं त्याज्यः स पूज्योऽपि सन्
कैकेय्याः कुचरित्रमित्थमथ चेत्तत्रास्मि कुण्ठक्रमः।
आर्यश्चेद् भरतो विकर्त्तनकुले कर्त्तुं कलङ्कं स्थितो
गुञ्जज्ज्यामुखरं धनुर्ननु मयाऽप्यद्यैव सम्भाव्यते।। वही, ६/१७

३. मुञ्चत्यग्रे किसलयचयं लक्ष्मणो याति सीता पादाम्भोजे विसृजदसृजी तत्र सञ्चारयन्ती। वही, ६/४७

४. ताराप्रेङ्खणपीतबाष्पपयसो यत्नेन सञ्चारिताः
सीतायाः सविधस्थितेषु च मृगद्वन्द्वेषु वीरुत्सु च।
बाले वर्त्मकृते प्रवासिनि जवादुल्लङ्घ्य गम्भीरतां
सौमित्रौ निपतन्ति वत्सलतया पुत्रस्य ते दृष्टयः।। वही, ६/४४

घबरा जाते हैं तब लक्ष्मण कहते हैं कि भद्र! विश्वस्त रहो। अभी हमारे द्वारा शस्त्र उठाने का समय नहीं आया, क्योंकि इस सेना में न तो रावण है न मेघनाद ही।[१] उनमे शूरवीरता का गुण भी पाया जाता है। रावण द्वारा कठपुतली-सीता का शिर काटे जाने पर राम इत्यादि दुःखी तथा चिन्तित हो जाते हैं, परन्तु लक्ष्मण क्रोधपूर्वक रावणवध की प्रतिज्ञा करते हैं।[२]

इस प्रकार बालरामायण में लक्ष्मण का चरित्र उदात्त रूप में दिखायी पड़ता है। एक छोटे भाई में जो गुण होने चाहिये, वे समस्त गुण उनके अन्दर हैं। इसीलिये पिता दशरथ ने भी कहा कि राम और लक्ष्मण दोनों सच्चरित में तुलना योग्य है।[३]

परशुराम

परशुराम को जामदग्न्य या भार्गव भी कहा गया है। राजशेखर ने बालरामायण में मुख्य रूप से इनका धीरोद्धत रूप दिखाया है, किन्तु कहीं-कहीं धीरोदात्त रूप में भी इनके दर्शन होते हैं। प्रायः रामसम्बन्धी नाटकों में राम के साथ ही इनकी कलह वर्णित हुई है। जबकि बालरामायण में रावण के साथ भी परशुराम युद्ध करते हैं।[४] परशुराम धनुर्विद्या में पारङ्गत हैं। यह बाल्यकाल में गणेश तथा स्कन्द आदि के साथ शङ्कर से धनुर्विद्या सीखते हैं।[५] कुठार इनका प्रिय शस्त्र है इसीलिये किसी को ललकारते समय यह अपनें कुठार की ही प्रशंसा करते हैं।[६] यह गुरुभक्त भी हैं।[७] गुरुभक्त होने के साथ ही उनका पितृप्रेम भी प्रसिद्ध है। पिता की आज्ञा पाकर परशुराम माँ रेणुका का सिर

---

१. भद्र, विश्रब्धो भव। नाद्याप्यायुधग्रहणकालः, निर्दशाननानि निर्मेघनादानि च निःसृतानि बलानि। बालरा. ७/पृ. ३१६

२. छन्नात्मना जनकजानिधनेन्धनेन यो दीपितः सपदि नो हृदि शोकवह्निः।
निर्वापयिष्यति पतिस्तमसौ रघूणां त्वत्कामिनीजनविलोचनवारिपूरैः।। वही, ७/७६

३. किमुच्यते सच्चरितेषु रामभद्रस्यान्तेवासी लक्ष्मणः। वही, ६/पृ. २५७

४. नश्यन्नानाविमानाङ्गणमणिवलभीरत्नवातायनेभ्यो
वक्त्रैराकण्ठदृश्यैर्यदमरललना लोलमालोकयन्ति।
यच्चेदं व्योम विद्युत्खचितमिव पुरस्तेन मन्ये किमन्य-
द्वत्साभ्यामाद्रियन्ते शिखिनिचयमुचो देवताः शस्त्रमय्यः।। वही, २/५६

५. देवस्त्र्यम्बक एष वन्द्यचरणो वृन्दैः सुधाभोजिना-
मत्रास्ते स्वशरासनोपनिषदं दातुं धृताचार्यकः।
दूरावर्जितमौलयः सरभसाः सद्यः प्रतीच्छन्त्यमी
हेरम्बेण च षण्मुखेन च समं रामादयः सुव्रताः।। वही, ४/१४

६. मडमडिति मृडानीकान्तचापस्य भङ्क्तुः।
परशुरमरवन्द्यः खण्डयत्यद्य मुण्डम्।। वही, ४/६२

७. येन न्यक्कृतमिन्दुशेखर धनुर्दर्पादनादृत्य मां
स्वर्बन्दीभिरसूयितः स बलवान् पौलस्त्य कस्ते करः? वही, २/४४

काट लेते हैं और तुरन्त ही पुनः जिला देने का वरदान भी माँगते हैं।[1]

क्रोध करने पर परशुराम का धीरोद्धत स्वरूप सामने आता हैं। इनका क्रोध प्रचण्ड होकर रौद्र रूप धारण कर लेता है। शिवधनुष तोड़े जाने पर क्रोधान्ध होकर परशुराम कहते हैं कि शिवधनुष को तोड़ने में जो कर्त्ता और अनुमति देने वाला होगा, उसकी गर्दन काटकर यह रुद्र प्रदत्त कुठार रक्तजल में डुबकियाँ लगायेगा।[2] लक्ष्मण द्वारा विष्णु धनुष चढ़ाये जाने पर परशुराम दूसरा धनुष लेकर राम को युद्ध के लिये ललकारते हैं।[3]

इस प्रकार बालरामायण में परशुराम धीरोद्धत और धीरोदात्त दोनों रूपों में दिखायी पड़ते हैं। राम और रावण से युद्ध के प्रसङ्ग में उनका धीरोद्धत रूप दिखायी पड़ता है, जबकि गुरुभक्ति और पितृभक्ति के प्रसङ्गों में वह धीरोदात्त रूप में दिखायी पड़ते हैं।

दशरथ

महारथ[4] दशरथ सूर्यवंश के यशस्वी सम्राट हैं। यह इन्द्र की सहायता करने के लिये स्वर्ग लोक भी जाते थे, मरणोपरान्त, युद्ध के प्रसङ्ग में जब राम के ऊपर रावण शर प्रहार करता है तब दिव्य दशरथ उस रूप में भी पृथ्वी पर उतरकर उसको मारना चाहते हैं, किन्तु इन्द्र उनको रोक देते हैं।[5] दशरथ ईर्ष्यालु नहीं हैं। परशुराम के शौर्य

---

१. यावद्वरं न वृणुते किल जामदग्न्यस्तुष्टात्पितुः स्वजननीप्रतिजीविताय।
तावच्छिरः पृथगपि स्थितमस्य मातुर्वेगादुपेत्य विदधात्यकबन्धभावम्।। बालरा. ४/३२

२. यः कर्त्ता हरचापदण्डदलने यश्चानुमन्ता ननु
द्रष्टा यश्च परीक्षिता च य इह श्रोता च वक्ता च यः।
सद्यः खण्डितकण्ठपीठवलयः केलिं करिष्यत्ययं
कीलालार्णसि तस्य तस्य परशुर्भर्गप्रसादीकृतः।। वही, ४/५७

३. (क) हर्षोन्मुक्तामृतार्द्रद्युसदनसुमनोदामसम्पर्कजीव-
न्मद्वाणक्षुण्णवीराण्यनणुरणमहाकर्म नर्मायितानि।
वर्त्तन्ता नव्यपत्युत्सुकविबुधवधूवाञ्छितच्छेदखेद-
व्याधूताविद्धपाणिप्रविचलवलयास्फालकोलाहलानि।। वही, ४/८२

(ख) विधाय धरणीबन्धमराममपलक्षणम्।
अनृणो गुरुपादानां गन्तास्मि निजमाश्रमम्।। वही, ४/८३

४. महारथो दशरथः क्ष्माचक्रमाक्रामति। वही, ३/७०

५. दशरथः—कः कोऽत्र? धनुर्धनुः। पुरन्दरप्रसादीकृतसखिभावे सति दशरथे कथमिव रावणो रामभद्रं प्रहरतु।
पुरन्दरः—सखे दशरथ! द्वन्द्वयुद्धमिदं तदनुचितं क्षत्रधर्मस्य दिव्यभावस्य च यदद्वन्द्ववृत्तिरपि शस्त्रं गृहणाति। वही, ६/पृ. ४११

को देखकर वह उनसे ईर्ष्या न करके उन पर प्रसन्न और आश्चर्य चकित होते हैं।[१] दशरथ का हृदय वात्सल्य से ओतप्रोत है। उनको राम का साथ चन्दन के समान शीतल और राम का वियोग दावाग्नि के समान लगता है।[२] इनके लिये राम इत्यादि का वनगमन आग में मालती की कलियों को झुलसाने के समान था।[३] देवताओं और सामाजिक विश्वासों पर उनकी पूर्ण निष्ठा थी। युद्ध में राम की दुरवस्था देखकर दशरथ दघुकुल देवताओं का स्मरण करने लगते हैं।[४] आश्रम व्यवस्था को मानने वाले दशरथ को यही दुःख था कि वह स्वयं तो वृद्ध और उदासीन होकर गृहस्थ बने रह गये तथा राम दुधमुँहे होकर भी वनवासी हो गये, दिलीप के कुल में यह कैसा आचरण परिवर्तन है।[५]

इस प्रकार बालरामायण में दशरथ के चरित्र के सभी पक्ष दिखायी पड़ते हैं। वनवास के प्रसङ्ग में राजशेखर ने दशरथ को निर्दोष दिखाया है। इस घटना को उन्होंने छद्म वेषधारी राक्षस के रूप में दिखाकर अपनी मौलिक कल्पनाशक्ति का परिचय दिया है।

जनक

राजा जनक मिथिला के राजा और सीता के पिता हैं। यह योगी होने के कारण राज्याश्रममहामुनि और राजर्षि भी हैं।[६] रावण का मन्त्री माल्यवान् भी इनको शान्त-दान्त योगी कहता है।[७] राजा जनक धार्मिक व्यक्ति हैं। रावण जब शिवधनुष को उठाता है तब मन में कहते हैं कि भगंवन् रुद्र! कृपया अपने धनुष में समा जाइये, जिससे मेरी बेटी जनककुल का अलङ्कार बने, क्योंकि रावण के त्रिलोक विजयी होने पर भी उसके दामाद होने से हमें लज्जा है।[८] वह ममत्रामय गृहस्थ भी हैं। विदायी के

१. अहो, मनुष्यमुनिषु महाभागधेयो भगवान् भार्गवो यस्य स्वयमेवार्धेन्दुमौलिर्धनुर्वेदविद्याचार्यः। बालरा. ४/पृ. १४७

२. रामस्तु चन्दनं भूत्वा जातो मे दावपावकः। वही ६/३३

३. अहह निष्करुणो विधिः मालतीमुकुलैः कुकूलं कल्पयति। वही, ६/पृ. २६१

४. भगवत्यो रघुकुलदेवताः। दशरथमनुगृह्णीत। भगवन्निन्द्र। गृहाण दम्भोलिमम्भोधरलाञ्छनं धनुर्वा। नन्वेष कवलीक्रियते रामचन्द्रो रावणराहुणा। वही, ८/पृ. ४३३

५. हा रघुकुलचन्द्र रामचन्द्र। कोऽयं दिलीपकुले चरितविपर्यासः।
वृद्धोदशरथः सोऽयमुदास्ते गृहमेधिताम्।
त्वया तु क्षीरकण्ठेन वनवासो निषेव्यते।। वही, ६/३०

६. (क) स खलु राज्याश्रममहामुनिरित्थं समर्थयते। वही, ३/पृ. ६५
(ख) राजर्षे। चिरं दत्तमेवोत्तरम्। वही, १/पृ. २५

७. जनकश्च योगी शान्तो दान्तश्च। वही, १/पृ. १५

८. भगवन् भर्ग! सन्निधित्स्व निजे धनुषि यथा जनककुलालङ्करणं भवति मे वत्सा। जितत्रिजगताऽपि रावणेन जामात्रा वयमपत्रामहे। वही, १/पृ. ३३

समय सीता को समझाते हुये कहते हैं कि पुत्री वैदेहि! गृहपति के पास आने पर उठना, उनके बोलने पर नम्रता, उन्हीं के चरणों पर दृष्टि रखकर बैठना, स्वयं सेवा करना, सोने पर सोना तथा पहले ही चारपाई छोड़ना आदि कुलवधू के सिद्धान्त धर्म पुराने लोग बता गये हैं।[१] सीता को रोते हुये देखकर लज्जा छोड़कर जनक भी रोने लगते हैं।[२]

यद्यपि बालरामायण में जनक सीता स्वयंवर और सीता विवाह के प्रसङ्ग में ही दिखायी पड़ते हैं तथापि उनके चरित्र के सभी गुण नाटक में प्रदर्शित हुये हैं।

सुग्रीव

यह पताका नायक हैं। बालरामायण में राम के अनुचर और भक्त के रूप में दिखायी पड़ते हैं। यह पूर्ण रूप से तो नहीं, किन्तु पर्याप्त रूप में धीरोदात्त चरित्र के भी हैं।[३] यह सभी वानरों के प्रिय हैं वानर इनका चरण-स्पर्श करके प्रणाम करने तथा आज्ञापालन करने में ही प्रसन्न रहते हैं।[४] राम सुग्रीव को प्रेम भरी दृष्टि से देखते हैं।[५] समुद्र के किनारे सभी कपिसेनापति अपना-अपना बल वर्णन करते हैं किन्तु सुग्रीव स्वाभिमानपूर्वक चुप रहते हैं।[६] इन्होंने कुम्भकर्ण के साथ घोर युद्ध किया है। उसकी कांख से छूटकर सुग्रीव उसका सिर पूँछ से पीटकर आकाश में उड़ जाते हैं।[७]

इस प्रकार बालरामायण में पताका नायक के रूप में सुग्रीव का चरित्र चित्रित हुआ है।

---

१. अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता
तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधिः तस्योपचर्या स्वयम्।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति
प्राच्यैः पुत्रि। निवेदिताः कुलवधूसिद्धान्तधर्मा अमी।। बालरा. ४/४३

२. सीते संवृणु वाष्प वारि भवति द्वेधा ममेदं मनो
व्युत्पत्त्याऽपि हि याज्ञवल्क्यगुरुतः संसारभोगे स्थितम्।
किञ्चान्यत्कथयामि मे हृदयतो ह्रीमुद्रया प्रोषितं
विश्वामित्रमहामुनेरपि पुरो यल्लोचने साश्रुणी।। वही, ४/४५

३. पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः।
तस्यैवानुचरो भक्तः किञ्चिदूनश्च तद्गुणैः।। द. रू. २/८

४. वानरेन्द्राः सर्वे सुग्रीवपादप्रणतिप्रणयिनः। बालरा. ७/१२

५. सुग्रीवे प्रणयोल्लसाः दृष्टयः।। वही, ७/७

६. तारास्तनत्रुतिटचन्दनपङ्कलेपमाबद्धकाञ्चनसरोजसहस्रमालम्।
वक्षः प्लवङ्गपतिना विपुलं विलोक्य सम्भावितश्चुलुकपेयपयाः पयोधिः।। वही, ७/२८

७. लूनव्याकीर्णकर्णः खरनखशिखरैरेव शाखामृगेन्द्र-
स्त्वङ्गल्लाङ्गूलयष्ट्या तडतडिति शिरस्ताडयनखं प्रपन्न।। वही, ८/७७

विभीषण

यह राक्षस है और कुम्भकर्ण का अनुज है फिर भी राम के सहायक के रूप में दिखायी पड़ते हैं। बालरामायण में कर्पूरचण्ड नामक वैतालिक सङ्क्षेप में बताता है कि कुम्भकर्ण के छोटे भाई विभीषण ने राम की शरण में आकर अनेक प्रकार से निश्छल स्तुतियाँ कीं, जिससे प्रसन्न होकर राम ने राक्षसों के राजा के रूप में उनका अभिषेक कर दिया।[1] यह परिहासप्रिय भी हैं। समुद्र के प्रकट होने पर जब राम उन्हें रत्नाकर! कहते हुये नमस्कार करते हैं तब यह बोल पड़ते हैं कि यह अमृत के आगार हैं, धन्वन्तरि के सगोत्र हैं, इनकी गङ्गाप्रिय चेष्टाओं के परिणाम शोभाधायक चन्द्रमा हैं इस प्रकार सज्जनों के मन में समुद्र की प्रशंसायें तो लिखी हैं फिर क्या आप ही दामाद होने से लक्ष्मी जनक की प्रशंसा कर रहे हैं।[2] सुग्रीव और विभीषण दोनों को राम से ही राज्यलाभ हुआ। राम इन दोनों को अनुज के समान मानते थे।[3]

इस प्रकार बालरामायण में विभीषण यद्यपि बहुत कम प्रसङ्गों में दिखायी पड़ते हैं। तथापि राम के साथ रहते हैं और रावण वधोपरान्त अयोध्या तक आते हैं।

विश्वामित्र

बालरामायण में विश्वामित्र राम के गुरु के रूप में चित्रित हैं। यह जनक और दशरथ जैसे क्षत्रियों के मित्र है।[4] इनमें उदारता का गुण दिखायी पड़ता है, राम और लक्ष्मण को अग्निदेव से प्राप्त उत्तम धनुर्वेद दे देते हैं।[5] विश्वामित्र को त्रिलोकविश्रुत ऋषि बताया गया है।[6] इनमें राम और लक्ष्मण दोनों के प्रति वात्सल्य का भाव है।

१. नानानिर्व्याजवीर्यस्तुतिशतसदृशं कुम्भकर्णानुजो यद्
द्राग्देवेनाभिशिक्तो रजनिचरमहाराज्यलाभाय तेन।। बालरा. ७/१५

२. रामः—भगवन् रत्नाकर। नमस्ते
विभीषणः
किमुच्यते! ननु निसर्गनिरर्गलः पक्षपातो भवति भागीरथीनाथस्य।
पीयूषाकर एष नित्यममुना धन्वन्तरिः सान्वयो।
गङ्गावल्लभमस्य चेष्टितमयं शोभासुधादीधितिः।
इत्यस्त्येव सतां मनःसु लिखिता सिन्धोः प्रशंसावलि-
र्जामात्रा भवतैव किं पुनरसौ लक्ष्मीगुरुः श्लाघ्यते।। वही, ७/३७

३. रामः—परिष्वजस्वैतौ सीतादेवरौ। वही, १०/४६१

४. तस्य दशरथः सीरध्वजश्चपरं मित्रे। वही, १/पृ. १५

५. साकं लेभे जृम्भकास्त्रैः समन्त्रैर्विश्वामित्रस्तुष्यतो यं कृशाश्वात्।
रामायासौ तं धनुर्वेदमाद्यं प्रीतः प्रादात्त्र सौमित्रये च।। वही, ३/१७

६. क्षत्रब्रह्ममहानिधिःक्षितिभुजां जेता मुनीनाञ्च यः
पाणी यस्य परं पवित्रिततलौ चापस्रुचोर्धारणात्।
विश्वामित्र इति त्रिलोकतिलकं त्वं वेत्सि नास्मद्गुरुं
योऽस्मिंश्चित्रशिखण्डिनां भगवता धात्रा कृतः सप्तमः।। वही, १/२७

अपनी अंगुलियों से राम की ठोड़ी को प्रेम से उठाकर ताड़का का वध करने के लिये कहा।[1] यह ऋषि होने के साथ ही वीर भी थे। रावण का मन्त्री माल्यवान् तक जानता था कि विश्वामित्र व्रतचर्या और वीरव्रतचर्या दोनों में समर्थ हैं।[2] धनुर्विद्या में यह अपने को शङ्कर से गौण नहीं समझते थे, तभी परशुराम से कहते हैं कि तुम्हें पशुपति से दिव्यास्त्र प्राप्त हुये हैं और राम को मुझसे प्राप्त हुये हैं।[3]

इस प्रकार विश्वामित्र राम की उन्नति में सहायक रूप में दिखायी पड़ते हैं।

बालरामायण के अन्तर्गत प्रमुख रूप से आये पुरुष पात्रों का वर्णन करने के पश्चात् प्रमुख स्त्री पात्रों का वर्णन किया जा रहा है।

(आ) स्त्रीपात्र

स्त्रीपात्रों के अन्तर्गत सीता, त्रिजटा और शूर्पणखा इत्यादि प्रमुख रूप से आते हैं जिनका चरित्र चित्रण यहाँ पर किया जा रहा है।

सीता

सीता उत्तम कोटि की स्वकीया नायिका हैं। ऐसी स्त्रियाँ लज्जालु, मृदु, धीर, गम्भीर, स्मितहासिनी, विनीत, कुलीन, दक्ष तथा वत्सल होती हैं।[4]

स्वयंवर में रावण के द्वारा धनुष उठाये जाने पर मन ही मन में कहती हैं कि माँ वसुन्धरे मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। सीता कह रही है कि रावण के धनुष चढ़ाने के पहले मुझे अपने में समा जाने के लिये स्थान दे देना।[5] वह अद्वितीय सुन्दरी हैं, रावण उनको देखकर कहता है यह सच है कि ब्रह्मा का सृष्टिक्रम भी उनके समक्ष नीरस हो गया है।[6] स्वयंवर में सीता को देखकर राम भी सस्पृह हो जाते हैं।[7] यह धीर और गम्भीर भी हैं वनवास के समय कहती हैं कि राजाओं के मान्य पिताजी या इन्द्र के मित्र श्वसुर जी से मेरा क्या प्रयोजन? मेरे प्रिय निवास स्थान पर्वत और वही वन प्रदेश हैं

---

१. स भगवांस्त्रिपताकेन पाणिना चिबुके राममुन्नमय्य निजगाद-
कालरात्रिकरालेयं, स्त्रीति किं विचिकित्ससे?
तज्जगत्त्रितयं त्रातुं, तात ताडय ताडकाम्।। बालरा. ३/५

२. व्रतचर्यया वीरव्रतचर्यया च समर्थः। वही, १/पृ. १६

३. दिव्यास्त्राणां तव पशुपतेरस्य लाभस्तु मत्तः। वही, ४/७०

४. लज्जावती मृदुर्धीरा गम्भीरा स्मितहासिनी।
विनीता कुलजा दक्षा वत्सला योषिदुत्तमा।। ना. द. ४/६

५. अम्ब वसुन्धरे! प्रसीद। सीता विज्ञापयति—प्रथमं मे अन्तरं देहि पश्चाद्रावणो धनुरारोपयतु। बालरा. १/पृ. ३३

६. यत्सत्यं पुनरुक्तवस्तुविरसः सर्गक्रमो वेधसः। वही, २/१७

७. वहतु धनुरसङ्गादैक्षवं वैणवं वा प्रहरतु च पृषत्कैः कौसुमैरायसैर्वा।
तदपि मकरकेतुमूर्ध्नि धन्वीश्वराणामिहमिह युवभावं यावदङ्गीकरोति।। वही, ३/२२

जहाँ कौशल्यापुत्र के चरणों की वन्दना करके आनन्द पा सकूं।[1] दक्षता और त्याग का समन्वय भी सीता में दिखायी पड़ता है। मृगया से राम के वापस आने पर शीघ्र ही अञ्चल से व्यजन करती, मुखमण्डल से धूल पोंछकर और सुस्वादु फलमूलादि राम तथा लक्ष्मण को खिलाकर स्वयं कच्चे तथा नीरस फलफूल खा लेती थी। यहाँ पर सीता का पवित्र गृहिणीत्व रूप दिखायी पड़ता है।[2]

इसके अतिरिक्त सीता में कोमलता[3] पक्षी इत्यादि के प्रति वात्सल्य[4] और स्वावलम्बन[5] इत्यादि गुणों का पूर्ण रूपेण समायोजन दिखायी पड़ता है। उनका चरित्र एक आदर्श चरित्र है।

त्रिजटा

यह राक्षसी होते हुये भी सीता का सदा हित चाहती है। वह सुमुख तथा दुर्मुख नामक पात्रों की सहायता से नरान्तक वध और कुम्भकर्ण को युद्ध के लिये जगाने का समाचार सीता को पहुँचाती है। यह राक्षसों से रक्त सम्बन्ध होने के कारण नरान्तक की मृत्यु पर रोती है।[6] रावण वधनन्तर त्रिजटा सीता के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या भी आयी है। पुष्पक विमान में अयोध्या जाते समय सीता और त्रिजटा के

---

१. किं तातेन नरेन्द्रशेखर शिखालीढाग्रपादेन मे?
किं वा मे श्वशुरेण वासवसभासिंहासनार्धासिना?
उद्देशा गिरयश्च ते वनमही सा चैव मे वल्लभा
कौशल्यातनयस्य यत्र चरणौ वन्दे च नन्दामि च।। बालरा. ६/१८

२. (क) यदास्वाद्यं सीता वितरति तदग्रे स्वगृहिणे सुमित्रापुत्राय प्रणिहितमशेषं च तदनु।
यदामं वा नामं यदनतिरसं यच्च विरसं फलं वा मूलं वा रचयति तु तेन स्वमशनम्।।
वही, ६/४१

(ख) उत्थाय सम्भ्रमवशस्खलितोत्तरीया कृत्वा धनुर्निचुलके मृगयानिवृत्तौ।
सीताऽञ्चलेन तरलेन समुल्लसन्ती रामाननान्नमितपक्ष्मरजः प्रमार्ष्टि।। वही, ६/४२

३. मसृणचरणपातङ्गम्यतां भूः सदर्भा विरचय सिचयान्तं मूर्ध्नि घर्मः कठोरः।
तदिति जनकपुत्री लोचनैरश्रुगर्भैः पथि पथिकवधूभिर्वीक्षिता शिक्षिता च।। वही, ६/३६

४. स्मर्त्तव्यासि चिरं चकोरदयिते दात्यूहि तुभ्यं नमो
दृष्टस्त्वं शितिकण्ठ संहरगिरो गच्छाम्यहं सारिके।
हे लीलाशुक विस्मरिष्यसि न मामेकैकमत्यादरा-
दित्यामन्त्र्य तया विलासवयसां विश्वे वयं रोदिताः।। वही, ६/२७

५. जनकः—वत्से वैदेहि!
अभ्युत्थानमुपागते गृहवतौ तद्भाषणे नम्रता
तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधिः तस्योपचर्या स्वयम्। वही, ४/४३

६. हा वत्स! क्वासि, देहि मे प्रतिवचनम्। भद्र! कथय कीदृशी पुनर्नरान्तकवधे देवानां मुखच्छायासीत्? बालरा. ८/पृ. ३४७

परस्पर वार्तालाप द्वारा इस बात की पुष्टि होती है।[1] इस प्रकार रावण द्वारा अपहरण के पश्चात् त्रिजटा ही अभिन्न सखी के रूप में सीता के साथ रहती है।

शूर्पणखा

यह राक्षसराज रावण की बहिन है। यह राजकार्य का सम्पादन भी करती है। सीताहरण के लिये वह भूमिका बनाती है, क्योंकि जब वह कटी नाक और अवगुण्ठन वाली होकर रावण के समीप आती है तो उसको देखकर रावण क्रोधित होकर कहता है कि राम के विनाश के दो कारण हो गये—सीता और सूपर्णखा।[2] वह छद्म वेश में कैकेयी का रूप धारण करके राम वनवास की योजना में छद्म दशरथ का साथ देती है।[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि बालरामायण में शूर्पणखा का चरित्र कतिपय प्रसङ्गों में दिखायी पड़ता है तथापि उसमें सक्रियता दिखायी पड़ती है।

बालरामायण में उपर्युक्त तीनो स्त्री पात्रों के अतिरिक्त अन्य स्त्री पात्र सहायिकाओं के रूप में चित्रित हुयी हैं।

(ई) सहायक तथा सहायिकायें

बालरामायण नाटक में राजशेखर ने अनेक पात्रों की योजना की है जो देवता, मनुष्य, राक्षस, पक्षी, ऋषि इत्यादि वर्गों के अन्तर्गत आते हैं।

प्रमुख पुरुष पात्रों के अतिरिक्त अन्य सभी पुरुष पात्र सहायकों की श्रेणी में आते हैं और इसी प्रकार प्रमुख स्त्री पात्रों के अतिरिक्त अन्य सभी स्त्री पात्र सहायिकाओं की श्रेणी में आती है। ये सभी कथा को आगे बढ़ाने में सहायता करते हैं।

अगस्त्य ऋषि महाज्ञानी हैं और समुद्र के पानकर्ता तथा राक्षसों के विनाशकर्ता हैं। वसिष्ठ और वामदेव दशरथ के पुराहित ऋषियों के रूप में चित्रित हुये हैं। शतानन्द जनक के पुरोहित ऋषि है। सीता-स्वयंवर और सीता विवाह में वह दिखायी पड़ते हैं। ऋचीक ऋषि परशुराम के पितामह हैं जबकि पुलस्त्य ऋषि रावण के पितामह हैं। माठर परशुराम का शिष्य है।

हनुमान के चरित्र में राम के प्रति अटूट भक्ति के दर्शन होते हैं। दधित्थ और कपित्थ दो वानर हैं जिनका सेतु निर्माण में विशेष सहयोग प्राप्त होता है। सुमुख और

---

१. त्रिजटा—इयं नर्मदा दृश्यते।
सीता—इतोऽस्माकमार्यसुमन्त्रो निवृत्तः। बालरा. १०/पृ. ४७६

२. रावणः—अये दाशरथिविनाशाय कारणद्वयी सम्पन्ना सीता शूर्पणखा च। वही, ५/पृ. १७३

३. ततश्च यावन् मायाकैकेयी शूर्पणखा मायादशरथो मायामयश्च यथास्थानमुपविष्टौ। वही, ६/पृ. १७७

दुर्मुख राक्षसों के दूत हैं जो त्रिजटा को युद्ध का समाचार देते हैं। करङ्कक और कङ्कालक भी इसी कार्य के लिये नियुक्त हैं जो रावण को युद्ध का समस्त वृत्तान्त सुनाते हैं।

सिंहनाद, कुम्भकर्ण और मेघनाद वीर राक्षस हैं तथा राक्षस परिवार के प्रमुख सदस्यों में से हैं। सिंहनाद रावण का पुत्र है और राम के द्वारा मारा जाता है। इसी प्रकार कुम्भकर्ण और मेघनाद की मृत्यु राम और लक्ष्मण के द्वारा होती है।

माल्यवान् रावण का कनिष्ठ मातामह और मन्त्री है जो रावण के चतुरतापूर्ण मन्त्रीपद का भार सहानुभूतिपूर्वक निभाता था। मायामय सबसे अधिक विश्वासपात्र गुप्तचर है। रावण, मायामय को ही परशुराम के पास कुठार माँगने के लिये भेजता है।

कतिपय पात्रों का उल्लेख केवल घटना का निर्देश करने के रूप में दिखाया गया है। जैसे शुनःशेप और तापस, भृङ्गिरिटि तथा नारद, गृध्रमिथुन, चित्रशिखण्ड और उसकी पत्नी सुवेगा, उपाध्याय, सुमन्त्र तथा रत्नशिखण्ड, यमपुरुष इत्यादि।

परिचारक वर्ग के अन्तर्गत प्रहस्त और प्रतीहार आते हैं। कर्पूरचण्ड और चन्दनचण्ड वैतालिक हैं जो प्रहरों की सूचना आश्रयदाता के यशोगान के साथ देते हैं। बन्दी माध्यन्दिन सन्ध्या और प्रभात की सूचना देता है।

समुद्र का वर्णन सेतुबन्ध के समय किया गया है। मातलि इन्द्र के रथ का सारथि है। पुरुहूत देवराज इन्द्र का ही नाम है वे राम और रावण का युद्ध स्वर्ग से देखते हैं। चिगुप्त देव हैं वे लङ्का का लेखपट्ट लिखते हैं। शत्रुघ्न और भरत, राम के अनुज हैं। पुष्पक कुबेर का विमान है।

बालरामायण में स्त्री पात्रों का भी बाहुल्य है। कैकयी, दशरथ की पत्नी और भरत की माता है। उसके चरित्र की विशेषता है कि राम वनवास के लिये उसको भी दशरथ की भाँति निर्दोष दिखाया गया है। इसी प्रकार राम की माता के रूप में कौशल्या और सुमित्रा का भी चित्रण हुआ है। लोपामुद्रा साध्वी है और अगस्त्य की पत्नी हैं। गंगा और यमुना नदियों को समुद्र की पत्नियों के रूप में दिखाया है। इसी प्रकार राजशेखर ने लङ्का और अलका नगरियों का भी मानवीकरण कर दिया है। लङ्का रावण की मृत्यु पर दुःख प्रकट करती हुई आत्महत्या करने के लिये उद्यत होती है, परन्तु अलका उसको सान्त्वना देकर समझाती है। सीता की दो नामरहित सखियाँ उनके साथ रहती हैं। हेमप्रभा भी उनकी प्रिय सखी है। सौदामिनी इन्द्र के रथ में चामरधारिणी के रूप में है। सिन्दूरिका कठपुतली-सीता की सखी है। प्रभञ्जनिका रावण की परिचारिका है।

बालरामायण नाटक में उपर्युक्त सभी पात्रों का प्रयोग कथानक में समन्वय और संगति के लिये आवश्यक प्रतीत होता है। इनके पात्रों द्वारा कथानक में नूतन प्रसङ्गों

की कल्पना करके नाटक को रोचक बना दिया गया है, क्योंकि इसमें कतिपय पात्रों की रचना राजशेखर द्वारा कल्पित है।

(ख) प्रसन्नराघवम्—पात्र योजना

प्रसन्नराघव नाटक में सात अङ्कों की कथा के अन्तर्गत जयदेव ने ३२ पात्रों की योजना की है। सभी पात्रों का चरित्र चित्रण करने में जयदेव पूर्ण रूप से सफल हुये हैं। प्रसन्नराघव के पात्रों को भी तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है—

(अ) पुरुषपात्र
(आ) स्त्रीपात्र
(इ) सहायक तथा सहायिकायें

(अ) पुरुषपात्र

पुरुष पात्रों के अन्तर्गत राम, रावण, लक्ष्मण और परशुराम इत्यादि प्रमुख पात्रों का चरित्र वर्णित किया जा रहा है।

राम

राम धीरोदात्तगुण से सम्पन्न उत्तम प्रकृति वाले हैं। धीरोदात्त नायक के सभी गुण उनमें विद्यमान हैं। राम सकलगुणों के आश्रयभूत हैं और समस्त लोगों के हृदय को आह्लादित करने वाले हैं।[1] यही कारण है कि सरस्वती भी उनके गुणों के समूह की प्रशंसा रूपी अमृतमय बावली में स्नान करके ही स्वर्ग से आने की अपनी थकान को मिटा पाती है।[2] अधिकतर कवि राम को ही अपने काव्य का विषय बनाते हैं। इसमें कवियों का क्या दोष है? यह तो राम के गुणों का ही प्रभाव है।[3]

राम का सर्वप्रथम दर्शन द्वितीय अङ्क में होता है। वहाँ वे एक सरस युवक की भाँति प्रतीत होते हैं। इस अवस्था में भी उनके स्वभाव में उच्छृङ्खलता न होकर शीलता और सज्जनता दिखायी पड़ती है। राम विनम्र स्वभाव वाले हैं इसलिये शिवधनुष के टूटने पर जब परशुराम, राम पर क्रोधित होते हैं और उनको युद्ध के लिये ललकारते हैं तब भी वे परशुराम जी को अनुनय-विनय से ही शान्त करने की चेष्टा करते हैं।[4] किन्तु जब परशुराम विश्वामित्र, शतानन्द इत्यादि का तिरस्कार करते

१. चन्द्रे च रामचन्द्रे च नारीणां च दृगञ्चले।
नीलोत्पलसुहृत्कान्तौ कस्य नाऽऽमोदते मनः।। प्रसन्नरा. १/१०

२. झटिति जगतीमागच्छन्त्याः पितामहविष्टपान् महति पथि यो देव्या वाचः श्रमः समजायत।
अपि कथमसौ मुञ्चेदेनं न चेदवगाहते रघुपतिगुणग्रामश्लाघासुधामयदीर्घिकाम्।। वही, १/११

३. स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयतां कवीनां को दोषः? स तु गुणगणानामवगुणः।
यदेतैर्निश्शेषैरपरगुणलुब्धैरिव जगत्यसावेकश्चक्रे सततसुखसंवासवसतिः।। वही, १/१२

४. हारः कण्ठं विशतु यदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः

हैं तब राम अपने वीर भाव को प्रकट करते हुये कहते हैं कि गुरुओं का तिरस्कार मेरे लिये असह्य है और फिर वह परशुराम के साथ युद्ध के लिये तैयार हो जाते हैं।[1] अन्त में जब पराजित होकर परशुराम राम की प्रशंसा करने लगते हैं[2] तब राम लज्जित होते हुये परशुराम से क्षमा माँगते हैं[3] और अपनी धीरोदात्तता का परिचय देते हैं।

राम आदर्श पितृभक्त हैं, वनवास की आज्ञा मिलने पर प्रसन्न मन से पिता के चरणों में प्रणाम करके वन को चले जाते हैं।[4]

राम भ्रातृप्रेमी भी हैं। युद्ध के समय रावण की शक्ति लगने से जब लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं तब वह अपने जीवन को समाप्त कर देने का निश्चय कर लेते हैं।[5] सीता का हरण हो जाने पर राम उनके वियोग में विक्षिप्त से हो जाते हैं। वह चन्द्र चकोर-भ्रमर इत्यादि से उनका पता पूछते हैं, सीता के विना जैसे सारा संसार ही विपरीत हो गया है।[6]

इस प्रकार राम के चरित्र में हमें एक आदर्शपुत्र, भाई और पति के अतिरिक्त विनम्रता, धैर्य, वीरता इत्यादि सभी गुण दिखायी पड़ते हैं।

रावण

यहाँ रावण प्रतिनायक है और धीरोद्धत रूप में चित्रित हुआ है। उसमें अभिमान, छलकपट, आत्मप्रशंसा इत्यादि दुर्गुणों का समावेश है। सीता स्वयंवर में वह पहले तो

स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु नः कज्जलं वा जलं वा।
सम्पश्यामो ध्रुवमिह सुखं प्रेतभर्त्तुर्मुखं वा
यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः।। प्रसन्नरा. ४/२३

१. तत्कोदण्डं कुलिशकठिनं भग्नमेतेन भग्नं
मग्नं शल्यं तव हृदि महन्मग्नमेतावता किम्।
त्रैयक्षं वा भवतु, यदि वा नाम नारायणीयं
नैतत किञ्चिद् गणयति स मे दुर्मदो दोर्विलासः।। वही, ४/३६

२. कमलबन्धुविलोचन! यस्त्वया स्वमहिमोन्नमनैरधरीकृतः।
न किमसावधरीकुरुते नरस्त्रिदशकोटिकिरीटमणीनपि।। वही, ४/४६

३. चण्डमेवकिल तिग्मरोचिषः सौम्यमेव किल शीतरोचिषः।
चण्डसौम्यमिति कौतुकावहं नौमि तावकमहं महन्महः।। वही, ४/४७

४. इतीदं कैकेय्या वचनमधिगम्याऽऽकुलमतेः
पितुः पादौ नत्वा मुदितहृदयोऽसौ वनमगात्।। वही, ५/४

५. हा वत्स! लक्ष्मण! विकासय नेत्रपद्मे मा गादिदं युगपदेव समस्तमस्तम्
भाग्यं दिवाकरकुलस्य च, जीवितं च रामस्य किञ्च नयनाञ्जनमूर्मिलायाः।। वही, ७/३०

६. हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः सरिद्वीचीवातः कुपितफणिनिः श्वासपवनः।
नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनं मम त्वद्विश्लेषात्सुमुखि विपरीतं जगदिदम्।।
वही, ६/४३

छद्म वेश में आता है और वाद में वास्तविक रूप में आ जाता है।[1] इसी प्रकार वह सीताहरण करने के लिये भी भिक्षु रूप में उपस्थित होता है और वाद में वास्तविक रूप में प्रकट हो जाता है।[2] वह त्रिलोकी का अद्‌भुत योद्धा भी है। उसने अनेक बार देवताओं को परास्त किया है।[3] राम-रावण के युद्ध में किसकी विजय होगी यह निर्णय कर पाना कठिन है।[4] यह रावण की वीरता ही है कि राम भी उसे त्रिलोकी का अनुपम योद्धा मानते हैं।[5]

इस प्रकार रावण के स्वभाव में धीरोद्धत नायक के सभी गुण विद्यमान हैं। प्रतिनायक के रूप में रावण का चरित्र निखर कर सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रसन्नराघव में दिखायी पड़ता है।

लक्ष्मण

लक्ष्मण राजा दशरथ के पुत्र और राम के छोटे भाई हैं। उनमें सच्चाई, बलिदान और वीरता के गुणों का समन्वय दिखायी पड़ता है। वह सदैव राम के साथ ही रहते हैं। उनका वाक्‌चातुर्य देखकर परशुराम भी आश्चर्यचकित और प्रसन्न हो जाते हैं।[6] उनमें भ्रातृप्रेम की भावना भी दिखायी पड़ती है, वनवास के समय जब राम उनको साथ जाने के लिये मना करते हैं तब वह कहते हैं कि आपके विना चौदह वर्ष मेरे लिये मन्वन्तर के समान हैं।[7] वह अद्वितीय वीर हैं और शरणागत की रक्षा करने का गुण बड़े भाई राम के समान उनमें भी विद्यमान है। युद्ध के समय जब रावण विभीषण पर शक्ति छोड़ता है तब लक्ष्मण उस शक्ति को आगे बढ़कर स्वयं अपनी छाती पर झेल लेते हैं।[8] यहाँ पर यद्यपि विभीषण राक्षस है तथापि वह राम की शरण में आया है।

१. मन्दाकिनी-कनकपदम-बिसाङ्कुराणां किञ्चोग्रदिग्गजलसद्दशनाङ्कुराणाम्।
उन्मूलनैरलमनीयत शैशवं यैस्तेऽमी भुजा मम निजाः प्रकटीभवन्तु।। प्रसन्नरा. १/४३

२. भिक्षुः सोऽपि क्षणार्धान्मणिखचितचलत्कुण्डलश्रेणिशोभा-
वीचीखेलत्कपोलस्फुरितदशशिराः कुम्भकर्णाग्रजोऽभूत।। वही, ५/४३

३. अङ्गं लिम्पति चन्दनेन मृदुभिः शीतद्युतिः स्वैः करैः
किञ्चिच्चञ्चलतालवृन्तकलनव्यग्रो वसन्तानिलः।
किं चायं नलिनीदलैर्वितनुते तल्पं प्रतीचीपति-
र्देवैरित्थमनङ्गतप्तहृदयो लङ्केश्वरः सेव्यते।। वही, ७/७

४. तुलाधिरोहः खल्वयं वीरलक्ष्म्याः। यन्नाम रामरावणयोः समर इति। वही, ७/पृ. ३६२

५. अये तदिदं विमानरत्नं यत्किल त्रिभुवनैकवीरः कुबेरानुजः कुबेरादाजहार। वही, ७/पृ. ३६४

६. अहो, अस्य क्षत्रियवटोर्वाक्परिपाटीपाटवम्। वही, ४/पृ. २०८

७. त्वया समं मे चत्वारि यामा एव युगान्यपि।
चतुर्दश समाः स्थातुं विना मन्वन्तराणि।। वही, ५/८

८. येयं विभीषणे शक्तिर्मुक्ता क्रूरेण रक्षसा।
लक्ष्मणेन गृहीतेयं प्रियेव निजवक्षसा।। वही, ७/२८

इसलिये उसकी रक्षा करना उनका धर्म है, यहाँ पर उनमें राम के प्रति प्रेम और शरणागत की रक्षा करने का गुण दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार लक्ष्मण का चरित्र एक आदर्श चरित्र है। जो प्रसन्नराघव में उभर कर सामने आया है।

परशुराम

परशुराम का आगमन प्रसन्नराघव नाटक में झंझावात के समान प्रतीत होता है। उनमें क्रोध, वीरता, गुरुभक्ति और वत्सलता इत्यादि गुणों का समावेश है।

इन्होंने योद्धा के रूप में इक्कीस बार पृथ्वी पर से क्षत्रियों का विनाश किया था।[१] अपने गुरु के प्रति वह पूरी तरह से समर्पित हैं। शिव धनुष टूटने का समाचार सुनकर वह क्रोधित होकर स्वयंवर में पहुँचकर वहाँ उपस्थित राम सहित सभी क्षत्रियों को युद्ध के लिये ललकारते हैं।[२] लक्ष्मण के व्यङ्ग्य भरे वचनों को सुनकर उनका क्रोध और बढ़ जाता है। वह राम से कहते हैं कि क्या क्षत्रिय जाति से गर्वीले होकर ब्राह्मणजाति को तृण के समान समझते हो? तो यह निर्णय संग्राम द्वारा ही होगा।[३] किन्तु जब उनको यह विश्वास हो जाता है कि राम नारायण के अवतार हैं तब वह प्रसन्न हो जाते हैं और राम को आशीर्वाद[४] देकर पुनः तपस्या करने के लिये चले जाते हैं तभी प्रथम बार में ही उनके दर्शन करके लक्ष्मण उनको वीर और शान्त रस का विकार बतलाते हैं।[५]

प्रसन्नराघव नाटक में पुरुष पात्रों के अन्तर्गत राम और रावण के पश्चात् परशुराम का चरित्र अधिक महत्त्वपूर्ण रूप से दिखायी पड़ता है। नाटक के सम्पूर्ण चतुर्थ अङ्क में परशुराम का चरित्र वर्णित किया गया है। इनका चरित्र वीर रस से परिपूर्ण है।

---

१. कृत्वा त्रिःसप्तकृत्वः समिति विशसनं पूर्वमुर्वीपतीनां
कृत्वान्यत्सप्तकृत्वः पुनरपि कदनं दुर्मदानां नृपाणाम्।
निर्माय क्ष्मापतीनां प्रतिसमरहृतैरुत्तमैरुत्तमाङ्गैः-
कापालीमक्षमालां झटिति भगवतो भैरवस्यार्पयामि।। प्रसन्नरा. ४/३४

२. किं नाम वाग्डम्बरपण्डितेषु युष्मासु वाणीः प्रचराः प्रयुञ्जे।
बाणान रिपुप्राणहरान्मदीयान् सर्वेऽपि यूयं सहिताः सहध्वम्।। वही, ४/३६

३. कथं क्षत्रियजातिगर्वितो ब्राह्मणजातिं तृणायमन्यसे। तदिदानीमावयोः का गरीयसीति सङ्ग्रामतुलैव निर्णेष्यते। वही, ४/पृ. २०४

४. यशः पूरं दूरं तनु सुतनुनेत्रोत्पलवनीतमस्तन्द्राचण्डातप! तप सहस्राणि शरदाम्।
इयं चास्तां युष्मच्छरशमितलङ्केश्वरशिरःश्रितोत्सङ्गा नन्दतुसुरनरभुजङ्गा त्रिजगती।।
वही, ४/४८

५. तद्वीरशान्तरसयोः किमयं विकारः? वही, ४/१५

इस प्रकार प्रसन्नराघव के अन्तर्गत प्रमुख रूप से आये पुरुष पात्रों का अध्ययन करने के पश्चात् प्रमुख स्त्री पात्रों का चरित्र वर्णित किया जायेगा।

(आ) स्त्रीपात्र

प्रसन्नराघव की कथा में यद्यपि अनेक स्त्रीपात्रों का उल्लेख किया गया है तथापि प्रमुख रूप में सीता और त्रिजटा का ही उल्लेख नाटक में दिखायी पड़ता है।

सीता

सीता स्वीया मुग्धा नायिका हैं। यह पृथ्वी से उत्पन्न होने के कारण अयोनिजा कहलाती हैं। विश्वामित्र जनक से कहते हैं कि आप पृथ्वी प्रसूत कन्या सीता के कारण ही आप पृथ्वीपति हैं।[१] सीता उपवन की रमणीयता देखकर मुग्ध हो जाती है।[२] वहीं सहकारपादप और वासन्तीलता के समीप जब राम के दर्शन उन्हें हुये तो वह कवित्वमय वाणी में उनके सौन्दर्य का वर्णन करती हैं।[३] उनमें भावुकता और कोमलता का गुण भी है साथ ही अपने विशुद्ध प्रेम के लिये त्याग और बलिदान करना भी जानती हैं इसीलिये नारी जगत् को साध्वी सती स्त्री के आचरण की शिक्षा देती हुयी राम के पीछे-पीछे वन को जाती हैं।[४] सीता जी की करुणा, प्रेम, नम्रता, त्याग, क्षमाशीलता और उदारता इत्यादि गुणों के कारण वे अरण्यप्रदेश चिरकाल के लिये परमपवित्र और मनोरम हो गये। खेतों में यव के छोटे-छोटे पौधों को सीता बड़ी दया के साथ उखाड़ती हैं।[५] वह सद्गृहिणी के कर्तव्य का बड़ी उदारता के साथ पालन करती हैं।[६] राम पर उनका दृढ़ और सच्चा विश्वास है तभी अपहरण के समय भी वह केवल राम को ही पुकारती हैं।[७]

---

१. अवनिमवनिपालाः सङ्घशः पालयन्तामवनिपतियशस्तु त्वां विना नापरस्य।
जनक! कनकगौरीं यत्प्रसूता तनूजां जगति दुहितृमन्तं भूर्भवन्तं वितेने।। प्रसन्नरा. ३/१३

२. सीता—हला! पश्य पश्य, अद्येदमुद्यानं वसन्तसहचरेण स्वयमेव मन्मथेनाऽलङ्कृतमिवातिमात्रं रमणीयं प्रतिभाति। वही २/पृ. ११३

३. विकसितपेशलोत्पलपलाशपुञ्जश्यामलो महेशसौम्यशेखरस्फुरत्सोम-कोमलः।
लतागृहे कोऽयमनङ्गरूप-खण्डनो विलोचनयोर्ददाति मे सुखं शिखण्डमण्डनः।।
वही, २/२१

४. गहनविपिनवासोत्कण्ठया सम्प्रयातं प्रियतममनुयान्त्या तत्क्षणं राजपुत्र्या।
चरणकमलगुञ्जन्मञ्जुमञ्जीरशब्दैः स्फुटतरमुपदिष्टा बान्धवाः साधु वृत्तम्।। वही, ५/१३

५. केदारसीम्नि सदयं च यवप्ररोहमादाय साधु विदधे श्रवणावतंसम्।। वही, ५/२३

६. प्रत्यासन्ने भवति निलये सम्प्रयाता पुरस्तात्तूर्णं क्षिप्तैः कतिपयपदैश्चापमादाय हस्तात्।
श्रान्तं कान्तं नवकिसलयैः सानुजं वीजयन्ती जाता सीता समुचितविधिप्रक्रियावैजयन्ती।।
वही, ५/२६

७. हा राम! हा रमण! हा जगदेकवीर!
हा नाथ! हा रघुपते! किमुपेक्षसे माम्।। वही, ५/४५

सीता का स्वाभिमान, पतिव्रतधर्म की दृढ़निष्ठा और आत्मबल इत्यादि सभी गुण उस समय देदीप्यमान हो उठते हैं जब रावण सीता को राजी करने में असफल हो जाता है। अन्त में वह उनको अपने चन्द्रहास खड्ग से मारने की धमकी देता है तो सीता उसको ओजपूर्ण शब्दों में तिरस्कारपूर्ण उत्तर देती है।[१]

इस प्रकार प्रसन्नराघव में सीता का चरित उदात्त रूप में दिखायी पड़ता है जो सदैव नारी जाति के सामने एक आदर्श रूप में उपस्थित होकर उन्हें कर्तव्यपालन की शिक्षा देता रहेगा।

त्रिजटा

यह राक्षसी है और सीता की अभिन्न सखी है। जब लङ्का में सीता अपने स्वप्न के विषय में त्रिजटा को बताती है तब वह कहती है कि यह सुख सूचक स्वप्न है।[२] त्रिजटा सीता के प्रति रावण की आसक्ति को अच्छा नहीं मानती है इसीलिये वह रावण की याचना को प्रलाप की संज्ञा देती है।[३] किन्तु दूसरी ओर वह रावण के प्रति सहानुभूति भी रखती है। जब अक्षयकुमार का कटा हुआ सिर देखकर रावण मूर्च्छित हो जाता है तब वह उसे आश्वस्त भी करती है।[४]

वह सीता को भी आश्वस्त करती है।[५] वह सीता को हनुमान और रावण पुत्र मेघनाद का युद्ध६ और हनुमान द्वारा लङ्का को जलाने[७] का प्रसङ्ग बताती है।

उपर्युक्त प्रसङ्गों में ही त्रिजटा का चरित्र वर्णित हुआ है प्रसन्नराघव के षष्ठ अङ्क के अन्तर्गत त्रिजटा दिखायी पड़ती है।

यद्यपि प्रसन्नराघव नाटक में जयदेव ने कथानक के अनुसार अन्य स्त्री पात्रों का उल्लेख भी किया है तथापि प्रमुख रूप से नायिका सीता और उनकी सखी त्रिजटा की चर्चा हुयी है।

(इ) सहायक तथा सहायिकायें

प्रसन्नराघव नाटक में जयदेव ने सभी पात्रों की योजना मनुष्य, राक्षस, नदी

१. विरम विरम रक्षः किंमुधा जल्पितेन स्पृशति नहि मदीय कण्ठसीमानमन्यः।
रघुपति—भुजदण्डादुत्पलश्यामकान्तेर्दशमुख। भवदीयान्निष्कृपाद्वा कृपाणात्।।
प्रसन्नरा. ६/३०

२. त्रिजटा—तर्हि बर्द्धसे। सुखस्वप्नः खल्वसौ। वही, ६/पृ. ३२३

३. जानकि! एवं प्रलापिनि लङ्केश्वरे कर्णावधानमपि। वही, ६/पृ. ३२८

४. त्रिजटा—अयि लङ्केश्वर! समाश्वसिहि समाश्वसिहि। वही, ६/पृ. ३३७

५. हिमकरकिरणकरम्बितमरकतमयपीनपट्टकप्रतिमे।
मलयजपरागरजसि रामोरसि तापमपहरसि।। वही, ६/३४

६. बाणौघानेषवीरः कलयति च रुषा मेघनादेन मुक्तान्। वही, ६/पृ. ३५२

७. क्रामन्नट्टालिकानामुपरि कृतपदो दन्दहीत्येष लङ्कां। वही, ६/पृ. ३५३

इत्यादि के रूप में की है। प्रमुख पुरुष और प्रमुख स्त्री पात्रों को छोड़कर कथानक में आये अन्य पात्र सहायक और सहायिकाओं की श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

विश्वामित्र महर्षि हैं और राम तथा लक्ष्मण के गुरु भी हैं। सीतास्वयंवर में राम, लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ उपस्थित होते हैं। उनकी आज्ञा से ही राम धनुर्भङ्ग करते हैं। जनक मिथिला के अधिपति हैं, वह सीता के पिता और राम के श्वसुर के रूप में दिखायी पड़ते हैं। शतानन्द जनक के पुरोहित हैं जो विदायी के समय सीता को उपदेश देते हैं। दाल्भ्यायन, याज्ञवल्क्य के शिष्य हैं वह मञ्जीरक और नूपुरक नामक दोनों पात्र जो कि स्तुतिपाठक हैं के साथ हुये भ्रमर वृत्तान्त को अपने गुरु को बताने का कार्य करते हैं। ताण्डयायन, शतानन्द के शिष्य के रूप में हैं। बाणासुर दैत्यराज बालि का पुत्र है वह सीता स्वयंवर में रावण के साथ परस्पर क्रोध पूर्ण वार्तालाप करता है। सागर नदियों का पति है जो सेतुबन्ध में राम की सहायता करता है। रत्नशेखर ऐन्द्रजालिक है और लक्ष्मण का मित्र है वह सीता के वियोग में दुःखी राम को लङ्का में सीता से सम्बन्धित घटना इन्द्रजाल के माध्यम से दिखाता है। सुग्रीव वानरों का अधिपति और राम का सखा है वह कथा का पताकानायक है। हनुमान वानरराज सुग्रीव के मन्त्री हैं और राम के भक्त हैं सीता की खोज यही करते हैं इसीलिये राम की इन पर विशेष अनुकम्पा रहती है। माल्यवान् राक्षस है और रावण का मन्त्री है। विभीषण रावण का अनुज है, यह राक्षस होने पर भी राम की शरण में आता है। करालक माल्यवान् का सेवक है। प्रहस्त रावण का सचिव है। विद्याधर देवयोनि विशेष का व्यक्ति है जो युद्ध का वर्णन करता है। तापस और भिक्षु रावण के सेवक हैं और छद्मवेश धारण करने में दक्ष हैं। कुब्जक और वामन जनक के अन्तःपुर में सेवक हैं और परस्पर हास्यपूर्ण वार्तालाप करते हैं।

गङ्गा, यमुना, सरयू, गोदावरी और तुङ्गभद्रा नदियों के परस्पर वार्तालाप द्वारा राम वनवास से लेकर सीता अपहरण तक की कथा ज्ञात होती है, क्योंकि ये सभी वृत्तान्त इनके वार्तालाप द्वारा ही पता चलते हैं। मन्दोदरी रावण की विवाहिता पत्नी है जो राम द्वारा सेतु पर पुल बाँधने का समाचार सुनकर रावण के लिये चिन्तित हो जाती है। विद्याधरी, विद्याधर की पत्नी है जो विद्याधर के साथ मिलकर युद्ध का वर्णन करती है। इसके अतिरिक्त सीता की एक सखी भी है जो स्वयंवर से पूर्व सीता के साथ रहती है।

उपर्युक्त सभी पात्रों का प्रयोग जयदेव ने कथानक को आगे बढ़ाने और उसमें रोचकता उत्पन्न करने के लिये किया है। कतिपय पात्रों की कल्पना उन्होंने स्वयं की है।

बालरामायण तथा प्रसन्नराघव नाटकों में कथानक के अनुसार पात्रों की योजना की गयी है। दोनों ही नाटकों के नायक राम हैं।

बालरामायण में इसी कथा को दस अङ्कों में निबद्ध करके राजशेखर ने ६७ पात्रों की योजना की है जबकि प्रसन्नराघव में यही कथा सात अङ्कों में निबद्ध है और जयदेव ने ३२ पात्रों की योजना की है।

वीर रस प्रधान होने के कारण बालरामायण के पात्रों में वीरता का पुट दिखायी देता है जबकि शृङ्गाररस प्रधान होने के कारण प्रसन्नराघव नाटक के पात्रों में प्रधानतया माधुर्य गुण दिखायी पड़ता है। यद्यपि दोनों ही नाटकों के नायक राम हैं और उनमें धीरोदात्त नायक के सभी गुण विद्यमान हैं तथापि बालरामायण के राम को कवि ने अङ्गी रस की दृष्टि से शृङ्गार का कम अवसर प्रदान कराया है।

प्रतिनायक के रूप में रावण के चरित्र को बालरामायण में राजशेखर ने पूर्ण रूप से धीरोद्धत रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने रावण की विप्रलम्भ शृङ्गार की चेष्टाओं का वर्णन अधिक किया है जबकि प्रसन्नराघव में जयदेव ने भी रावण के धीरोद्धत रूप को ही प्रस्तुत किया है, किन्तु उन्होंने उसको छद्म रूप में भी दिखाया है जैसे सीता-स्वयंवर के समय रावण वहाँ पुरुष वेश में उपस्थित होता है, परन्तु बालरामायण में ऐसा नहीं है वहाँ वह अपने उसी रूप में उपस्थित होता है। यहाँ पर ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर रावण के चरित्र को प्रतिनायक के रूप में उभार कर पूर्ण रूप से सहृदय सामाजिक के सामने प्रस्तुत करना चाहते थे, इसीलिये उन्होंने उसके उद्धत स्वभाव में कोई भी परिवर्तन नहीं किया है जबकि जयदेव ने सर्वप्रथम उसको छद्म वेश में ही दिखाया है बाद में वह अपने असली रूप में प्रकट होता है। इसलिये यहाँ पर ऐसा प्रतीत होता है कि जयदेव सम्पूर्ण नाटक में राम के ही चरित्र को सर्वोपरि रखना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने रावण को छद्मरूप में दिखाकर उसके उद्धत रूप को थोड़ा सा कम कर दिया है।

बालरामायण और प्रसन्नराघव दोनों नाटकों में परशुराम का चरित वर्णित हुआ है। बालरामायण के परशुराम राम के साथ तो युद्ध करते ही हैं साथ ही रावण के साथ भी युद्ध करते हैं जबकि प्रसन्नराघव में परशुराम का युद्ध राम से ही होता है। राजशेखर और जयदेव दोनों ने ही लक्ष्मण के धीरोद्धत रूप के साथ ही उनके धीरोदात्त गुणों का भी वर्णन किया है।

विवेच्य नाटकों में सीता का चरित्र नायिका के रूप में दिखायी पड़ता है। यद्यपि दोनों ही नाटकों में सीता में स्वकीया नायिका के सभी गुणों का समावेश है तथापि बालरामायण की सीता में प्रसन्नराघव की सीता की अपेक्षा शृङ्गार की भावना कम दिखायी पड़ती है।

दोनों नाटकों में नायक, प्रतिनायक और नायिका के अतिरिक्त अन्य सभी पात्रों की योजना कथानक के अनुरूप की गयी है। ये सभी पात्र कथा में रोचकता उत्पन्न

करके उसको आगे बढ़ाने का कार्य कुशलतापूर्वक करते हैं। राजशेखर और जयदेव ने आवश्यकतानुसार पात्रों की कल्पना करके नाटक को और अधिक रोचक और हृदयगम्य बना दिया है।

❊

दशम अध्याय

संस्कृत नाट्य परम्परा और बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—मूल्याङ्कन

(क) संस्कृत नाट्यपरम्परा और बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्

लौकिक काव्य की दृष्टि से देखा जाय तो संस्कृत साहित्य में लौकिक परम्परा वाल्मीकीय रामायण से ही प्रारम्भ होती है किन्तु रामकथा से सम्बद्ध नाटकों की परम्परा भास से प्रारम्भ होती है। भास ने रामकथा को आधार बनाकर अभिषेक-नाटकम् और प्रतिमानाटकम् की रचना की है। यद्यपि भास के नाटक वाल्मीकीय रामायण पर आश्रित हैं तथापि उनमें नवीन मौलिक उद्भावनायें भी हैं।

भास के पश्चात् भवभूति के नाटकों में रामाश्रित नाट्य परम्परा दिखायी पड़ती है। उन्होंने राम कथा को आधार बनाकर महावीरचरितम् और उत्तररामचरितम् नाटकों की रचना की। उनकी दोनों रचनाओं में उनका नाट्य कौशल और मौलिक उद्भावना के दर्शन होते हैं जो उनकी प्रौढ़ प्रतिभा के परिचायक हैं।

भवभूति के पश्चात् रामाश्रित नाट्यपरम्परा की श्रेणी में मुरारि, राजशेखर और जयदेव भी आते हैं, जिन्होंने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। रामकथा को आधार बना कर राजशेखर ने बालरामायणम् तथा जयदेव ने प्रसन्नराघवम् नाटकों की रचना की है। दोनों नाटकों के शीर्षक द्वारा ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी कथा रामाश्रित है।

राजशेखर ने बालरामायणम् नाटक की रचना दश अङ्कों में की है। उन्होंने अनेक मौलिक कल्पनाओं और उद्भावनाओं द्वारा कथानक में रोचकता उत्पन्न की है। इसी प्रकार उनके परवर्ती जयदेव ने भी प्रसन्नराघवम् नाटक की रचना यद्यपि सात अङ्कों में की है तथापि अनेक मौलिक कल्पनाओं द्वारा उन्होंने भी कथानक को प्रवाहमय रूप प्रदान किया है।

संस्कृतनाट्यपरम्परा में बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम् दोनों ही नाटकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(ख) बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—आदान

बालरामायणम् के रचयिता राजशेखर और प्रसन्नराघवम् के रचयिता जयदेव भी यद्यपि पूर्ववर्ती साहित्यकारों से प्रभावित रहे हैं तथापि दोनों ही नाटकों पर रामकथाश्रित रचनाओं का पूर्ण प्रभाव दिखायी पड़ता है।

दोनों ही नाटककार वाल्मीकि से प्रभावित रहे हैं। राजशेखर[1] और जयदेव[2] दोनों ने इसका उल्लेख अपने नाटकों में किया है।

बालरामायणम् के रचयिता राजशेखर भास, कालिदास, सुबन्धु, प्रवरसेन, कुमारदास, भट्टनारायण, भट्टि, भवभूति और मुरारि इत्यादि अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से सर्वाधिक प्रभावित रहे हैं।[3]

कालिदास के रघुवंशम् में वर्णित इन्दुमती स्वयंवर का कुछ प्रभाव बालरामायणम् के सीता स्वयंवर पर भी दिखायी पड़ता है। रघुवंश का कोई राजा किरीट सम्हालता था[4] तो बालरामायणम् का राजा हार का अग्रभाग सम्हालता है।[5]

राजशेखर को भवभूति ने सर्वाधिक प्रभावित किया था। जिस प्रकार महावीरचरित की प्रस्तावना में भवभूति कहते हैं कि मेरी रुचि के अनुसार इस रामचरित में वीराद्भुत रस हैं[6] उसी प्रकार राजशेखर भी बालरामायणम् की प्रस्तावना में कहते हैं कि मेरा प्रबन्ध वीराद्भुतप्राय रस वाला है।[7] दोनों नाटकों की कथावस्तु का प्रारम्भ सीता-स्वयंवर से होता है। सीता की अग्निशुद्धि तथा पुष्पक द्वारा राम के लौटने की सूचना दोनों नाटकों में समान रूप से दिखायी पड़ती है।[8]

इस प्रकार राजशेखर के ऊपर अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों का पूर्ण प्रभाव था।

प्रसन्नराघवम् के कर्ता जयदेव भी अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से प्रभावित रहे हैं जिनका उल्लेख उन्होंने भास, कालिदास इत्यादि के नाम सहित प्रसन्नराघवम् के प्रथम

---

१. योगीन्द्रश्छन्दसां स्रष्टा, रामायणमहाकविः।
वल्मीकजन्मा जयति प्राज्ञः प्राचेतसो मुनिः।। बालरा. १/६

२. भास्वद्वंशवतंस-कीर्तिरमणी-रङ्गप्रसङ्गस्वनद्-
वादित्रप्रथमध्वनिर्विजयते वल्मीकजन्मा मुनिः।
पीत्वा यद्वदनेन्दुमण्डलगलत्काव्यामृताब्धेः किम्
प्याकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षति।। प्रसन्नरा. १/६

३. तु. हि. समी. में उद्धृत ३/पृ. ७४-६६

४. वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेकं व्यापारयामास करं किरीटे। रघु. ६/१६

५. हारस्याग्रं कलयति करेणैष हर्षाच्च किञ्चित्।
स्त्रैणः पुंसां नवपरिगमः काममुन्मादहेतुः। बालरा. ३/२६

६. वीराद्भुतप्रियतया रघुनन्दनस्य धर्मद्रुहो दमयितुश्चरितं निबद्धम्। महा. च. १/६

७. वीराद्भुतप्रायरसे प्रवन्धे लोकोत्तरं कौशलमस्ति यस्य। बालरा. १/६

८. (क) अलका-पतिव्रतामयं ज्योतिर्ज्योतिषाऽन्येन शोध्यते।
इदमाश्चर्यमथवा लोकस्थित्यनुवर्तनम्।। महा. च. ७/४

(ख) अलका-अहो खलुभोः पतिव्रतामयं ज्योतिरनभिभवनीयं ज्योतिरन्तरैः।
बालरा. १०/पृ. ४४५

अङ्क में किया है।[1] प्रसन्नराघवम् की कथा का आधार भी वाल्मीकीय रामायण होने के कारण स्वाभाविक है कि कथानक पर उसका प्रभाव अवश्य ही दिखायी पड़ता है। प्रसन्नराघवम् के प्रारम्भ में उन्होंने राम का स्मरण किया है।[2]

कालिदास के रघुवंश का प्रभाव भी जयदेव पर दिखायी पड़ता है। रघुवंश के छठे अङ्क के उन्नीसवें श्लोक की टीका में टीकाकार मल्लिनाथ ने लिखा है कि यदि तुम किरीट की तरह भी मेरे सिर पर बैठोगी तो मैं तुम्हें बोझ न समझूंगा, यह राजा का अभिप्राय है।[3] इसी भाव को पीयूषवर्ष ने भी अपनाया है। प्रथम अङ्क में वह कहते हैं कि कोई राजा कुण्डल ठीक करता हुआ मानों यह मनोरथ व्यक्त कर रहा था कि मैं शिव धनुष को कुण्डल की तरह उठाकर लटका लूँगा।[4]

भवभूति के महावीरचरित और उत्तररामचरित नाटकों का प्रभाव भी जयदेव के प्रसन्नराघवम् पर दिखायी पड़ता है। जयदेव के भाव-पक्ष पर भवभूति का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। अन्तर केवल इतना है कि भवभूति कारुणिक अधिक हैं जबकि जयदेव शृङ्गारिक अधिक है। भवभूति के महावीरचरित में लक्ष्मण को शक्ति लगने के प्रसङ्ग से प्रभावित होकर जयदेव ने भी प्रसन्नराघवम् में इस प्रसङ्ग को नये रूप में उपस्थित किया है।

इसी प्रकार उत्तररामचरित की नदियों के वार्तालाप को आधार बनाकर जयदेव ने गङ्गा-यमुना इत्यादि नदियों द्वारा रामकथा के एक विस्तृत भाग को उपस्थित किया है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि दोनों ही नाटककार अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से पूर्णतः प्रभावित हैं।

---

१. यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः, कर्णपूरो मयूरः भासो हासः, कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय।।
प्रसन्नरा. १/२२

२. (क) चन्द्रे च रामचन्द्रे च नारीणां च दृगञ्चले।
नीलोत्पलसुहृत्कान्तौ कस्य नाऽऽमोदते मनः।। वही, १/१०

(ख) झटिति जगतीमागच्छन्त्याः पितामहविष्टपान्
महति पथि यो देव्या वाचः श्रमः समजायत।
अपि कथमसौ मुञ्चेदेनं न चेदवगाहते
रघुपतिगुणग्रामश्लाघासुधामयदीर्घिकाम्।। वही, १/११

३. किरीटवन्मम शिरसि स्थितामपि त्वां भारं न मन्ये।
इति नृपाभिप्रायः। रघु. ६/१६

४. कोऽयं कुण्डलसदृशनिवेशनापदेशेन प्रकटितहरशरासनकर्णपूरमनोरथो राजते।
प्रसन्नरा. १/पृ. ४०

(ग) बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—प्रदान

बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम् नाटकों का प्रभाव उनके परवर्ती साहित्य पर भी दिखायी पड़ता है।

बालरामायणम् नाटक का प्रभाव उनके पश्चात् लिखे गये रामाश्रित नाटकों पर दिखायी पड़ता है उनके बाद के साहित्यकारों में जयदेव (प्रसन्नराघवम्), दामोदर मिश्र (हनुमन्नाटक), भास्करकवि (उन्मत्तराघव), क्षेमेन्द्र (रामायण मञ्जरी), रामपाणिवाद (सीताराघव) इत्यादि आते हैं इन सभी ने अपनी-अपनी रामाश्रित रचनाओं में बालरामायणम् से प्रेरणा लेकर कथानक का निर्माण किया है।

बालरामायणम् के पश्चात् लिखे गये प्रसन्नराघवम् नाटक का प्रभाव भी परवर्ती साहित्य पर पूर्ण रूपेण दिखायी पड़ता है। दामोदर मिश्र के हनुमन्नाटक में प्रसन्नराघवम् से कतिपय पद्य लिये गये हैं। जयदेव से प्रभावित होने वाले नाटककारों में प्रमुख रूप से हस्तिमल्ल और महादेव का नाम आता है। हस्तिमल्ल के मैथिलीकल्याण नाटक का अङ्गीरस शृङ्गार है और प्रसन्नराघवम् का भी अङ्गीरस शृङ्गार है। महादेव के अद्भुतदर्पण नाटक पर भी प्रसन्नराघवम् का प्रभाव दिखायी पड़ता है। क्योंकि इन्द्रजाल इत्यादि की घटनाओं का प्रसङ्ग महादेव ने सम्भवतः प्रसन्नराघवम् से ही लिया है।

बालरामायणम् के रचयिता राजशेखर तथा प्रसन्नराघवम् के रचयिता जयदेव के व्यक्तित्व और सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव उनके परवर्ती साहित्यकारों की रचनाओं पर पूर्ण रूप से दिखायी पड़ता है।

(घ) बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम्—समीक्षात्मक अध्ययन

विवेच्य नाटकों की कथावस्तु यद्यपि वाल्मीकीय रामायणाश्रित है तथापि दोनों ही नाटकों में नवीन कल्पनायें की गयी हैं।

बालरामायणम् में राजशेखर ने अनेक प्रसङ्गों में अपनी मौलिकता को सकारण प्रदर्शित किया है। यथा—सीतास्वयंवर के प्रसङ्ग में रावण की उपस्थिति दिखाने का कारण यह है कि रावण के हृदय में केवल राम के प्रति विद्वेष-भावना ही नहीं है, अपितु उसके हृदय में सीता के प्रति अनुराग भी है। यहाँ पर नाटककार का लक्ष्य राम-विवाह वर्णन नहीं है, अपितु रावण के चरित्र को उभारना है। इसीलिये उन्होंने विवाह के समय दशरथ की अनुपस्थिति दिखायी है। ऐसा प्रतीत होता है कि यन्त्र-जानकी का आयोजन नाटकीय आकर्षण की दृष्टि से किया गया है। राम के वनवास प्रसङ्ग को उन्होंने दशरथ और कैकेयी की अनुपस्थिति में मायामय, शूर्पणखा तथा परिचारिका इत्यादि पात्रों द्वारा दिखाया है जो छद्म वेश धारण करके राम को वनवास दिलाने में सफल होते हैं।

प्रसन्नराघवम् में जयदेव ने भी अनेक प्रसङ्गों में मौलिकता का समावेश किया है। इन्होंने भी सीता स्वयंवर के समय रावण की उपस्थिति दिखायी है, किन्तु साधारण पुरुष वेश में। इसी प्रकार उन्होंने राम वनगमन, दशरथमरण तथा बालिसुग्रीव की कथा को गङ्गा-यमुना-सरयू नदियों के परस्पर वार्तालाप द्वारा दिखाया है, राम द्वारा मारीच मृग का वध प्रसङ्ग की सूचना हंस के द्वारा दी गयी है। गोदावरी नदी और सागर के परस्पर वार्तालाप द्वारा जानकीहरण, जटायु का मारा जाना इत्यादि प्रसङ्ग सूचित किये गये हैं। नाटककार जयदेव ने अनेक प्रसङ्गों को कथानक में साक्षात् न दिखाकर अन्य पात्रों के परस्पर वार्तालाप द्वारा सूचित करके नाटक को एक नया रूप प्रदान कर दिया है।

इस प्रकार विवेच्य नाटकों में अनेक मौलिकतायें दिखायी पड़ती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों नाटकों पर नाटककारों के व्यक्तित्व, उस समय का समाज और सामाजिक परिस्थितियों और उनकी कल्पनाशीलता का प्रभाव दिखायी पड़ता है।

यद्यपि दोनों नाटकों में काल की दृष्टि से अन्तर पाया जाता है तथापि दोनों की कथाओं में अनेक समानतायें और विषमतायें दिखायी पड़ती हैं।

बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम् दोनों में ही सीता स्वयंवर के समय रावण शिवधनुष के साथ ही सीता को देखने की इच्छा व्यक्त करता है।[1]

बालरामायणम् में रावण के मनोविनोद के लिये यन्त्र जानकी का निर्माण करवाया जाता है[2] और प्रसन्नराघवम् में रावण के मनोविनोदार्थ सीता के चित्र का निर्माण किया जाता है।[3] बालरामायणम् के रावण-परशुराम के वार्तालाप के समान ही प्रसन्नराघवम् में रावण-बाणासुर वार्तालाप का वर्णन किया गया है।

१. (क) रावणः—

यत् पार्वतीहठकुचग्रहणप्रवीणे पाणौ स्थितं पुरभिदः शरदां सहस्रम्।
गीर्वाणसारकणनिर्मितगात्रमत्र तन्मैथिलीक्रयधनं धनुराविरस्तु।। बालरा. १/३६

प्रहस्तः—आविरस्तु सममगर्भसंभवया सीतया। वही, १/पृ. २०

रावणः—इदामाविर्भवति माहेश्वरं धनुः। न पुनरद्यापि मान्मथम्। वही, १/पृ. २०

(ख) पुरुषः—

क्व तावत्कर्णान्तनिशम्यगुणं कन्यारत्नं कार्मुकं च?
कन्यामेव प्रथमं प्रकटयन्ति चरमं धनुः। प्रसन्नरा. १/पृ. ५२

२. माल्यवान्—

ततश्च मया मन्दोदरीपितुर्मायागुरोर्मयस्य प्रथम शिष्यो विशारदनामा यन्त्रकारः सबहुमानं नियुक्तः सीताप्रतिकृतिकरणाय विरचिता च सा तेन रावणोपच्छन्दनार्थमभिहितं च।
सूत्रधारचलद्दारुगात्रेयं यन्त्रजानकी।
वक्त्रस्थसारिकालापा लङ्केन्द्रं वञ्चयिष्यति।। बालरा. ५/६

३. करालकः—

अहमादिष्टोऽस्मि माल्यवता जानकीविरहविह्वलहृदयस्य लङ्केश्वरस्य मनोविनोदनाय केनापि चित्रकारेण विरचीतं चित्रमिदं दृग्गोचरीकरणीयमिति। प्रसन्नरा. ७/पृ. ३६२

विवेच्य नाटकों में कथावस्तुगत साम्य के अतिरिक्त अनेक स्थलों पर पदावली में भी समानता दिखायी पड़ती है। जिसके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

बालरामायणम्	प्रसन्नराघवम्
१. ये हेलोद्धतचन्द्रचूडगिरयः।	१. हेलोन्मूलितचन्द्रचूडगिरयः।
२. अरे रे समरकुण्ठ दशकण्ठ।	२. अये समरकलाकुण्ठ दशकण्ठ।
३. सावित्रान्मुतो महीयसि कुले ये जज्ञिरे क्षत्रियाः।	३. ये ऋष्यशृङ्गचरुभागभुवः कुमाराः सञ्जज्ञिरे दशरथस्य वधूजनेन।
४. अतिभवानीवल्लभं रामभद्रचरितम् अति शशाङ्कशेखरमिदं चेष्टितं रामदेवस्य।	४. पुरां भेत्तारं मदनारिप्यधरयत्युद्दामदोः क्रीडितम्।
५. एष त्रिःसप्तकृत्वस्त्रिभुवनतिलको माथकः क्षत्रियाणाम्।	५. कृत्वा त्रिःसप्तकृत्वः समितिविशसनं।
६. वाष्पोत्पीडः श्लथपुटतया तावन्दन्तर्निरुद्धः।	६. वाष्पोत्पीडैरनुदिनमपि त्वं न सिक्तालवालः।
७. पार्णिर्जरार्जरः।	७. जलधेस्तीरं जराजर्जराः।

इस प्रकार बालरामायणम् तथा प्रसन्नराघवम् में कालगत भिन्नता होते हुये भी कथावस्तु में अनेक प्रसङ्गों और पदावली में भी अनेक स्थलों पर समानता दिखायी पड़ती है। दोनों में साम्य होते हुये भी अनेक प्रसङ्गों में वैषम्य भी है। सर्वप्रथम दोनों नाटकों के मङ्गलाचरण में ही भिन्नता है। यद्यपि दोनों ही नाटककारों ने अपने इष्ट राम का स्मरण मङ्गलाचरण के द्वारा किया है तथापि बालरामायणम् में राजशेखर ने एक ही पद्य में वस्तुनिर्देशात्मक रूप में साक्षात् राम का स्मरण मङ्गलाचरण द्वारा किया है[८] जबकि प्रसन्नराघवम् में जयदेव ने नमस्क्रियात्मक[९] और

१. (क) बालरा. १/४ (ख) प्रसन्नरा. ७/३७
२. (क) वही, ७/पृ. ३२६ (ख) वही, १/पृ. ८२
३. (क) वही, ३/७० (ख) वही, ४/१२
४. (क) वही, ३/पृ. १३०, ७/पृ.३०० (ख) वही, ४/१४
५. (क) वही, ४/३६ (ख) वही, ४/३४
६. (क) वही, ४/४७ (ख) वही, ६/१६
७. (क) वही, १/५२ (ख) वही, ७/८१
८. प्रसत्तेर्यः पात्रं तिलकयति यं सूक्तिरचना य आद्यः स्वादूनां श्रुतिचुलुकलेह्येन मधुना।
यदात्मानो विद्याः परिणमति यश्चार्थवपुषा रा गुम्फो वाणीनां कविवृषनिषेव्यो विजयते।।
बालरा. १/१
९. चत्वारः प्रथयन्तु विद्रुमलतारक्ताङ्गुलिश्रेणयः
श्रेयः शोणसरोजकोरकरुचस्ते शार्ङ्गिणः पाणयः।
भालेष्वब्जभुवो लिखन्ति युगपद्ये पुण्यवर्णावलीः
कस्तूरीमकरीः पयोधरयुगे गण्डद्वये च श्रियः।।
प्रसन्नरा. १/१

आशीर्वादात्मक[1] दोनों रूप से विष्णु रूप में राम की स्तुति तीन पद्यों में मङ्गलाचरण के माध्यम से की है। राजशेखर ने रामकथा को दश अङ्कों में निबद्ध किया है, जबकि जयदेव ने उसी कथा को सात अङ्कों में निबद्ध किया है।

रस की दृष्टि से देखा जाय तो दोनों नाटकों में विभिन्नता दिखायी पड़ती है। बालरामायणम् नाटक वीररस प्रधान है जबकि प्रसन्नराघवम् नाटक में शृङ्गाररस की प्रधानता है। यहाँ दोनों नाटककारों का स्वभाव सामने आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर जैसे महाकवि का हृदय कोमल होते हुये भी कुछ उद्धत था और साथ ही वह राम के चरित की वीरतापक्ष से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने सम्पूर्ण नाटक को वीर रस प्रधान बना दिया जबकि प्रसन्नराघवम् के रचयिता जयदेव अत्यन्त सहृदय कवि थे तभी उन्होंने अपने नाटक में शृङ्गार को प्रधानता दी, यद्यपि वह भी राम के चरित से पूर्णतया प्रभावित थे इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि वे राम के चरित को मानव रूप में प्रस्तुत करके उनके कोमल पक्ष को भी दिखाना चाहते थे।

विवेच्य नाटकों में अङ्गीरसानुरूप ही वृत्ति, रीति तथा गुण योजना दिखायी पड़ती है। अलङ्कार योजना भी अङ्गीरसानुरूप ही हुयी है। बालरामायणम् में वीररसानुरूप सात्त्वती वृत्ति, गौडीरीति, ओजगुण तथा अनुप्रास अलङ्कार की योजना हुयी है। इसी प्रकार प्रसन्नराघवम् में शृङ्गाररसानुकूल कैशिकी वृत्ति, वैदर्भी रीति, माधुर्यगुण और उपमा अलङ्कार की प्रधानता दिखायी पड़ती है।

विवेच्य नाटकों में वृत्ति, रीति, गुण और अलङ्कार की दृष्टि से भिन्नता होते हुये भी छन्द की दृष्टि से समानता दिखायी पड़ती है। बालरामायणम् में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग प्रमुख रूप से किया गया है जबकि प्रसन्नराघव नाटक का प्रारम्भ ही शार्दूलविक्रीडित छन्द से होता है।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर के साथ-साथ जयदेव भी शार्दूलविक्रीडित छन्द की महत्ता से प्रभावित थे तभी उन्होंने कोमलता होते

---

१. (क) आकल्पं मुरजिन्मुखेन्दुमधुरोन्मीलन्मरुन्माधुरी-
धीरोदात्तमनोहरः सुखयतु त्वां पाञ्चजन्यध्वनिः।
लीलालङ्घित मेघनादविभवो यः कुम्भकर्णव्यथा-
दायी दानवदन्तिनां दशमुखं दिक्चक्रमाक्रामति।। प्रसन्नरा. १/२

(ख) नाभीपद्मवसच्चतुर्मुखमुखोद्गीतस्तवाकर्णन-
प्रोन्मीलत्कमनीय लोचनकलाखेलन्मुखेन्दुद्युतिः।
सक्रोधं मधु-कैटभो सकरुणस्नेहं सुतामम्बुधेः
सोत्प्रासप्रणयं सरोजवसतिं पश्यन् हरिः पातु वः।। वही, १/३

२. चत्वारः प्रथयन्तु विद्रुमलतारक्ताङ्गुलिश्रेणयः
श्रेयः शोणसरोजकोकरुचस्ते शाङ्गिर्णः पाणयः।
भालेष्वब्जभुवो लिखन्ति युगपद्ये पुण्यवर्णावलीः
कस्तूरीमकरीः पयोधरयुगे गण्डद्वये च श्रियः।। वही, १/१

हुये भी अपने नाटक में शार्दूलविक्रीडित छन्द को प्रधानता दी है और साथ ही समान रूप से वसन्ततिलका छन्द का भी प्रयोग किया है। राजशेखर ने भी शार्दूलविक्रीडित के बाद सर्वाधिक वसन्ततिलका छन्द की ही योजना बालरामायणम् में की है। यद्यपि दोनों नाटककारों का स्वभाव अलग-अलग है, क्योंकि राजशेखर ने दशम अङ्क में अयोध या गमन के समय द्रविड, आन्ध्र, कावेरी, महाराष्ट्र, नर्मदा, लाट, मालवा, उज्जयिनी, पाञ्चाल, कान्यकुब्ज, प्रयाग, वाराणसी, मिथिला इत्यादि देशों का वर्णन किया है, जबकि प्रसन्नराघवम् में जयदेव ने सूर्योदय और चन्द्रोदय का ही वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर ने अनेक देशों का भ्रमण किया था, इससे राजशेखर की भ्रमणशील प्रवृत्ति का ज्ञान होता है या फिर उपर्युक्त वर्णनों को हम दोनों नाटककारों की मौलिक कल्पना भी कह सकते हैं, किन्तु इतने अधिक देशों का परिचय बिना ज्ञान के नहीं दिया जा सकता इससे राजशेखर के विशाल व्यक्तित्व का पता चलता है।

विवेच्य नाटकों में पात्र योजना कथानक के अनुसार की गयी है। दोनों की कथा रामाश्रित होने के कारण प्रमुख पात्रों की योजना समान रूप से दिखायी पड़ती है, जबकि अन्य पात्रों की योजना दोनों ही नाटककारों ने अपनी-अपनी मौलिकताओं और नवीन कल्पनाओं द्वारा पात्र की आवश्यकतानुसार स्वयमेव ही कर ली है। दोनों ही नाटककारों ने निर्जीव पात्रों का भी अपनी कल्पनाशीलता के आधार पर मानवीकरण किया है। बालरामायणम् में राजशेखर ने गङ्गा तथा यमुना नदियों, समुद्र और लङ्का तथा अलका नगरियों का मानवीकरण किया है, जबकि प्रसन्नराघवम् में जयदेव ने गङ्गा-यमुना-सरयू-गोदावरी-तुङ्गभद्रा नदियों और समुद्र का मानवीकरण किया है।

यहाँ पर ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर के परवर्ती होने के कारण जयदेव पर उनका प्रभाव निश्चित रूप से हुआ है। यही कारण है कि दोनों नाटकों में परस्पर समानता दिखायी पड़ती है। कतिपय प्रसङ्गों में विभिन्नता का कारण दोनों नाटकों की अपनी मौलिकता ही है।

विवेच्य दोनों नाटक संस्कृत नाट्य परम्परा के अन्तर्गत ध्वनि काव्य के उदाहरण के रूप में दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि ध्वनिकाव्य व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता के कारण होता है और ये दोनों ही नाटककार अपने-अपने नाटकों के द्वारा रामचरित के माध्यम से समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत करना चाहते हैं। वे राम और रावण की कथा द्वारा यह बताना चाहते हैं कि उदात्त गुण कालजयी होते हैं और जो अनुचित होगा वह कभी स्थायी नहीं रह सकता उसका नाश निश्चित रूप से होता है। दोनों ही नाटक भारतीय परम्परा के रूप में दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि भारतीय परम्परा सुखप्रधान है और राज-शेखर तथा जयदेव ने भारतीय परम्परा के अनुसार बालरामायणम् और प्रसन्नराघवम् के अन्त में राम और सीता का सम्मिलन दिखाकर नाटक को सुखान्त बना दिया है।

❋

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संस्कृत ग्रन्थ

ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थकार का नाम	प्रकाशन
अभिनव भारती (अभिनवगुप्त)	डॉ० आर.एस. नागर	परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९८८
कर्पूरमञ्जरी (राजशेखर)	टी. पं. परमेश्वरदीन पाण्डेय	कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, १९८३
कर्पूरमञ्जरी (राजशेखर)	व्या. श्री रामकुमार आचार्य	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७०
काव्यप्रकाश (मम्मट)	व्या. आचार्य विश्वेश्वर	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, १९९८
काव्यमीमांसा (राजशेखर)	पं. केदारनाथशर्मा सारस्वत	बिहार राष्ट्रभाषा, परिषद पटना
काव्यादर्श (दण्डी)	व्या. धर्मेन्द्र कुमार गुप्त	मेहरचन्द लछमनदास, दिल्ली, १९७३
काव्यानुशासनम्	हेमचन्द्र	श्री महावीर जैन विद्यालय, बॉम्बे
काव्यालङ्कार (भामह)	भाष्य. देवेन्द्रनाथ शर्मा	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९८५
काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति (वामन)	व्या. आचार्य विश्वेश्वर	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, १९९८
चन्द्रालोक (जयदेव)	डॉ० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
छन्दःशास्त्रम् (पिङ्गलनाग)	सम्पा. पं. केदारनाथ और अनन्तशर्मा	परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली, १९९४
तिलकमञ्जरी	धनपाल	चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी
ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धन)	व्या. आचार्य जगन्नाथ पाठक	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९९७
निघण्टु तथा निरुक्त	यास्क	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९९७
पाणिनीय शिक्षा	बच्चू लाल अवस्थी ज्ञानोपाह श्रीनिवासरथ	उज्जयिनी-कालिदास-अकादमी, वि. सं. २०५०
प्रसन्नराघवम् (जयदेव)	टी. रमाशङ्कर त्रिपाठी	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७०

प्रसन्नराघवम् (जयदेव)	टी. आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७२
प्रसन्नराघवम् (जयदेव)	व्या. पं. रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री	चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९७७
बालभारतम् (राजशेखर)	डॉ० गङ्गासागर राय	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
बालरामायणम् (राजशेखर)	सम्पा. तथा टी. डॉ० गङ्गासागर राय	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९८४
बालरामायणम् (तुलनात्मक हिन्दी समीक्षा द्वितीयो भागः)	डॉ० भास्कराचार्य त्रिपाठी	नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, १९९५
महावीरचरितम्	भवभूति	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७३
रघुवंशम् (कालिदास)	सम्पा. हरगोविन्दमिश्रः	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, २००१
रसार्णव सुधाकर	टी. टी. वेङ्कटाचार्य	अडयार लाइब्रेरी और रिसर्च सेन्टर
वृत्तरत्नाकर	पं. केदारभट्ट	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९९८
शाङ्र्गधरपद्धति	डॉ० पीटर पीटर्सन	चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी
श्रुतबोध	कालिदास	श्री हरिकृष्ण निबन्ध भवन, काशी, १९८५
सरस्वती कण्ठाभरणम्	टी. डॉ० कामेश्वरनाथ मिश्र	चौखम्बा ओरियण्टालिया, वाराणसी, १९७६
साहित्यदर्पण (विश्वनाथ)	व्या. शालिग्राम शास्त्री	मोतीलाल वनारसीदास, वाराणसी, १९७७
सुवृत्ततिलकम्	क्षेमेन्द्र	चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९६८
हिन्दी दशरूपक	डॉ० भोलाशङ्कर व्यास	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, २०००
हिन्दी नाट्यशास्त्र	व्या. श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, २०३५
हिन्दी अट्ठारहवीं शती के रूपक	बी.एल.नागार्च	पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, १९९०
अभिधानचिंतामणि कोश	पं. श्रीहरिगोविन्दशास्त्री	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६४
आचार्य राजशेखर	डॉ० श्यामा वर्मा	मध्यप्रदेशहिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९७१
प्राकृत पैङ्गलम्	संम्पा. डॉ० भोलाशङ्कर व्यास	प्राकृत टेक्सट सोसाइटी, वाराणसी, १९५९

बालरामायणम् (राजशेखर) (तुलनात्मक हिन्दी समीक्षा प्रथम भाग)	डॉ० भास्कराचार्य त्रिपाठी	नाग प्रकाशक, दिल्ली, १९९५
संस्कृत नाट्य कोश	डॉ० रामसागर त्रिपाठी	चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, १९९४
संस्कृत वाङ्मय कोश प्र.ख. (ग्रंथकार)	डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर	भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता, १९८८
संस्कृत साहित्य का इतिहास	आचार्य बलदेव उपाध्याय	शारदा निकेतन, वाराणसी
संस्कृत साहित्य का इतिहास	वाचस्पति गैरोला	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६७
संस्कृत साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामविलास चौधरी	- -
संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे	ओरियन्टल बुक सेन्टर, दिल्ली, १९९७

English

The Aufrecht Catalogues Catalogorum (Part-I)	Aufrecht
The New Catalogues Catalogorum Vol. 13	Editor Dr. N. Veezhinathan Joined Editor Dr. N. Gangadharan

❊

महाकवि कालिदास की रचनाओं का सर्वांगपूर्ण संस्करण

कालिदास-ग्रन्थावली

मूल संस्कृत, हिन्दीटीका, जीवनपरिचय, समीक्षात्मक अध्ययन एवं पारिभाषिक शब्दकोष सहित

हिन्दी व्याख्याकार
पण्डित रामतेज शास्त्री

सम्पादक
ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

किसी महाकवि की सभी रचनाएँ एक स्थान पर पाठकवृन्द को उपलब्ध हो सकें, इसी पवित्र संकल्प से प्रेरित होकर विद्वानों ने ग्रन्थावली परम्परा का सूत्रपात किया। तदनन्तर यह रुचिकर एवं उपयोगी परम्परा देखते-देखते उभर आयी । इसे हम उस-उस कवि के सुयश की जीवातु ही कहेंगे । इसी पवित्र परम्परा का यह अन्यतम सुवासित सुमनस्तबक 'कालिदास-ग्रन्थावली' भी है ।

सुप्रसिद्ध एवं यशस्वी महाकवि कालिदास के ग्रन्थरत्नों की आवली (रत्नहार) से अपने कंठ तथा वक्षःस्थल की सुषमा-वृद्धि कौन सरसहृदय व्यक्ति करना नहीं चाहेगा? उक्त रत्नहार को पिरोना विद्वानों के लिए इसलिए अत्यन्त कठिन हो गया था कि कालिदास की कृतियों के सम्बन्ध में सुधीसमाज एकमत नहीं हो पाया था, क्योंकि समय-समय पर हुए अनेक कालिदास नामधारी विद्वान् उस सुप्रसिद्ध कविशेखर के प्रांशुलभ्य सुयश को प्राप्त करने की इच्छा से कुछ-न-कुछ लिखते गये । उन सबका साहित्य परस्पर होड़ लगाता हुआ सामने आया । ऐसी विषम स्थिति में काव्यमर्मज्ञ विद्वानों ने अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर जिन काव्य-नाटकों को इनकी अमर एवं अनुपम कृति के रूप में सादर स्वीकार किया है, प्रस्तुत ग्रन्थावली में उन्हीं कृतियों का सादर संग्रह किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थावली की अधिकाधिक उपादेयता हो, इस दृष्टि से इससे सम्बन्धित जो-जो विषय अपेक्षित समझे गये उन-उन का समावेश यथा सम्भव इसके परिशिष्ट भाग में कर दिया गया है। साथ ही इसके अन्त में पारिभाषिक शब्दकोष भी दे दिया गया है, जिसमें कालिदास की कृतियों में आए हुए व्यक्तियों, प्राणियों, वस्तुओं, नदियों, पर्वतों तथा भौगोलिक स्थानों में नामों का सन्दर्भ सहित उल्लेख प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है; जिसकी शब्दसंख्या प्रायः एक हजार है । परिशिष्ट के अन्त में 'कालिदासकालीन भारत का मानचित्र' भी दे दिया गया है, जिसमें तत्कालीन भारत के स्थानों, देशों, पर्वतों तथा नदियों के संकेत दिये गये हैं । प्रत्येक नाटक के आरम्भ में सम्बन्धित पात्र-परिचय भी दिया गया है । हमारे इस प्रयास से पाठकवृन्द को सन्तोष का अनुभव हो, यही इसकी चरितार्थता है ।

न्यायकोशः

NYĀYAKOŚA

DICTIONARY OF TECHNICAL TERMS OF INDIAN PHILOSOPHY IN SANSKRIT

(सकलशास्त्रोपकारकन्याया-दिशास्त्रीयपदार्थप्रकाशकः)

महामहोपाध्याय भीमाचार्य वामन झलकीकर

संशोधकः
वासुदेवशास्त्री अभ्यंकर

Avant-Props
Madan Mohan Aggrawal

महाकवि कालिदास की रचनाओं का सर्वांगपूर्ण संस्करण

कालिदास-ग्रन्थावली

मूल संस्कृत, हिन्दीटीका, जीवनपरिचय, समीक्षात्मक अध्ययन एवं पारिभाषिक शब्दकोष सहित

हिन्दी व्याख्याकार **पण्डित रामतेज शास्त्री** * सम्पादक **ब्रह्मानन्द त्रिपाठी**

किसी महाकवि की सभी रचनाएँ एक स्थान पर पाठकवृन्द को उपलब्ध हो सकें, इसी पवित्र संकल्प से प्रेरित होकर विद्वानों ने ग्रन्थावली परम्परा का सूत्रपात किया। तदनन्तर यह रुचिकर एवं उपयोगी परम्परा देखते-देखते उभर आयी । इसे हम उस-उस कवि के सुयश की जीवातु ही कहेंगे । इसी पवित्र परम्परा का यह अन्यतम सुवासित सुमनस्तवक 'कालिदास-ग्रन्थावली' भी है ।

सुप्रसिद्ध एवं यशस्वी महाकवि कालिदास के ग्रन्थरत्नों की आवली (रत्नहार) से अपने कंठ तथा वक्षःस्थल की सुषमा-वृद्धि कौन सरसहृदय व्यक्ति करना नहीं चाहेगा? उक्त रत्नहार को पिरोना विद्वानों के लिए इसलिए अत्यन्त कठिन हो गया था कि कालिदास की कृतियों के सम्बन्ध में सुधीसमाज एकमत नहीं हो पाया था, क्योंकि समय-समय पर हुए अनेक कालिदास नामधारी विद्वान् उस सुप्रसिद्ध कविशेखर के प्रांशुलभ्य सुयश को प्राप्त करने की इच्छा से कुछ-न-कुछ लिखते गये । उन सबका साहित्य परस्पर होड़ लगाता हुआ सामने आया । ऐसी विषम स्थिति में काव्यमर्मज्ञ विद्वानों ने अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर जिन काव्य-नाटकों को इनकी अमर एवं अनुपम कृति के रूप में सादर स्वीकार किया है, प्रस्तुत ग्रन्थावली में उन्हीं कृतियों का सादर संग्रह किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थावली की अधिकाधिक उपादेयता हो, इस दृष्टि से इससे सम्बन्धित जो-जो विषय अपेक्षित समझे गये उन-उन का समावेश यथा सम्भव इसके परिशिष्ट भाग में कर दिया गया है। साथ ही इसके अन्त में पारिभाषिक शब्दकोष भी दे दिया गया है, जिसमें कालिदास की कृतियों में आए हुए व्यक्तियों, प्राणियों, वस्तुओं, नदियों, पर्वतों तथा भौगोलिक स्थानों में नामों का सन्दर्भ सहित उल्लेख प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है; जिसकी शब्दसंख्या प्रायः एक हजार है । परिशिष्ट के अन्त में 'कालिदासकालीन भारत का मानचित्र' भी दे दिया गया है, जिसमें तत्कालीन भारत के स्थानों, देशों, पर्वतों तथा नदियों के संकेत दिये गये हैं । प्रत्येक नाटक के आरम्भ में सम्बन्धित पात्र-परिचय भी दिया गया है । हमारे इस प्रयास से पाठकवृन्द को सन्तोष का अनुभव हो, यही इसकी चरितार्थता है ।

न्यायकोशः

NYĀYAKOŚA

DICTIONARY OF TECHNICAL TERMS OF INDIAN PHILOSOPHY IN SANSKRIT

(सकलशास्त्रोपकारकन्याया-दिशास्त्रीयपदार्थप्रकाशकः)

महामहोपाध्याय भीमाचार्य वामन झलकीकर

संशोधकः
वासुदेवशास्त्री अभ्यंकर

Avant-Props
Madan Mohan Aggrawal